निषिद्ध है। नवसूतिका गऊका घी 'अपुनीत' है, क्योंकि उसके दूधका पीना शास्त्रवर्जित है। (ङ) 'घी' को दाल-भातके पश्चात् कहा, क्योंकि दाल और भातमें घी छोड़कर मिलाकर खाया जाता है। (च) *'सुंदर स्वादु पुनीत'* दाल-भात घी सबके साथ भी लगता है।—देखनेमें सुन्दर, खानेमें स्वादिष्ट और शास्त्रसे वर्जित नहीं। छिलकासहित दाल देखनेमें सुन्दर नहीं होती, मसूरकी दाल पवित्र नहीं, धानको उबालकर जो चावल निकाला जाता है अर्थात् भुजिया वा उसना चावलका भात पुनीत नहीं माना जाता। (छ) *'छन महुँ सबके परुसिगे'* से जनाया कि रसोइये बहुत थे, इसीसे समस्त व्यंजनके परस जानेमें कुछ भी समय न लगा। (ज) *'चतुर सुआर बिनीत'* इति। चतुर अर्थात् परसनेमें प्रवीण हैं। इधर-उधर गिरे नहीं, ठीक जहाँपर जो पदार्थ परसना चाहिये उसी जगह वह परसी जाय, कहीं कम, कहीं बहुत ऐसा न हो, सबको एक समान परसें और देर भी न लगे इत्यादि चतुरता है। *'बिनीत'* से जनाया कि स्वभाव अत्यन्त नम्र है, वचनमें भी नम्रता है और परसते समय शरीर भी नम्र है (अर्थात् नीचेको झुकाये हुए परस रहे हैं)। *'सुआर'* सूपकारका अपभ्रंश है, जैसे स्वर्णकारसे सुनार, लोहकारसे लोहार, चर्मकारसे चमार, वैसे ही सूपकारसे सुआर।

पंचकवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति* अनुरागे॥ १॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥ २॥
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥ ३॥
चारि भाँति भोजन बिधि† गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥ ४॥
छरस रुचिर बिंजन बहु जाती‡। एक एक रस अगनित भाँती $॥ ५॥

शब्दार्थ—**पंचकवल**—पाँच ग्रास अन्न जो स्मृतिके अनुसार खानेके पूर्व कुत्ते, पतित, कोढ़ी, रोगी और कौवे आदिके लिये अलग निकाल दिया जाता है। यह कृत्य पञ्चमहायज्ञोंमेंसे चौथे भूतयज्ञका, जिसे बलिवैश्वदेव भी कहते हैं, अंग माना जाता है; इसीको अग्राशन भी कहते हैं। (श० सा०) इसमें गृहस्थ पाकशालामें पके अन्नसे एक-एक ग्रास लेकर मन्त्रपूर्वक घरके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें मूसल आदिपर तथा काकादि प्राणियोंके लिये भूमिपर रखता है। (श० सा०) पुनः, भोजनके पहले आचमन करके '**प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा** और **समानाय स्वाहा**' इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए जो पाँच ग्रास खाये जाते हैं, उन्हें भी पञ्चकवल कहते हैं। इन पञ्चग्रासोंके पश्चात् पुनः आचमन किया जाता है। तत्पश्चात् भोजन किया जाता है। इन पञ्चग्रासोंसे पञ्चप्राणोंको शक्ति पहुँचती है। **जेवन**=भोजन करना, खाना। **परे**=परसे गये। **पकवान** (पक्वान्न)=घीमें पकाये हुए पदार्थ। **बिंजन** (व्यञ्जन)=भोज्य पदार्थ; पका हुआ भोजन।

अर्थ—पञ्चग्रास (की विधि) करके सब लोग खाने लगे। गालियोंका गान सुनकर सब अत्यन्त अनुरागमें मग्न हो गये॥ १॥ अनेकों प्रकारके अमृतके समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गये, जो बखाने नहीं जा सकते॥ २॥ चतुर रसोईये परसने लगे। व्यञ्जन नाना प्रकारके हैं। नाम कौन जानता है?॥ ३॥ (शास्त्रोंमें) भोजनकी बिधि चार प्रकारकी कही गयी है। (उनमेंसे) एक-एक विधि (के व्यञ्जनों) का भी वर्णन नहीं हो सकता॥ ४॥ छहों रसोंके बहुत प्रकारके सुन्दर व्यञ्जन हैं, जिनमेंसे एक-एक रसके अगणित प्रकारके हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'पंचकवल करि जेवन लागे'* से सूचित किया कि बिना पञ्चकवल बलिवैश्वदेव किये भोजन न करना चाहिये। इससे स्मार्तधर्मको पुष्ट कर रहे हैं। (अभी तो केवल दाल-भात और घी ही परसा गया और लोग भोजन करने लगे? पञ्चकवल भी इन्हीं तीन व्यंजनोंका किया गया? जान पड़ता है कि

* गारी गान सुनहिं अनुरागे—छ०। † श्रुति गाई—को० रा०। ‡ भाँती। $ जाती-को०।

भोजन करानेकी यही विधि होगी)। केवल दाल-भात-घी भोजन करने लगे, यह लोकरीति है। दाल-भात मिलाकर खाया जाता है जिसमें नातेमें मेल-मिलाप रहे और घी मिलाया जिसमें स्नेह बना रहे। इसीसे पहले दाल-भात-घी परसा और खिलाया जाता है। तोड़नेवाली कोई वस्तु पहले नहीं परसी जाती और न कड़वी ही, जिसमें नाता टूटे नहीं और न बदमजगी, कड़वापन, वैमनस्य हो। विवाहमें यह रीति भोजनके प्रारम्भमें की जाती है। जब कुछ भोजन हो चुकता है तब और सब व्यञ्जन परसे जाते हैं जैसा आगे लिखते हैं। (ख) *'गारि गान सुनि अति अनुरागे'* इति। इससे जनाया कि गाली-गान सुनकर सबको बड़ा आनन्द हुआ। यथा—*'गारि मधुर स्वर देहिं सुंदर बिंग्य बचन सुनावहीं। भोजन करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥ जेंवत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो॥'* (छं० ९९)

टिप्पणी—२ *'भाँति अनेक परे पकवाने।'''''''* इति। (क) दाल-भात खानेके पीछे मीठे पकवान परसे गये। इसीसे मीठेकी उपमा देते हैं। अथवा, जो कच्ची रसोई खानेवाले थे उनको दाल-भात-घी परसा गया और जो कच्ची नहीं खा सकते, पक्की रसोईके खानेवाले हैं उनको पकवान परसे गये। रघुवंशी क्षत्रिय तथा जातिके बिरादरी (भैयाचारावाले) का भोजन दाल-भात-घी प्रथम कहा और ब्राह्मण पक्की रसोईके खानेवालोंका भोजन पीछे कहा। क्योंकि लोकरीति है कि बारातमें दूलह प्रथम भोजनका आरम्भ करता है तब बाराती भोजन करते हैं। (ख) *'सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने'* इति। *'सुधा सरिस'* से स्वादिष्ट और मधुर इत्यादि जनाया। अमृतका स्वाद भारी है, इससे स्वाद कहा नहीं जाता (जिसने अमृत पिया हो वही भले कह सके, दूसरा कैसे कह सकता है?) और पकवान नाना भाँतिके हैं, इससे भाँति भी नहीं कही जा सकती। (ग) अगवानीके समय जो पकवान भेजे गये थे, जान पड़ता है कि वैसे ही पकवान इस समय परसे गये; क्योंकि उस समय कहा था कि *'भरे सुधा १ सम सब पकवाने २। नाना ३ भाँति ४ न जाहिं ५ बखाने॥'* (३०५।२), वैसे ही यहाँ कहते हैं *'भाँति ४ अनेक ३ परे पकवाने २। सुधा १ सरिस नहि जाहिं ५ बखाने॥'*, यहाँ और वहाँके शब्दोंमें कुछ भी भेद नहीं पाया जाता।

टिप्पणी—३ *'परुसन लगे सुआर सुजाना।'''''* इति। (क) भोजनके पदार्थोंका यहाँ तीन बार परसना लिखा—एक *'सूपोदन सुरभी'''''छन महुँ सबके परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥'* (३२८), दूसरे *'भाँति अनेक परे पकवाना'* और तीसरे यहाँ तीन बार परसना कहकर जनाया कि भोजनके पदार्थकी तीन कोटियाँ हैं—एक दाल-भात-घी, दूसरी पकवान और तीसरी व्यञ्जनोंकी। इसीसे तीन बार परसना कहा। (ख) *'सुजान'* का भाव कि मनकी रुचि जान लेते हैं, माँगना नहीं पड़ता, जिसको जिस व्यञ्जनमें रुचि है उसको वही बिना माँगे देते हैं, जितनी रुचि है उतनी ही देते हैं, कच्ची-पक्की रसोईका विचार रखते हुए परसते हैं, किसीका स्पर्श नहीं होने पाता। (ग) दोहेमें कहा था कि *'छन महुँ सबके परुसिगे'* और यहाँ कहते हैं *'परुसन लगे'*। भेदमें भाव यह है कि प्रथम दाल-भात-घी तीन ही पदार्थ परसे गये थे, इससे बहुत शीघ्र वे परस दिये गये थे, अब *'लगे'* कहकर परसनेमें विलम्ब दिखला रहे हैं क्योंकि व्यञ्जन विविध प्रकारके हैं। (विलम्बका कारण भी है। गाली-गानमें बारातियोंको आनन्द मिल रहा है, वे भोजन करनेमें विलम्ब लगा रहे हैं, वैसे ही इधर भी धीरे-धीरे परसा जा रहा है। इसी तरह उमाशम्भुविवाहमें *'भोजन करहिं सुर अति बिलंबु बिनोद सुनि सचु पावहीं'।*) (घ) *'बिंजन बिबिध'* अर्थात् इनकी गिनती नहीं हो सकती। *'नाम को जाना'* अर्थात् कोई नाम भी नहीं जान सकता। इस कथनसे सूचित करते हैं कि जनकपुरमें जो व्यञ्जन परसे गये, मुनियोंके ग्रन्थोंमें उनके नाम नहीं लिखे हैं, तब हम कैसे लिखें।

टिप्पणी—४ *'चारि भाँति भोजन बिधि गाई।'''''''* इति (क) पाकशास्त्रमें चार प्रकारकी विधि ये कही गयी हैं—भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य। यथा—**'भक्ष्यं भोज्यं तथा चोष्यं लेह्यं चैव चतुर्विधम्'**—[परंतु गर्भोपनिषद्दीपिकामें 'लेह्य, पेय, खाद्य, चोष्य लक्षण चतुर्विधाहार विकार' इति चार नामोंका उल्लेख है। (मा० त० वि०)] भक्ष्य अर्थात् अनेक प्रकारके साग; भोज्य अर्थात् पूरी, कचौरी, मोहनभोग आदि। [*'भक्ष्य'* वह वस्तु है जो दाँतसे काटकर खायी जाय। (बैजनाथजीका मत है कि भक्ष्य वह है जो चर्वण (चबेना) की

तरह रूखी और स्वादिष्ट हो। जैसे—बूँदी, खुरमा, पापड़, समोसा, पिड़ाक, मठरी, खाझा, बताशफेनी, शकरपाला, लड्डू, दालमोठ, सेव इत्यादि।) 'भोज्य'=वह पदार्थ जो मुँहमें रखकर खाया जाय, अर्थात् सरस खानेयोग्य पदार्थ। इसमें बैजनाथजीके अनुसार दाल, भात, रोटी, पूरी, मालपूवा, अमरती, जलेबी आदि हैं। 'चोष्य' वह है जो चूसकर खाया जाय। रसवाले पदार्थ इसमें आ जाते हैं। 'पेय' (पीनेवाले) भी इसीमें गिने जायेंगे। जैसे दूध, शिखरन, लस्सी, मीठा, रायता आदि। बैजनाथजी सालन, साग, भाजी, तरकारीको चोष्यमें गिनते हैं। 'लेह्य' वह पदार्थ हैं जो चाटे जाते हैं। जैसे चटनी, फीरीनी, अचार आदि।] (ख) यहाँ भोजनकी चार विधियाँ कहकर फिर आगे ***'छरस बिंजन'*** भी कहते हैं। इससे सूचित करते हैं कि व्यञ्जन चारों विधिके हैं और षट्रसके हैं। एक-एक विधिके अगणित हैं और एक-एक रसके अगणित हैं।

टिप्पणी—५ ***'छरस रुचिर बिंजन बहुजाती। ......'*** इति। (क) व्यञ्जन बहुत जातिके हैं। एक-एक व्यञ्जन एक-एक रसके अनेक भाँतिके हैं। यहाँतक चार चौपाइयोंमें बताया कि पकवान अनेक भाँतिके हैं, व्यञ्जन अनेक भाँतिके हैं, विधि अनेक भाँतिकी हैं, यथा—***'एक एक बिधि बरनि न जाई',*** और रस अनेक भाँतिके हैं, यथा—***'एक एक रस अगनित भाँती।'*** (ख) छरस, यथा—'**कटुकं लवणं चैव तिक्तं मधुरमेव च। आम्लश्चैव कषायं च षड्विधाश्च रसाः स्मृताः॥**' [अर्थात् कटु, लवण (नमकीन), तिक्त, मधुर, अम्ल और कषाय—ये छः रस हैं। कटु=कडुवा जैसे कि मिर्च-मिर्चा आदिका स्वाद होता है, तिक्त=तीता। कटु और तीतामें भेद है, तिक्त जैसे नीम, चिरायता और गुर्च आदिका स्वाद होता है, यह स्वाद कुछ अरुचिकर होता है और कटु स्वाद चरफरा और रुचिकर होता है, जैसे सोंठ, मिर्च आदि। अमिलतास, हरदी, कटुकी, ब्राह्मी आदि तिक्तवर्णके अन्तर्गत हैं। आजकल कटु और तिक्त प्रायः एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। आम्ल=आँवलेके स्वादका। खट्टा भी इसीमें आ जाता है। कषाय=कसैला, बकठा, जिसके खानेसे जीभमें एक प्रकारकी ऐंठन वा सङ्कोच मालूम होता है, जैसे हड़, बहेड़ा, सुपारी आदिका स्वाद।] (ग) [***'रुचिर'*** शब्द देकर जनाया कि षट्रसमें तिक्त और कषाय तो स्वादमें अच्छे नहीं होते, पर व्यञ्जन जो इन रसोंके बने हैं वे सुन्दर हैं, स्वादिष्ट हैं, रुचिकर हैं।] (घ) ***'छरस'*** और ***'बहु भाँती'*** तथा ***'एक एक रस अगनित भाँती'*** कहकर सूचित किया कि व्यञ्जनोंके नाम, जाति, भाँति सभी अनन्त हैं।

जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥६॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥७॥
एहि बिधि सबही भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा*॥८॥
दो०—देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥३२९॥

शब्दार्थ—**मधुर**=मीठा, धीमा। **धुनि** (ध्वनि)=स्वर, आवाज। मधुर ध्वनि अर्थात् मीठी आवाजसे गाकर। ***'गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदर'*** ९९ छंद देखिये। **बिराजा**=सोहती थीं, फबती वा शोभित होती थीं। **आचमनु**=शुद्धिके लिये मुँहमें जल लेना। **आचमनु दीन्हा**=कुल्ली करायी, हाथ-मुँह धुलाया। **सिरताज**=मुकुट, शिरोमणि।

अर्थ—भोजन करते समय पुरुषों और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर मधुर स्वरसे गाली दे (अर्थात् गा) रही हैं॥६॥ समयकी गाली (भी) सुहावनी और सोहती थीं। (उन्हें) सुनकर राजा समाजसहित हँसते थे॥७॥ इस रीतिसे सभीने भोजन किया। आदरसहित उन्हें आचमन दिया गया॥८॥ पान देकर राजा जनकने समाजसहित दशरथ महाराजकी पूजा की। समस्त राजाओंके सिरताज चक्रवर्तीजी प्रसन्न होकर जनवासेको चले॥३२९॥

* लीन्हा—छ०, रा० प०, भा० दा०।

टिप्पणी—१ *'जेंवत देहिं·······'* इति। (क) भोजनमें प्रथम [प्रारम्भमें गान होता है और अन्तमें (अर्थात् जब कुछ भोजन कर चुकते हैं तब) भी गालियाँ गायी जाती हैं और *'पंचकवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥'* यह भोजनके प्रारम्भ-समयकी गालियाँ हैं और *'जेंवत देहिं·····'* यह अन्तका गालीगान है। (ख) *'मधुर धुनि'* कहनेका भाव कि कठोर ध्वनिसे गाली कठोर (कटु) हो जाती है; उसमें शोभा नहीं रहती। मधुर स्वरसे व्यङ्ग्ययुक्त गाली देना अमृत-समान माना जाता है और कठोर ध्वनिसे व्यङ्गरहित गाली देना विष-समान है, यथा—*'अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार। प्रेम बयर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥'* (दोहावली ३२८) (ग) *'लै लै नाम पुरुष अरु नारी'* अर्थात् जनकपुरमें पुरुषों और अयोध्याजीकी स्त्रियोंके नाम ले-लेकर गाली देती हैं। ऐसा व्यङ्गसे कहते हैं, यथा—*'गारी मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।'* (९९ छंद) (*'लै लै नाम पुरुष अरु नारी'* अर्थात् राजा जनक, उनके भाई और परिवारके पुरुषोंका नाम लेकर उनके साथ कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा इत्यादि रानियों और बारातियोंकी स्त्रियोंका सम्बन्ध वर जोड़ा मिला-मिलाकर गाती थीं। राजा और सभी बारातियोंको गाली देती थीं।)]

टिप्पणी—२ *'समय सुहावनि गारि बिराजा·······'* इति (क) गालियाँ न तो सुहावनी होती हैं और न किसीको सुहाती हैं। वे सदा *'असुहावनी'* होती हैं। गाली देनेसे शोभा भी नहीं होती, यथा—*'गारी देत न पावहु सोभा।'* (२७४। ८) इसीसे कहते हैं—*'समय सुहावनि'।* अर्थात् जब गाली-गान विवाह आदिके समय होता है, तब गाली भी *'सुहावनी'* अर्थात् सुखद होती है और शोभा भी देती है। *'सुहावनि'* और *'बिराजा'* दो विशेषण देनेका भाव यह है कि मधुर ध्वनिसे गायी जा रही हैं, इससे सुहावनी अर्थात् श्रवण-सुखद हैं और स्त्री-पुरुषोंका नाम ले-लेकर व्यङ्गसे गाली दे रही हैं, इसीसे विशेष शोभित हैं। (यों भी अर्थ कर सकते हैं कि—(विवाह) समयकी सुहावनी गालियाँ शोभा दे रही हैं अर्थात् विवाहका समय है, इस समयके योग्य जो गाली-गान होता है वह सुहावना लगता ही है। अन्य समयमें यही गाली सुहावनी नहीं लग सकती। यथा—*'फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय बिचारि। सबके मन हर्षित करै, ज्यों बिवाह में गारि॥ नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात। जैसे बर्नन युद्ध में रस सिंगार न सुहात॥'* यह विवाह-समय है, इसीसे गालियाँ सुहावनी लगती हैं।) *'हँसत राउ सुनि सहित समाजा'* इति। सहित समाज हँसनेका भाव कि स्त्रियाँ राजाको समाजसहित गालियाँ दे रही हैं, इसीसे सब समाज भी हँसता है। जब गाली-गान हुआ तब अनुरक्त हो गये, यथा—*'गारि गान सुनि अति अनुरागे'।* और जब स्त्री-पुरुषोंका नाम ले-लेकर गाली गाने लगीं तब व्यङ्ग सुनकर हँसी आ जाती है। [(ग) कुछ महानुभाव कहते हैं कि स्त्रियाँ गाली गाते-गाते श्रीरामजीकी छबि देखकर भूलकर उलटी गाली गा गयीं अर्थात् जनकपुरकी स्त्रियोंमेंसे किसीका सम्बन्ध अवधेशजीसे लगा गयीं, इसीपर सब-के-सब हँस पड़े। अथवा गाते-गाते रुक गयीं तो सब हँस पड़े कि बस अब चुक गयीं इत्यादि। (घ) मयङ्ककार लिखते हैं कि रनवासकी सखियाँ महाराज दशरथको गाली देती हैं कि रामलला श्याम हैं और आप गोरे जान पड़ते हैं कि वे तुम्हारे पुत्र नहीं, तब महाराजने कहा कि हमारे यहाँ पृथ्वीमें हल चलाकर संतान नहीं पैदा की जाती, ऐसा कहकर समाजसहित हँसे।]

टिप्पणी—३ *'एहि बिधि सबही भोजनु कीन्हा।·······'* इति। (क) बारात बहुत बड़ी है। जहाँपर राजा समाजसहित बैठे हैं, वहाँके भोजन-विधिका वर्णन किया। जहाँ बड़े विस्तारसे लोग बैठे हैं, वहाँका वर्णन नहीं किया गया। वहाँका वर्णन *'एहि बिधि सबही भोजनु कीन्हा'* से हो गया। अर्थात् जिस विधिसे राजाने भोजन किया उसी विधिसे सबने किया। भाव यह है कि पंक्तिभेद नहीं हुआ। (*'एहि बिधि'* से तात्पर्य यह कि *'पंचकवल करि जेवन लागे'* से *'हँसत राउ सुनि सहित समाजा'* तक जो कहा वही *'एहि बिधि'* है। *'सबही'* से राजा, चारों भाई श्रीराम-भरतादि, तथा समस्त बारातको सूचित किया। क्योंकि यदि *'सबही'* में राजा आदि नहीं हैं तो उनका आचमन करना भी इनसे पृथक् कहना चाहिये था।) *'आचमन दीन्हा'* से जनाया कि करानेवाले सबको आचमनके लिये जल दे रहे हैं, यथा—*'अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो'* (९९ छंद)।

टिप्पणी—४ *'देइ पान पूजे जनक.......'* इति। (क) [नोट—'पूजा' प्रायः जल, फूल-फल इत्यादिका देवी-देवता महात्मा आदिपर चढ़ाने या उनको समर्पण करनेका नाम है, पर इसका प्रयोग 'आदर-सत्कार' के अर्थमें भी होता है। वही अर्थ यहाँ समझना चाहिये। इसमें भोजनके पश्चात् भेंट आदि जो कुछ दी जाय वह भी आ जाती है और अतर-फूल इत्यादिसे खातिर करना भी आ जाता है] *'पूजे'* अर्थात् फूलमाला पहनाया, अतर-चन्दन लगाया, इत्यादि। यथा—*'अँचै पान सब काहू पाए। स्त्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥'* (३५५। २) (ख) *'सहित समाज'* का भाव कि जैसा आदर-सत्कार दशरथजीका किया वैसा ही सब समाजका। (ग) *'दसरथु सहित समाज'* देहलीदीपक है, *'पूजे दसरथु सहित समाज'* और *'दसरथु सहित समाज जनवासेहि गवने मुदित'*। *'मुदित सकल भूप सिरताज'* का भाव कि जो पदार्थ किसी राजाको प्राप्त नहीं वह सब इनको प्राप्त है, फिर भी ये श्रीजनकजीकी पहुनाईसे मुदित हुए।

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥ १॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुनगन गावन लागे॥ २॥
देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥ ३॥
प्रात क्रिया* करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥ ४॥
करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी॥ ५॥

शब्दार्थ—जामिनी (यामिनी)=रात। **प्रात क्रिया**=शौच, स्नान, सन्ध्यावन्दन इत्यादि।

अर्थ—जनकपुरमें नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं। दिन-रात पलके समान बीतते जा रहे हैं॥ १॥ बहुत तड़के राजशिरोमणि श्रीदशरथजी जगे, याचक गुणगण गाने लगे॥ २॥ सुन्दर (चारों) राजकुमारोंको सुन्दर बहुओंसहित देखकर जो आनन्द उनके मनमें है वह कैसे कहा जा सके?॥ ३॥ प्रातःकालकी नित्य क्रिया करके वे गुरुजीके पास गये। उनके मनमें महान् आनन्द और प्रेम भरा हुआ है॥ ४॥ प्रणाम और पूजा करके हाथ जोड़कर वे मानो अमृतमें डुबोयी हुई वाणी बोले॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'नित नूतन मंगल पुर माहीं।.....'* इति (क) श्रीजनकमहाराजके यहाँका मङ्गल कहकर अब पुरका मङ्गल कहते हैं। जब जनकजीके घरका मण्डप-माँड़व कहा था तब पुरका भी मण्डप कहा था, यथा—*'जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥'*—(२८९। ६) देखिये। राजाके मङ्गलको पुरवासी अपना मङ्गल मानकर सभी अपने-अपने घरमें मङ्गल करते हैं। पुनः, *'नित नूतन....'* का भाव कि जितने राजकुमार [*'छरे छबीले छयल.......'* जिन्हें पूर्व कह आये तथा और भी कुमार जो बारातमें आये उन सबका विवाह जनकपुरमें नित्यप्रति होता जाता है, अतः नित्य नया मङ्गल पुरमें होना कहा। अथवा, पुरमें सब कोई बारात अपने यहाँ रखना चाहता है, सबके घर विवाहोत्सव होता है, उसमें सब कोई बारातको निमन्त्रित करता है, यह भाव दर्शित करनेके लिये *'नित नूतन मंगल पुर माहीं'* कहा। पूर्व कह आये हैं कि *'सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥'* (२१४। ३) ये अवश्य ही बारातको अपने यहाँ प्रीतिभोजननिमित्त निमन्त्रण देते होंगे। चारों भाई जब पुरमें निकलते होंगे तब नित्य ही पुरभरको आनन्द मिलता होगा। इत्यादि]। (ख)—*'निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं'* भाव कि सुखके दिन शीघ्र बीतते हैं यथा—*'सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥'*

टिप्पणी—२ *'बड़े भोर भूपतिमनि जागे।....'* इति। (क) *'बड़े भोर'* अर्थात् एक पहर रात रहे। यथा—*'पहले पहर भूप नित जागा॥'* (२। ३८) तीन पहर रात बीतनेपर जो चौथा पहर आता है, उसकी गिनती *'बड़े भोर'* में है। रात तीन ही पहरकी मानी जाती है, 'त्रियामा' रात्रिका एक नाम ही है; इसीसे चौथा पहर 'भोर' में गिना जाता है। (ख) भूपतिमणि अर्थात् सब राजाओंमें श्रेष्ठ हैं, यथा—*'बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं*

* क्रिया—१६६१।

सब दसरथ गुनगाथा॥' यही बात दूसरे चरणमें कहते हैं—*'जाचक'''।'* याचकोंने राजाका उदार गुण आँखों देखा है कि विवाहके समय उन्होंने ऐसा दान किया कि याचकोंके लिये न लिया गया। यथा—*'दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहि आवा॥'* (३२६। ७) इसीसे राजाके उदारता आदि गुण गाते हैं।

टिप्पणी—३ *'देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता।'* इति। (क) *'देखि'* से सूचित करते हैं कि चारों कुमार और चारों वधुएँ राजासे पहले ही जागकर राजाको प्रणाम करने गये हैं; यथा—*'प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥'* (२०५। ७) *'गुरु ते पहिले जगतपति जागे राम सुजान॥'* (२२६) यहाँ चारों भाइयोंका प्रणाम करना नहीं लिखा, क्योंकि यहाँ राजाका नित्य कृत्यका वर्णन कर रहे हैं। यहाँ चारों भाइयोंके कृत्यके वर्णनका प्रकरण नहीं है; इसीसे यहाँ आशयसे प्रणाम करना सूचित किया है। अथवा, एक जगह प्रात:काल प्रणाम करना लिख चुके हैं, उसीसे नित्यका यह कर्म बता चुके हैं, इसीसे यहाँ नहीं लिखा। (ख) *'बर'* देहलीदीपक है। (ग) *'किमि कहि जात मोदु मन जेता'* अर्थात् वह मन और वाणीसे परेकी बात है, इसीसे कहते नहीं बनता। यथा—*'सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।'* *'बर कुअँर'* के अनुरूप ही *'बर बधू'* हैं, जैसे श्रेष्ठ ये चारों भाई हैं, वैसी ही श्रेष्ठ चारों बहुएँ हैं, यह देख बड़ा मोद हुआ।

टिप्पणी—४ *'प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं'''''''* इति। (क) प्रात:क्रिया श्रीरामजीके द्वारा कह चुके हैं, यथा—*'सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥'* (२२७। १) (ख) *'महाप्रमोदु'* का भाव कि वधुओंसमेत पुत्रोंको देखनेसे 'मोद' हुआ और गुरुके दर्शनसे 'महाप्रमोद' हुआ। गुरुदर्शनसे अधिक आनन्द हुआ, क्योंकि वाल्मीकिजीका वचन है कि *'तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥ सब करि माँगहिं एक फलु राम चरन रति होउ। तिन्हके मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ॥'* (२। १२९) (गुरुकी कृपा और आशीर्वादसे ये सब प्राप्त हुए हैं, यथा—*'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥ सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥'* (१। १८९) *'तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥''''''''''* (२०८। ८) अत: गुरुके दर्शनसे महाप्रमोद हुआ)। पुन:, माधुर्यमें यह भाव है कि स्वार्थमें अधिक प्रीति है, इसीसे गुरुदर्शनमें अधिक आनन्द होता है। *'महा'* 'प्रमोद' और 'प्रेम' दोनोंका विशेषण है।

टिप्पणी—५ *'करि प्रनाम पूजा कर जोरी।'*—*'करि'* का अन्वय प्रणाम और पूजा दोनोंमें है। इससे जनाया कि पूजनकी सामग्री पुष्प, माला, चन्दन, अतर आदि साथमें लिये हुए गये हैं। यहाँ राजाकी गुरुजीमें मन, तन और वचन तीनोंसे भक्ति दिखाते हैं—*'महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं'* यह मनकी भक्ति है, *'करि प्रनामु पूजा कर जोरी'* यह तनकी और *'बोले गिरा अमिय जनु बोरी'* यह वचनकी भक्ति है।

तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयेउँ आजु मैं पूरन काजा॥ ६॥
अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाई॥ ७॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥ ८॥

दो०—बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आये मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥ ३३०॥

अर्थ—हे मुनिराज! सुनिये! मैं आपकी कृपासे आज पूर्णकाम हुआ॥ ६॥ हे गोसाईं! अब सब ब्राह्मणोंको बुलाकर सब प्रकारसे गौओंको अलंकृत करके उन्हें दीजिये॥ ७॥ गुरुने यह सुनकर राजाकी बड़ाई करके फिर मुनियोंको बुलवा भेजा॥ ८॥ वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियोंके समूह आये॥ ३३०॥

टिप्पणी—१(क) **पूरन काजा**=पूर्णकाम; सफल मनोरथ; कृतकृत्य। **'मुनिराज'** कहनेका भाव कि जैसे आप बड़े हैं वैसे ही आपकी कृपा बड़ी है। कृपाकी बड़ाई कहनेके लिये ही यहाँ मुनिकी बड़ाई

की (जैसे आगे विश्वामित्रजीसे कहा है,—*'यह सबु सुख मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥'* (३३१) वहाँ भी *'मुनिराज'* सम्बोधन देकर *'कृपा'* की बड़ाई की है कि कृपा-कटाक्षके प्रसादसे यह सब सुख हुआ)। *'पूरन काजा'* कहनेका भाव कि राजाके मनमें यह कामना रही है कि हमारे पुत्रोंके योग्य, उन्हींके अनुरूप पुत्रवधुएँ मिलें, यह कामना पूर्ण हो गयी। *'आजु'* कहनेका भाव कि आज सबेरे प्रातःकाल ही बहुओंसहित पुत्रोंको देखा है, इसीसे 'आज' पूर्णकाम होना कहते हैं, यथा—*'आजु सुफल जग जनम हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा॥'* (ख) *अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं'* इति। वसिष्ठजीसे ब्राह्मणोंको बुलवानेको कहते हैं क्योंकि गऊ अधिकारी ब्राह्मणोंको दी जाती है, अनधिकारीको देनेसे पाप होता है। इसीसे ब्राह्मणोंका बुलाना उनके अधीन रखा, वे ही अधिकारी जान सकते हैं। [वेदपाठी, कुलीन, यज्ञादि कर्मधर्मनिष्ठ, क्षमावान्, पापसे डरनेवाला, इत्यादि गुण विशिष्ट ब्राह्मण इस दानके अधिकारी हैं। (पं०)] अथवा वसिष्ठजीके बुलानेसे सब ऋषि-मुनि आ सकते हैं, इसीसे उन्हींसे बुलवानेको कहा। *'गोसाईं'* बड़ेको कहते हैं, यह 'स्वामी' का पर्याय है। फिर भी यहाँ प्रसङ्गानुकूल *'गोसाईं'* का अर्थ यह है कि आप सब 'गायोंके स्वामी' हैं, जिसको आप चाहें उसको दें। (ग) *'देहु धेनु'*—सवत्सा दूध देनेवाली गऊको 'धेनु' कहते हैं। राजाने गायोंकी संख्या नहीं कही, क्योंकि वसिष्ठजी जानते ही हैं मण्डपतले चार लक्ष गौका संकल्प राजा कर चुके हैं। (घ) *'सब भाँति बनाई'*—यह आगे स्पष्ट किया है, यथा—*'चारि लक्ष बर धेनु मँगाई। काम सुरभि सम सील सुहाई॥ सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं॥'* (३३१। २-३) अर्थात् सुवर्णके शृङ्ग (सींग) सींगोंमें पहनाकर, ताँबेकी पीठ, चाँदीके खुर, सुवर्णकी दोहनी, मणिपुष्पोंकी माला, ओढ़नेका बढ़िया वस्त्र इत्यादि *'सब भाँति'* का बनाव वा शृङ्गार है। [यथा—'**गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः। एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः॥ सुवर्णशृङ्ग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः। गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः॥** (वा० रा० १। ७२। २२-२३)।' अर्थात् अपने एक-एक पुत्रके लिये एक-एक लक्ष गऊ संकल्प करके दीं। इस तरह चार लक्ष गौएँ दीं। इन गौओंकी सींगें सोनेसे मढ़ी थीं, सब सवत्सा और भरी पूरी थीं। साथमें काँसेकी दोहनी भी थीं।]

टिप्पणी—२ *'सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई।'*...... ' इति। (क) *'महिपाल बड़ाई'* का भाव कि पृथ्वीका पालन-पोषण धर्म लेकर राजाकी बड़ाई की। पृथ्वीका पालन धर्मसे होता है, यथा—*'चाहिअ धरमसील नर नाहू।'* (२। १७९) राजाकी धर्ममें अत्यन्त श्रद्धा देख मुनिने राजाकी प्रशंसा की, अतः *'महिपाल'* शब्द दिया। *'महिपाल'* शब्दसे ही यह भी जनाया कि क्या बड़ाई की। यह कहा कि हे महिपाल! आप ऐसा क्यों न कहें, आपके ही धर्मसे पृथ्वीका पालन हो रहा है। (श्रीरामजीने भरतजीसे कहा है—*'भरत भूमि रह राउरि राखी।'* (२। २६४। १) यहाँ वसिष्ठजीने राजाको *'महिपाल'* कहकर वही भाव दरसाया है।) (ख) राजाकी बड़ाई करनेमें भाव यह है कि मुनि राजाके अमृत-समान वचन सुनकर इतने प्रसन्न हुए कि उनकी बड़ाई करने लगे, प्रशंसा किये बिना रहा न गया। राजाने कहा था कि *'अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु'*। मुनि राजाका आशय समझ गये कि राजा 'सब' ब्राह्मणोंको इसलिये बुलाकर गौ देना चाहते हैं कि जिसमें उन्हें सब मुनियोंके दर्शन हो जायँ और सबसे आशीर्वाद मिले नहीं तो सब मुनियोंके यहाँ गायें भेज देते, अतः वसिष्ठजी प्रसन्न हुए। (ग) *'मुनिबृंद'* को बुलाया क्योंकि राजाने 'सब विप्र' कहा था। विप्रसे मुनि जनाया।

टिप्पणी—३ *'बामदेव अरु देवरिषि'*..... ' इति। (क) वामदेवजी ऋषियोंकी गणनामें आदिमें (प्रथम) गिने जाते हैं, यथा—*'बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।'* (३२०) इसीसे इनका नाम आदिमें दिया। तपमें विश्वामित्रजीकी प्रथम गणना है, इससे *'कौसिकादि तपसालि'* कहा। तपसालि अर्थात् तपद्वारा शोभित। इस दोहेमें पाँच मुनियोंके नाम लिखकर फिर *'आए मुनिबर निकर'* कहनेसे सूचित हुआ कि सब मुनि इन पाँचों मुनियोंके समान ही हैं। सब मुनि अग्रगण्य हैं। (इससे कहीं किसीको आदिमें और कहीं किसीको आदिमें लिखते हैं) यथा—*'नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कौसलाधीसा॥'* (७। २७), *'जान आदि कबि नाम प्रतापू।'* (१। १९), *'कौसिकादि मुनि सचिव

समाजू।' विश्वामित्रजी तपस्वियोंमें अग्रगण्य हैं, तपद्वारा क्षत्रियसे ब्रह्मर्षि हुए हैं। चारों वेद और गायत्री सभीने रूप धारण कर विश्वामित्रके पास आकर उनसे कहा था कि आप ब्राह्मण हो गये, हम आपको प्राप्त हैं। वसिष्ठजी भी उनकी प्रशंसा करते हैं, यथा—*'मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥'* (३५९। ६) कोई-कोई 'मुनिवर' को वामदेव, नारद, वाल्मीकि और जाबालिका विशेषण और 'तपसालि' को 'कौसिकादि' का विशेषण मानते हैं। परंतु 'आदि' शब्द अन्तमें देनेसे मुनिवर और तपसालि सभीके विशेषण जान पड़ते हैं। हाँ 'तपसालि' कौशिकके पश्चात् इससे दिया कि तपमें ये सबसे बढ़े हुए हैं। इन्हें शरीरधारी तपस्या, तपस्याकी मूर्ति ही कहा गया। यथा—'**एष राम मुनिश्रेष्ठ एष विग्रहवांस्तपः।**' (वाल्मी० १। ६५। २९) ये शतानन्दजीके वाक्य हैं।

प० प० प्र०—दशरथजीने विप्रोंको बुलानेको कहा। वसिष्ठजीने मुनिवृन्दको बुला भेजा और कविने *'आये मुनिबर निकर'* कहा। इससे जनाया कि इस गोदानके अधिकारी तपस्वी मुनिवर ही थे। ये सब विप्र हैं और मुनिवर। इसीको वसिष्ठजीने बुलाया था। प्रतिग्रह और लोकमान्यता तपकाननको जला डालता है, यह जानते हुए भी देवर्षि नारद-सरीखे महाभागवत लेने आये, क्योंकि वे जानते हैं कि राम कौन हैं और वह दान श्रीरामविवाहाङ्गभूत है।

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥ १॥
चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। कामसुरभि सम सील सुहाई॥ २॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही॥ ३॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥ ४॥
पाइ असीस महीसु अनंदा। लिये बोलि पुनि जाचक बृंदा॥ ५॥

अर्थ—राजाने सबोंको दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमसहित पूजा करके उनको उत्तम आसन (बैठनेको) दिये॥ १॥ चार लाख उत्तम गौएँ मँगायीं जो कामधेनुके समान सुन्दर चरित्रवाली॥ २॥ सब प्रकार सब सजायी हुई थीं। राजाने उन गौओंको प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको दिया॥ ३॥ राजा बहुत तरहसे विनती कर रहे हैं कि संसारमें आज ही मैंने जीनेका लाभ पाया॥ ४॥ आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। फिर भिक्षुकोंके समूहोंको बुलवा दिया॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'दंड प्रनाम'* अर्थात् साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम। (२६९। २) में देखिये। तात्पर्य कि जैसे मन-वचन-कर्म तीनों गुरुभक्तिमें लगाये वैसे ही इन तीनोंसे ही मुनियोंको प्रणाम किया। 'दण्ड प्रणाम' से निरभिमानता, शालीनता और विप्रोंमें अत्यन्त प्रीति दिखायी। लज्जा छोड़कर साष्टाङ्ग पड़ गये। (प्र० सं०) (ख) *'पूजि सप्रेम'* क्योंकि महानुभाव भक्तिसे संतुष्ट होते हैं। यथा—'**भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः।**' *'बरासन दीन्हे'*—भाव कि जैसे ये सब 'मुनिवर' श्रेष्ठ मुनि हैं वैसे ही इनको श्रेष्ठ आसन दिये। मुनि *'बर'* हैं अतः उनके योग्य आसन भी *'बर'* हैं। [यहाँ प्रथम (पूजा) कहकर आसन देना लिखनेसे सूचित हुआ कि पहले अर्घ्य दिया फिर आसनपर बिठाकर आसनादि पूजोपचार किये गये। यथा—*'सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥'* (२। ९। ३), *'अरघ देइ आसन बैठारे'*, *'पद पखारि बर आसनु दीन्हा।'* (६६। ६) (प० प० प्र०) (ग) *'चारि लच्छ बर धेनु मँगाई'* इति। चार पुत्रोंके विवाह हुए हैं, इसीसे (एक-एकके निमित्त एक-एक लक्ष इस तरह) चार लक्ष गौओंका संकल्प मण्डपतले किया था, अब दे रहे हैं, इसीसे यहाँ संकल्प करना नहीं लिखते। जैसे *'मुनिबर'* के सम्बन्धसे *'बरासन'* कहा, वैसे ही यहाँ *'बर धेनु'* का देना कहते हैं। राजाने वसिष्ठजीसे *'धेनु'* देनेको कहा था—*'धेनु देहु सब भाँति बनाई'।* वसिष्ठजीने राजाके चित्तके अनुकूल उनके कहेसे अधिक किया कि *'बर धेनु'* मँगायीं। धेनु अर्थात् सवत्सा सदुग्धा गऊ। *सील* (शील)=आचरण, स्वभाव। *समसील*=समान स्वभाववाली। अर्थात् जब दूधकी इच्छा हो तभी दे देनेवाली तथा मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाली इत्यादि।)

टिप्पणी—२ (क) *'सब बिधि सकल अलंकृत कीन्ही'* अर्थात् सब प्रकारसे सब गायें अलंकृत की हुई हैं, कामदार आदि सेवक गहने आदिसे सजाकर लाये हैं। *'मुदित'*—गायोंको सब प्रकार अलंकृत देखकर *'मुदित'* हुए और मुदित होकर दिया। (ख) *'मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही'* इति। श्रीरामजीका स्मरण करते, दान देते और गुरुको प्रणाम करनेमें हर्ष होना चाहिये, यथा—*'रामहि सुमिरत रन भिरत, देत, परत गुर पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलक तनु ते जग जीवत जाय॥'* (दोहावली ४२) इसीसे तीनोंमें हर्ष लिखते हैं। यथा—*'देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता। कहि किमि जात मोद मन जेता॥'* (३३०। ३)—यह श्रीरामजीके दर्शनमें हर्ष हुआ। *'प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥ करि प्रनाम पूजा कर जोरी'*। यह गुरुको प्रणाम करनेमें हर्ष हुआ और *'मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही'*—यहाँ दान देनेमें हर्ष दिखाया। (ग) *'महिप महिदेवन्ह'* का भाव कि राजा महिकी रक्षा करते हैं, इसीसे उन्होंने (महिके देवताओं) महिदेवोंको प्रसन्न किया, क्योंकि इन्हींकी कृपासे महिकी रक्षा होती है।

टिप्पणी—३ *'करत बिनय बहु बिधि नरनाहू।'*······' इति (क) श्रीदशरथजी महाराजकी मुनियोंमें गुरुभावना है, वह यहाँ दिखाते हैं। जैसे उन्होंने गुरुको प्रणाम किया, उनका पूजन किया और हाथ जोड़े, यथा—*'करि प्रनामु पूजा कर जोरी'*, वैसे ही मुनियोंको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और आसन दिया—*'दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥'* (वसिष्ठजीके आसनपर गये थे, इसीसे वहाँ आसन देना न कहा।) गुरुसे विनय की थी,—*'तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयेउँ आजु मैं पूरनकाजा॥'* वैसे ही मुनियोंसे विनय करते हैं—*'लहेउँ आजु जग जीवन लाहू।'* (ख) *'करत बिनय'* का भाव कि बड़े लोग पदार्थ देकर विनय करते हैं, यथा—*'दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो। का देउँ पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥ १०१॥'*, *हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई। तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥ क्यों करें बिनय बिदेह कियो बिदेहु मूरति साँवरी।'* (३२४) वैसे ही यहाँ राजा गौएँ देकर विनती करते हैं। (दान देकर विनय करना आदर दान सूचित करता है। इससे देनेमें निरभिमानता पायी जाती है।) (ग) *'बहु बिधि'* यह कि मैं आपको कुछ देनेयोग्य नहीं हूँ, आप तो पूर्णकाम हैं; साधु भावसे प्रसन्न होते हैं, यही सोचकर यह कुछ आपको समर्पण करता हूँ; आपके दर्शनोंसे मुझे जीवनका लाभ मिल गया, जीवन सफल हुआ; आपके आगमनसे मेरे बड़े भाग्य उदय हुए, यथा—*'भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥'* (३५२। २) इत्यादि *'बहुबिधि'* है।

टिप्पणी—४ (क) *'पाइ असीस'* से जनाया कि राजाकी विनती सुनकर सबने आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पाकर राजा प्रसन्न हुए; क्योंकि मुनियोंका आशीर्वाद अमोघ है, उसका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है। बड़ा सौभाग्य जानकर आनन्दित हुए। (ख) *'लिये बोलि पुनि जाचक बृंदा'* इति। पूर्व कहा था कि *'बड़े भोर भूपति मनि जागे। जाचक गुनगन गावन लागे॥'* (३३०। २) उन्हींको अब बुलाया। *'पुनि'* अर्थात् विप्रोंको देनेके पश्चात् इनको बुलाया। गोदान देनेमें बहुत बातोंका विचार करना होता है, इसीसे मुनियोंको गुरुजीके द्वारा बुलवाया और याचकोंको स्वयं बुलाया। (याचक गोदान लेनेके अधिकारी नहीं हैं, इससे उनको अब बुलाया।) *'पुनि'* का दूसरा भाव कि पूर्व कई बार याचकोंको दे चुके हैं, यथा—*'प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। मैं बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥'* (३०६। ३), *'दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहि आवा॥'* (३२६। ७); अब फिर देनेके लिये बुलाया।

नोट—यहाँ कन्यादान लिया गया है। परिग्रह दान जो लेता है उसीको अपने हाथसे प्रायश्चित्तका दान करना चाहिये। यहाँ पुत्रोंसे न करवाकर राजाने किया, इसका क्या प्रयोजन? इस प्रश्नको उठाकर पंजाबीजी इसका उत्तर देते हैं कि ऋषि जानते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, सीताजी उनकी आदिशक्ति हैं; उनके विषयमें परिग्रह दान और प्रायश्चित्त कहना नहीं बनता, रहे तीनों भाई सो वे भी तद्रूप हैं, इन्हींके अंश हैं इसीसे कन्यादानके समय समर्पण करना कहा गया। यथा—*'तिमि जनक रामहि सिय समरपी* ·········' (३२४ छंद)।

कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥ ६॥
चले पढ़त गावत गुनगाथा। जय जय जय दिनकर कुलनाथा॥ ७॥
येहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकै न बरनि सहस मुख जाहू॥ ८॥
दो०—बार बार कौशिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
येह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाक्ष पसाउ॥ ३३१॥

शब्दार्थ—**नंदन**=आनन्द देनेवाले। **कटाक्ष**=चितवन, दृष्टि। प्रायः तिरछी चितवनके अर्थमें आता है। पसाउ=प्रसाद; प्रसन्नता; यथा—'*सपनेहु साचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ॥*' (१। १५)

अर्थ—सूर्यकुलको आनन्द देनेवाले श्रीदशरथजीने उनकी इच्छा पूछ-जानकर उन्हें स्वर्ण, वस्त्र, मणि (रत्न), घोड़े, हाथी, रथ (जो जिसने चाहा वह) दिये॥ ६॥ वे पढ़ते, गुणगाथा गाते चले। सूर्यकुलके नाथकी जय हो जय हो जय हो!! ॥ ७॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके विवाहका उत्सव हुआ। जिसके सहस्रमुख हैं वह भी उसे वर्णन नहीं कर सकता॥ ८॥ विश्वामित्रजीके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करके राजा कहते हैं 'हे मुनिराज! यह सब सुख आपकी कृपाकटाक्षका प्रसाद है'॥ ३३१॥

टिप्पणी—१ (क) '*कनक बसन*……' इति। इस क्रमका भाव यह है कि कनक, वस्त्र और मणि पहननेकी चीजें हैं और घोड़े, हाथी, रथ सवारीकी चीजें हैं। पहले सबको वस्त्र और आभूषण पहनाकर और जो-जो वस्तु उन्होंने चाही उसे रथादिमें रखकर उनको रुचि अनुकूल सवारीपर चढ़ाकर तब विदा किया। कनक और मणिसे आभूषण सूचित किये। यथा—'*नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥ भूषन बसन बाजि गज दीन्हें। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हें॥*' (१। ३४०) कनक और मणिके बीचमें '*बसन*' को कहकर बहुमूल्य जरकशी कामदारके वस्त्र जिनमें मणि-मोती लगे हैं सूचित किये। [(ख) '*बूझि रुचि*' से आदरपूर्वक दान सूचित हुआ। जिसमें रुचि नहीं है वह वस्तु पानेसे प्रसन्नता नहीं होती। मनकी वस्तु मिलनेसे चित्त प्रसन्न होता है।] (ग) '*रबिकुलनंदन*' का भाव कि उदारता देखकर रविकुल प्रसन्न होता है। राजा ज्यों-ज्यों उदारता दिखाते हैं त्यों-त्यों रघुवंशी सुखी होते हैं। पुनः भाव कि जैसे राजा सब वस्तु देकर रघुवंशियोंको आनन्द देते हैं, वैसे ही याचकोंको देकर आनन्दित किया। तात्पर्य कि राजाने अपने घरके लोगोंके समान याचकोंको दिया। (भाव यह कि इस कुलमें उदारता सदासे प्रसिद्ध चली आती है कि '*मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं।*' (२३१। ८) रघुवंशी सदा उदारतामें आनन्द मानते आये हैं। सारा राज्य प्रसन्नतापूर्वक दे दिया है।)

टिप्पणी—२ (क) '*चले पढ़त गावत गुनगाथा*' इति। भाव यह कि भाट पढ़ते चले, गुणगायक गुण गाते चले, इनके अतिरिक्त और जो याचक हैं वे जय-जयकार करते चले। [यहाँ '*पढ़त*' और '*गावत*' दो शब्द दिये हैं। क्योंकि जो पढ़े हैं वे आशीर्वाद आदिके श्लोक पढ़ते हुए चले, भाट आदि गुणगाथा गाते हुए चले। और सभी जय-जयकार कर रहे हैं। पुनः ऐसा भी हो सकता है कि गोदान पाकर मुनियोंका जाना नहीं कहा गया था, यहाँ एक साथ ही सबका जाना कहा गया। इस प्रकार '*चले पढ़त*' यह विप्रबृंदके सम्बन्धमें कहा गया और '*गावत गुन गाथा*' याचकोंके लिये। (प्र० सं०)] (ख) '*जय जय जय दिनकर कुलनाथा*'—भाव कि सूर्यकुल उदार है, आप उस कुलके नाथ हैं, अतः ऐसी उदारता आपके योग्य ही है। पुनः भाव कि ऊपर '*रबिकुलनंदन*' अर्थात् सूर्यवंशके आनन्ददाता कहा गया, उसी सम्बन्धसे याचक कहते हैं कि रविकुलनाथकी जय हो, जिसमें रविकुल सदा आनन्दित रहे। तीन बार जय कहकर सदा जय सूचित की। तीन बहुवचन है।

टिप्पणी—३ '*येहि बिधि राम बिआह उछाहू।*……' इति (क) जनकपुरमें जो विवाहोत्सव हुआ यहाँ उसकी इति लगाते हैं। अयोध्याजीमें जो विवाहका उत्सव हुआ उसकी इति बालकाण्डकी समाप्तिमें लगावेंगे। यथा—'*प्रभु बिबाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥*' (३६१। ६) दोनों इतियोंका स्वरूप

एक ही तरहका कहकर सूचित किया कि जनकपुरवासी और अवधवासी दोनोंने समान (एक-सा) उत्सव किया। (ख) *'सकै न बरनि सहस मुख जाहू'*—भाव कि दो हजार जिह्वा और एक हजार मुखवाले नहीं कह सकते तब मेरे तो एक ही जिह्वा और एक ही मुख है, मैं क्योंकर कह सकता हूँ?

टिप्पणी—४ *'बार बार कौशिक चरन……'* इति। (क) चरणोंमें बार-बार सिर नवानेसे राजाका प्रेम सूचित हुआ। यथा—*'पद अंबुज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥'*, *'देखि राम छबि अति अनुरागी। प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी॥'* (३३६। १) अथवा, उपकार मानकर बार-बार चरणवन्दन करते हैं, कृतज्ञता जनाते हैं। यथा—*'मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥'* (७। १२५) और मुखसे उपकार कहते हैं कि *'येह सबु सुखु…'* (ख) *'मुनिराज'* सम्बोधनका भाव कि जैसे आप बड़े हैं वैसे ही आपके कृपा-कटाक्षका प्रसाद भी बड़ा भारी है। यथा—*'तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयेउँ आजु मैं पूरन काजा॥'* (३३०। ६) (ग) मुनियों और याचकोंके चले जानेके पश्चात् विश्वामित्रजीके चरणोंकी वन्दना की, क्योंकि ये तो अपने साथ जनवासेमें ही हैं, इन्हें अभी कहीं जाना नहीं है और सब बाहरसे बुलाये गये थे और उन्हें अपने-अपने स्थानोंको लौट जाना था।

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति* सराह बिभूति॥ १॥
दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥ २॥
नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥ ३॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दशरथ गवनु सोहाइ न काहू॥ ४॥
बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥ ५॥

शब्दार्थ—बिभूती (विभूति)=बहुतायत, वृद्धि; ऐश्वर्य। **दिन**=नित्यप्रति; प्रति दिन। **बिदा** (सं० विदाय)=चलनेकी आज्ञा या अनुमति। **रजु** (रज्जु)=रस्सी। **सोहाइ** (सुहाना)=अच्छा लगना।

अर्थ—श्रीजनकजीके स्नेह, शील, करनी और विभूतिकी राजा सब प्रकार सराहना करते हैं॥ १॥ प्रतिदिन उठकर अवधेशजी महाराज विदा (चलनेकी आज्ञा) माँगते हैं। जनकजी अनुरागपूर्वक (उनको रोक) रखते हैं॥ २॥ नित्य नया आदर-सत्कार बढ़ता जाता है, प्रतिदिन हजारों प्रकारसे मेहमानी होती है॥ ३॥ नगरमें नित्य नवीन आनन्द उत्सव होता है। श्रीदशरथजीका जाना किसीको नहीं सुहाता॥ ४॥ इस प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो बराती प्रेमरूपी रस्सीसे बँधे हुए हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'जनक सनेहु सीलु करतूती।…'* इति। (क) राजाने जनकजीका शील-स्नेह देखा है। यथा—*'कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों। बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥ संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए। येहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥'* (३२६ छंद) इसीसे शील और स्नेहकी सराहना करते हैं। नित्य पहुनाई करते हैं, नाना प्रकारके पदार्थ अर्पण करते हैं, इत्यादि 'करतूति' है, जिसकी प्रशंसा करते हैं। (ग) शील, स्नेह मनकी वृत्ति है और करतूत तनकी। इस तरह मन और तन दोनोंकी सराहना करना कहा। शील और स्नेहका संग है। जहाँ शील है वहाँ स्नेह है और जहाँ स्नेह है वहाँ शील है, यथा—*'को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनि हारा॥'* (२। २४) *'करुनानिधानु सुजानुसील सनेह जानत रावरो॥'* (१। २३६) *'सीलु सनेह छाड़ि नहीं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥'* (२। ८५। ५) *'बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥'* (३३६। ५) इत्यादि।

टिप्पणी—२ ((क) *'दिन उठि बिदा अवधपति मागा'* इति। [दिन=नित्यप्रति, प्रतिदिन, रोज, सदा।

---

* राति सराह बिभूती—१७२१, १७६२ को० रा०। राति सराहत बीती—छ०, भा० दा०, पं० रा० व० श०। भाँति सराह बिभूती—१६६१, १७०४। (१६६१ में 'भाती' है। लेखक प्रमाद है।)

यथा—'*गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवो दीनबंधु दिन दानी॥*' (१। १५), '*दानी बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी*' (विनय० ५)] '*दिन उठि*' का भाव कि बहुत टिके-टिके जी घबड़ा गया। बारात लग्नसे बहुत दिन पहले आयी थी और विवाह हो जानेपर भी कई दिन हो गये, जनकजी अब भी बिदा नहीं करते। अतः नित्यप्रति बिदा माँगते हैं। पुनः भाव कि प्रातःकाल उठकर नित्य क्रिया करनी चाहिये सो न करके उठते ही प्रथम बिदा माँगते हैं कि यदि बिदा कर दें तो नित्यकर्म न होगा तो मार्गमें ही कर लेंगे। '*अवधपति*' का भाव कि अवधके लिये बिदा माँगते हैं। [अथवा, राजाको अवध अत्यन्त प्रिय है, उसका बारम्बार स्मरण हो रहा है, अवध छोड़े बहुत दिन हो गये, इसीसे बिदा माँगनेमें अवधपति कहा। (पं०)] (ख) '*राखहिं जनकु सहित अनुरागा*'—भाव कि बड़े लोग अनुरागके वश होते हैं जैसा आगे स्पष्ट है, '*जनु सनेह रजु बँधे*......।' इसीसे 'अनुरागसहित' रोक रखना कहा।

टिप्पणी—३ '*नित नूतन आदरु अधिकाई*' अर्थात् आदर नित्य नवीन है और नित्य अधिक है। तात्पर्य कि भावसहित जो पहुनाई होती है उसीकी प्रशंसा होती है, यथा—'*दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनि राऊ॥*' (३६०। ४) तथा '*जनक सनेह सील करतूती।*......' '*दिन प्रति*' अर्थात् दिनोंदिन, प्रतिदिन। यथा—'*दिन दिन सय गुन*......'। '*सहस*' अर्थात् अगणित।

टिप्पणी—४ (क) '*नित नव नगर अनंद उछाहू।*....' इति। (क) '*दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई*' कहकर फिर '*नित नव नगर अनंद उछाहू*' कहनेका भाव कि जैसे श्रीजनकजी पहुनाई करते हैं वैसे ही जनकपुरके लोग भी राजाकी पहुनाई करते हैं। यही अभिप्राय प्रथमसे दिखाते हैं। यथा—'*येहि बिधि सबही भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥ देइ पान पूजे जनक दसरथ सहित समाज।*...... ॥' (३२९)—यह जनकजीके यहाँकी पहुनाई है। इसके पश्चात् पुरवासियोंके यहाँकी पहुनाई कहते हैं। यथा—'*नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥*' (३३०। १) वैसे ही यहाँ '*नित नूतन आदर अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥*' यह जनकजीके यहाँकी पहुनाई कही और उसके पीछे '*नित नव नगर*......' यह पुरवासियोंके यहाँकी पहुनाई कही। (ख) नित्य नवीन आनन्द उत्सव होता है, इसीसे '*दसरथ गवनु सोहाइ न काहू।*' न राजाहीको भाता है और न नगरवासियोंको ही भावै।

टिप्पणी—५ '*बहुत दिवस बीते एहि भाँती।*' (क) '*एहि भाँती*' का भाव कि पहले तो बारात विवाहके लिये टिकी रही, अब विवाहका दिन आया तब विवाह हुआ। कुछ दिन तो इस प्रकार बीत गये, यथा—'*गए बीति कछु दिन एहि भाँती।*' (३१२। ४) विवाह हो जानेपर राजा नित्य प्रति बिदा माँगते हैं पर जनकजी अनुरागसहित उनको रख लेते हैं, जाने नहीं देते। इस भाँतिसे बहुत दिन बीत गये। प्रथम बार '*गए बीति कछु दिन*' और अबकी '*बहुत दिवस*' कहकर सूचित करते हैं कि विवाहके पूर्व जितने दिन बारात ठहरी रही, उससे अधिक विवाह हो जानेपर टिकी रह गयी। '*एहि भाँती*' कहकर जनाया कि बारात दो भाँतिसे टिकी रही। [बैजनाथजीका मत है कि विश्वामित्रजीने बारातकी बिदाईके लिये पौष शु० १० कहा। विवाह मार्गशीर्ष शु० ५ को हुआ। इस तरह पहलेसे इधर दिन कम ही हुए। पहले सवा महीना हो गया तब तो उसे 'कुछ' ही कहा और विवाहसे इधर एक मास पाँच दिन भी पूरे नहीं हुए फिर भी इसे 'बहुत' कहते हैं। कारण यह है कि पूर्व तो लग्नके दिनकी चाह थी, उसकी खुशीमें सवा महीना 'कुछ' ही जान पड़ा और विवाह होनेपर कोई काम रह नहीं गया, श्रीअयोध्याजीको लौट जानेको राजा उतावले हो रहे हैं, इसीसे तो प्रतिदिन उठते ही बिदा माँगते हैं और बिना अनुमतिके चले जाना शिष्टाचारके प्रतिकूल है। चित्त उचाट हो गया है, अवधके लिये व्याकुल हैं, अतः एक दिन भी बहुत लगता है और यहाँ तो एक मास हो गया। '*एहि भाँती*' अर्थात् नित्य राजाके यहाँ अथवा पुरवासियोंके यहाँ पहुनाई होती और नित्य राजा बिदा माँगते। सब पुरवासी आनन्दमें भरे इत्यादि भाँतिसे] (ख) '*जनु सनेह रजु बँधे*' इति। भाव कि स्नेह करना तो बहुत अच्छा है, रहा इस समयमें तो बारातको रोके रखना ऐसा ही है जैसे कोई किसीको रस्सीमें बाँध रखे, उस प्रेमरूपी रस्सीको काट नहीं सकते। [स्नेह बड़ा कठिन बन्धन

है। देखिये भौंरा लकड़ीको छेद डालता है फिर भी वही भौंरा रातको कमलमें बंद हो जाता है, चाहे तो वह कमलको काटकर बाहर निकल आवे, पर वह इसके स्नेह-वश ऐसा मुग्ध रहता है कि कमलको काटता नहीं अपनी इच्छासे उसीमें बंद पड़ा रहता है। परन्तु बारातियोंकी दशा इससे कठिन है; उनकी इच्छा अब रहनेकी नहीं है तो भी वे जबरदस्ती स्नेहपाशमें बाँधे हुए हैं निकल नहीं पाते। स्नेहपाश ऐसा ही है जैसा कहा है—(श्लोक)—'**बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुदृढबन्धनमाहुः। दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोशे॥**' (यह श्लोक इस प्रकार भी लिखा मिलता है—'**बन्धनानि बहून्यपि सन्ति प्रेमरज्जुमिह बन्धनमन्यत्।'''''भवति पंकजबद्धः।**'

कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥६॥
अब दसरथ कहँ आयेसु देहू। जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू॥७॥
भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥८॥
दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेम बस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥३३२॥

अर्थ—तब श्रीकौशिक (विश्वामित्रजी) और श्रीशतानन्दजीने जाकर राजा विदेहको समझाकर कहा कि अब दशरथजीको आज्ञा दीजिये, यद्यपि स्नेह छोड़ नहीं सकते॥६-७॥ 'हे स्वामिन्! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर (श्रीजनकजीने) मन्त्रियोंको बुलाया। 'जय जीव' ऐसा कहकर उन्होंने मस्तक नवाया॥८॥ (राजाने कहा—)श्रीअवधनाथ चलना चाहते हैं, भीतर (रनवासमें) खबर कर दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभाके लोग और राजा प्रेमके वश हो गये॥३३२॥

टिप्पणी—१ '***कौसिक सतानंद तब जाई।*'''''' इति। (क) तब अर्थात् जब बहुत दिन बीत गये और राजा जनक विदा नहीं करते तब। कौशिक-शतानन्द दोनों ओरके महात्मा समझाने गये। कौशिकजी दशरथजीकी ओरके और शतानन्दजी जनकजीकी ओरके हैं। श्रीदशरथजीने विश्वामित्रजीको भेजा, क्योंकि जनकजी कृतज्ञ हैं, विश्वामित्रजीका बड़ा उपकार मानते हैं, [इनका जनकजीपर बड़ा एहसान और दबाव है, क्योंकि इन्हींके साथ राम-लक्ष्मण आये थे, विवाह और जनकपुरमें बारातसहित दशरथजीके आगमनके मुख्य कारण ये ही हैं।] अतः वे विश्वामित्रजीका वचन अवश्य मानेंगे और शतानन्दजी जनकजीके कुलगुरु हैं, पुरोहित हैं, इनके वचन विशेषकर मानेंगे। (अतः ये दोनों साथ-साथ गये। चाहे विश्वामित्रजीने ही इन्हें साथ लिया हो। इस तरह दोनों ओरके एक-एक महात्माके समझानेका विशेष प्रभाव पड़ेगा। अतः ये दोनों आज्ञा दिलानेके लिये गये।) (ख) '***कहा बिदेह नृपहि समुझाई***' इति। '***बिदेह नृपहि***' भाव कि आप राजा हैं, अतः जानते हैं कि बिना राजाके राज्यका कार्य नहीं चलता, प्रजा दुःखी होती है और प्रजाके दुःखसे राजाका भला नहीं होता। [पुनः, विदेह नाम देकर जनाया कि जैसे आप देह-सुध भूले रहते हैं, वैसे ही आपने विदा करना भी भुला दिया। '***समुझाई***' अर्थात् राज-कार्यमें बड़ा विघ्न होता होगा, आप फिर बुलावेंगे ये फिर आवेंगे, इत्यादि। पंजाबीजी कहते हैं कि भाव यह है कि यद्यपि आप विदेह हैं तथापि व्यवहार बरतना उचित ही है। प० प० प्र० स्वामीजीका मत है कि 'विदेह शब्दमें व्यंग है। ये अब विदेह नहीं हैं, समधी और दामादोंके बन्धनमें पड़े हैं। जो विदेह है, वह स्नेहमें कभी नहीं बँधता तथापि यहाँ ऐसा हुआ जैसा आगेके '***जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू***' से स्पष्ट है, यह '***महिमा सिय रघुबर सनेह की***' है मिलान कीजिये '''''''***धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।***' (२। २७३) '***मुनि बहु बिधि बिदेहु समुझाए।***']

टिप्पणी—२ (क) '***अब दसरथ कहँ आयेसु देहू***' इति। यहाँ सवारी (रथ) के सम्बन्धका नाम कहकर सूचित किया कि महाराज चलना चाहते हैं। '***आयेसु देहू***' कहनेका भाव कि राजा आपके अधीन हैं,

आपकी आज्ञा चाहते हैं। ('अब' अर्थात् बहुत दिन हो गये, अतः अब।) (ख) ***'जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू'*** इति। स्नेह क्यों नहीं छोड़ना चाहते? क्योंकि इसीके संकोचसे राजा टिके रहेंगे, यथा—***'सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥'*** (२। ८५) अतः कहते हैं कि आप राजापर स्नेह छोड़ नहीं सकते और राजा आपके स्नेह-रज्जुमें बँधे हैं, वे स्नेह तोड़ नहीं सकते। आशय यह कि आप ही अपने स्नेहरूपी रज्जुसे उन्हें छोड़िये।

टिप्पणी—३ (क) ***'भलेहि नाथ'*** कहकर दोनों महात्माओंके वचनोंका आदर किया, उनकी आज्ञा मानी। ***'सचिव बोलाए'*** से सूचित हुआ कि इनकी वार्ता एकान्तमें हुई। मन्त्री उनके पास न थे, बात-चीत हो जानेपर मन्त्रियोंको पास बुलाया। सभामें मन्त्री कुछ दूरीपर बैठे हैं इसीसे बुलाना कहा। ***'कहि जय जीव'***—[प्रणाम करते समय मन्त्री प्रायः इन्हीं शब्दोंके साथ प्रणाम करते हैं, यथा—***'कहि जय जीव बैठ सिरु नाई।'*** (२। ३८), ***'देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।'*** (२। १४८), ***'सेवक सचिव सुमंत्र बुलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥'*** (२०५) इत्यादि। यह मन्त्रियोंका अदब-कायदा है। 'जयजीव' एक प्रकारका अभिवादन है, जिसका अर्थ है 'जय हो और जियो' इसका प्रयोग प्रणाम आदिके समान होता था।—(श० सा०) कोई-कोई ये अर्थ करते हैं—'सब जीवोंके जयकर्ता', 'आपका सदा जीवन जयमान रहे।' (प्र० सं०)]

टिप्पणी—४ ***'अवधनाथु चाहत.....'*** इति। (क) अवधपर कृपा करके अवधके लिये चलना चाहते हैं। (पुनः अवधवासियोंको श्रीराम-लक्ष्मणादि भाइयों और बहुओंका दर्शन कराके उनको सनाथ करना चाहते हैं तथा उनको भी आनन्दित करना चाहते हैं; अतः अवधनाथ कहा।) (ख) ***'भीतर करहु जनाउ'***—रनवासको चलनेकी सूचना देनेका तात्पर्य यह कि सब कन्याओंकी विदाईकी तैयारी कर दें। (ग) ***'भए प्रेम बस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ'*** इति। राजाने प्रथम मन्त्रियोंसे वियोगकी बात कही, इसीसे प्रथम मन्त्री प्रेमवश हुए, फिर क्रमसे ब्राह्मण, सभासद् और राजा स्वयं प्रेमके वशीभूत हुए। जैसा दोहेमें क्रम लिखा है, इसी क्रमसे सभामें लोग बैठे हैं। मन्त्री, विप्र और सभासद् यह क्रम है, उसी क्रमसे लोग सुनकर प्रेमके वश हुए। मन्त्री, विप्र, सभासद्का प्रेमवश होना कहकर जनाया कि जब विश्वामित्रजी तथा शतानन्दजी जनकजीके पास गये तब वे सभामें ही बैठे थे। राजाका प्रेमवश होना अन्तमें कहकर जनाया कि राजाने बहुत धैर्य धारण करके वियोगकी बात कही थी, पीछे वे भी प्रेमके वश हो गये।

पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत* बिकल परस्पर बाता॥ १॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥ २॥
जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥ ३॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥ ४॥
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठई जनक अनेक सुसारा†॥ ५॥

शब्दार्थ—बिलखाना (यह 'बिलखना' का सकर्मक रूप है पर यहाँ 'बिलखना' ही के अर्थमें है)=विषादयुक्त होना, उदास होना, दुःखी होना। सकुचाना=सिकुड़ना। **सिद्ध**=सीधा, आटा, दाल, चावल, घी इत्यादि कच्चा अन्न। रसद। **साजु**=सामग्री। **सुसारा**=सुन्दर शय्या (पलङ्ग)। (पोद्दार)। ☞इस प्रान्तमें

---

* बूझत—यही पाठ प्रायः सब प्राचीन पोथियोंमें है। पूछत—रा० प्र०, रा० व० श०, गौड़जी।

† पठए जनक अनेक सुआरा—१७२१, छ०, को० रा०। पठई सुसास—१६६१, १७६२, १७०४। 'सुआरा' पाठमें भाव यह होगा कि भोजनकी सामग्री, सीधा भेजा और भोजन बनानेके लिये रसोइये भी भेजे, जिसमें बराती टिकानपर पहुँचते ही भोजन कर लें।

विशेषकर कान्यकुब्जोंमें *'सुसार'* उस अनेक प्रकारके अन्न आदि सामग्रीको कहते हैं जो बारातकी विदाईके समय कन्यापक्षवाला वरपक्षको देता है। (मा० सम्पादक)

अर्थ—यह सुनकर कि बारात चलेगी, पुरवासी व्याकुल होकर एक-दूसरेसे आपसमें बात पूछते हैं॥ १॥ सच ही जायँगे, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये, मानो सायंकालके समय कमल संकुचित हो गये॥ २॥ आते समय जहाँ-जहाँ बराती ठहरे थे (मञ्जिल की थी) तहाँ-तहाँ बहुत प्रकारका सीधा गया। बहुत प्रकारके मेवे, पक्वान्न, भोजनकी सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती अगणित बैलों और कहारोंपर भरपूर लादकर तथा बहुत-सी 'सुसार' राजा जनकने भेजी॥ ३—५॥

टिप्पणी—१ *'पुरबासी सुनि चलिहि बराता।'''''* इति। (क) पुरवासियोंका सुनना कहकर सूचित किया कि श्रीदशरथमहाराजका चलना सुनकर श्रीजनकजीने सभा बरखास्त कर दी। (विसर्जन कर दिया) तब विप्रों और सभासदोंने पुरमें आकर लोगोंसे कहा, इसीसे प्रथम पुरवासियोंने सुना, मन्त्री महलमें पीछे पहुँचे, इसीसे रानियोंका सुनना पीछे लिखते हैं। (ख) *'बूझत बिकल परस्पर बाता'* इति। परस्पर पूछनेका भाव यह है कि बारातका चलना सत्य है या झूठ? यह निश्चय करना चाहते हैं जैसा आगेके *'सत्य गवन सुनि'* से स्पष्ट है। *'बिकल'* हैं क्योंकि राजाका जाना किसीको नहीं सुहाता जैसा पूर्व कह आये हैं। जनकपुरवासियोंको निधि प्राप्त हुई है, यथा—*'धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी॥'* (२२०। २) अब वह निधि छिनी जा रही है, इसीसे व्याकुल हैं, यथा—*'मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥'* (२। ११८) (मगवासी यह जानकर कि श्रीसीता-राम-लक्ष्मणजी अब जाते हैं, बड़े दुःखी हुए थे। वही दशा जनकपुरवासियोंकी हो रही है, समाचाररूपी वचन-वियोगसे ही व्याकुल हो गये। मिलान कीजिये—*'समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।'* (२। ५७) *'बचन बियोगु न सकी सँभारी।'* (२। ६८। १) *'समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥'*, *'कंप पुलक तन नयन सनीरा।'* (२। ७०) पुरवासी बिदाकी बातको अभी सत्य नहीं समझते हैं तो भी व्याकुल हो गये हैं कि कदाचित् सत्य ही न हो।)

टिप्पणी—२ *'सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने।'''''* इति। (क) *'सत्य गवनु'* का भाव कि बारातका प्रस्थान नित्य झूठ होता रहा पर आज सत्य हुआ। [तात्पर्य यह कि बिदा होनेकी बात तो प्रतिदिन होती थी पर राजा जाने न पाये थे, इससे सबको विश्वास था कि और दिनोंकी तरह आज भी चलनेकी बात सत्य नहीं होगी, पर अब परस्पर पूछ-जाँच करनेसे निश्चय हो गया कि आज सत्य ही जायँगे और दिनकी तरह आजकी बात झूठी नहीं है। *'बिलखाने'*—पहले तो 'बिलख मात्र' थे कि कहीं यह बात सत्य न हो, सत्य जाननेपर *'बिलखाने'* अर्थात् विषादयुक्त हो गये। किसीके पासकी 'निधि' धन-सम्पत्ति जा रही हो तो जैसा उसको विषाद होगा वैसा ही विषाद सबको हुआ] (ख) *'मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने'* इति। संध्या समयके कमलकी उपमा देनेका भाव कि संध्याके कमलमें संकोच और विकास दोनों भाव रहते हैं वैसे ही बारातका चलना सुनकर पुरवासियोंको विषाद हुआ, परंतु अभी (कुछ देर) संयोग है, इससे (अभी) हर्ष भी है (कि अभी जबतक हैं तबतक तो सुख लूट लें जैसा आगे स्पष्ट है, यथा—*'निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥'* (३३५। ७) कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि जैसे कमल सबेरे फिर खिल जाता है वैसे ही इन्हें आशा है कि ये बार-बार सीताजीको लेने आया करेंगे तब दर्शन हुआ करेंगे, अतः कमलकी उपमा दी क्योंकि फिर दर्शन पानेपर विकसित हो जायँगे।)

टिप्पणी—३ *'जहँ जहँ आवत बसे बराती।'''''* इति। (क) आते समय बारात रास्तेमें कई जगह टिकी थी, जहाँ-जहाँ बारात ठहरी थी उन सब जगहोंपर सीधा और पक्वान्न एक साथ ही एक ही दिनमें पहुँचा दिया, क्योंकि महाराजको जनकपुरमें टिके हुए बहुत दिन हो गये हैं, इससे वे अयोध्याजीको लौटनेमें बहुत शीघ्रता करेंगे, सब मंजिलों मुकामोंमें टिकनेका भरोसा नहीं है न जाने किस टिकावपर ठहरें, अतः जनकजीने सब जगह सीधा-पकवान भेजा। यह इनकी सावधानता दिखायी। (ख) *'तहँ तहँ*

सिद्ध चला·······' इति। बारातके आनेके समय सभी सामान टिकनेके स्थानोंमें भेजे थे, यथा—*'बीच बीच बर बासु बनाये। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥ असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥'* (१।३०४) इसीसे इस समय और वस्तुओंको भेजनेका विशेष प्रयोजन नहीं है, वे सब वहाँ हैं ही, केवल सीधा और पकवान भेजा। बहुत दिनका रखा हुआ सीधा और पकवान बिगड़ जाता है, इससे ये दोनों नवीन (ताजे) भेजे। (ग) *'बहु भाँती'* शब्द सीधा और पकवानकी बहुतायत सूचित करते हैं, आगे इसे स्पष्ट कहते हैं।

टिप्पणी—४ *'बिबिध भाँति मेवा पकवाना·····'* इति। मेवाके साथ पकवान कहनेका भाव कि सब पकवान मेवाके समान पवित्र हैं, सबके खाने योग्य हैं। (पुन: भाव कि पकवानमें भी मेवा पड़ा है एवं मेवेके भी पकवान हैं।) *'भोजन साजु'* अर्थात् तैयार भोजन नहीं, किंतु भोजनका सामान बननेपर भोजन तैयार होगा। पूर्व कहा था कि *'चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥ छरस रुचिर ब्यंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥'* जब भोजनकी एक-एक विधिका वर्णन असम्भव है तब भला भोजनके सामानका वर्णन कैसे हो सकता है, अत: *'भोजन साजु न जाइ बखाना'* कहा।

टिप्पणी—५ *'भरि भरि बसह अपार कहारा।·····'* इति। (क) *'भरि भरि'* अर्थात् जितना उनपर अधिक-से-अधिक लादा जा सकता था उतना पूरा भरकर लदवाकर भेजा। बैलोंपर सीधा और कहारोंपर मेवा पक्वान्न भेजा गया। केवल बैलोंपर सीधा भेजा, गाड़ियोंपर नहीं; क्योंकि गाड़ियाँ खाली नहीं हैं। वे सब सुवर्ण, वस्त्र और मणियोंसे भरी गयी हैं, यथा—*'कनक बसन मनि भरि भरि जाना।·····'* कारण यह कि भोजन और जिनिससे कनक, वसन, मणि विशेष हैं, इससे उन्हें गाड़ियोंमें लादकर भेजा। (ख) *'पठई जनक अनेक सुसारा'*—सीधा, मेवा, पकवान आदिको भेजनेका काम बहुत आवश्यक था, इससे यह काम जनकजीने स्वयं किया, दूसरोंपर नहीं छोड़ा। इसीसे *'पठई जनक'* कहा।

तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥ ६॥
मत्त सहसदस सिंधुर साजे। जिन्हहिं देखि दिसिकुंजर लाजे॥ ७॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना॥ ८॥
दो०—दाइज अमित न सकिय कहि दीन्ह बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥ ३३३॥
सबु समाजु येहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥ १॥

शब्दार्थ—**महिषी** (महिषका स्त्रीलिंग)=भैंस।

अर्थ—एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नखसे शिखातक (ऊपरसे नीचेतक) सजाये हुए॥ ६॥ सजे हुए दस हजार मतवाले हाथी जिन्हें देखकर दिशाओंके हाथी भी लज्जित होते हैं॥ ७॥ रथों-(अथवा गाड़ियों, छकड़ों-) में भर-भरकर सुवर्ण, वस्त्र और मणि (रत्न, जवाहिरात, मुक्ता आदि), भैंसें, सवत्सा सदुग्धा गायें तथा और भी अनेक प्रकारकी वस्तुएँ॥ ८॥ इत्यादि अमित दायज राजा जनकने फिरसे दिया जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालोंके लोकोंकी सम्पत्ति (भी) थोड़ी ही जान पड़ती थी॥ ३३३॥ इस प्रकार सब सामान सजाकर श्रीजनकजीने श्रीअयोध्यापुरीको भेजवा दिया॥ १॥

टिप्पणी—१ *'तुरग लाख'* इति। (क) पचीस हजार रथोंके लिये एक लाख घोड़े दिये गये। चार-चार घोड़े एक-एक रथके हैं। *'सकल सँवारे नख अरु सीसा'* अर्थात् सब घोड़ोंके नख सुवर्ण और मणिसे जटित हैं, सबकी शिखामें मणि मुक्तायुक्त कलँगी लगी है और अन्य सब अङ्गोंमें जहाँ जैसा शृङ्गार चाहिये वहाँ वैसा शृङ्गार है। (*'सकल'* से जनाया कि रथ भी सजाये हुए हैं।

ऊपरसे नीचेतक। रथोंमें ध्वजा-पताका-मसनद-तकिये आदि सब बढ़िया सजे हुए हैं।) (ख) ***'मत्त सहसदस सिंधुर साजे'***—***'मत्त'*** से युवा अवस्थाके जनाये, बाल और वृद्ध हाथी मतवाले नहीं होते, युवावस्थामें मदके कारण मत्त होते हैं। ***'साजे'*** कहकर नख-शिखसे सँवारे जनाया। अर्थात् मस्तकपर विचित्र शृङ्गार है, मुक्तायुक्त हैं, सुवर्ण मणिजटित सोनेका हौदा उनपर कसा हुआ है, अमारी पड़ी है जो अमूल्य मुक्ता-मणिसे गुम्फित है। यथा—***'कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥'*** (३००। १) (ग) ***'दिसिकुंजर लाजे'*** इति। ***'दिसिकुंजर'*** कहनेसे अमूल्य सूचित हुए, जैसे उनका मूल्य नहीं वैसे ही इन सब हाथियोंका मूल्य नहीं हो सकता। यहाँ हाथियोंकी तीन प्रकारसे शोभा कही। ***'साजे'*** से शृङ्गारकी शोभा, ***'मत्त'*** से अवस्थाकी और ***'दिसिकुंजर'*** से उनके डील-डौल, बड़ाईकी शोभा कही। (घ)-प्रथम जो दहेज दिया था उसके सम्बन्धमें कुल लेखा (गणना) न हो सका, यथा—***'गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत काम दुहा सी॥ बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा।'*** (१। ३२६) (वहाँ कोई गिनती नहीं लिखते। यहाँ इस दहेजमें कुछ 'लेखा' करते हैं—***'तुरग लाख रथ सहस पचीसा।'''''मत्त सहसदस सिंधुर साजे।'*** पर बहुतका लेखा यहाँ भी नहीं हो सकता जैसा आगे कहते हैं—***'दाइज अमित न सकिअ कहि।'***)

टिप्पणी—२ ***'कनक बसन मनि'*** इति। (क) कनक और मणिके बीचमें ***'बसन'*** को रखकर जनाया कि वे भी सुवर्ण और मणिके मूल्यके हैं, इनमें कनक मणि लगे हैं, यथा—***दुहु आचरन्हि लगे मनि मोती।'*** (३२७। ५) (ख) हाथी, घोड़े और रथ सवारीके लिये दिये। महिषी, धेनु दूध पीने, दही खाने तथा घृतके लिये दीं। कनक-वसन-मणि पहननेके लिये दिये और अन्य नाना प्रकारकी जो वस्तुएँ दी गयीं वे भी काममें लानेके लिये दी गयीं। (ग) ***'महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना'*** इति ***'नाना बिधि'*** का अन्वय सबमें है, क्योंकि सभी वस्तु नाना विधिके कहे हैं। यथा—***'तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती', 'बिबिध भाँति मेवा पकवाना',*** वैसे ही यहाँ भी ***'महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना'*** कहा।

टिप्पणी—३ ***'दाइज अमित''''''*** इति। (क) ***'न सकिय कहि'***—जो दहेज पहले दिया उसे भी वक्ता कह न सके, यथा—***'कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी॥'*** (३२६। २), और जो अबकी दिया गया उसको भी नहीं कह सकते। पहले दायजको देखकर लोकपाल ललचाते थे, ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा करते थे, यथा—***'लोकपाल अवलोकि सिहाने।'*** (३२६। ६), और अबकी बारके दहेजके सम्बन्धमें लिखते हैं ***'जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि।'*** इस तरह दिखाया कि दोनों बारके दहेज एक-से थे, पहलेसे दूसरेमें कम नहीं है। (ख) ***'बहोरि'*** कहा क्योंकि प्रथम भी दे चुके हैं। पहले अमित दिया, अबकी भी अमित दिया। [(ग) ***'जो अवलोकत''''''*** यह कथन वक्ताओंका है जिन्होंने लोकपालोंकी सम्पदा देखी है और दहेज भी देखा है। शंकरजी और महर्षि याज्ञवल्क्यजी दोनों ही ऐसे हैं। वाल्मीकिजी भी वहाँ सम्भवतः थे, यथा—***'बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥'*** (३३०); और वाल्मीकिजी ही ***'कुटिल जीव निस्तार हित तुलसी भए';*** इस तरह ये भी देखी कह सकते हैं।] (घ) ***'लोकपति लोक संपदा थोरि'*** कहनेका भाव कि लोकपालोंके घरकी कौन कहे, उनके पूरे लोकोंकी सारी सम्पदा मिलकर भी थोड़ी ही लगती है। यह बात श्रीजनकजीने स्वयं अपने मुखसे कही है, यथा—***'जो सुख सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥ सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥'*** (३४३। ४-५)

टिप्पणी—४ ***'अवधपुर दीन्ह पठाई'*** इति।—अयोध्याजीको सीधे भेज दिया, क्योंकि यदि यहाँ चक्रवर्ती महाराजको देते तो वे यहीं सब लुटा देते। अवधवासियोंको, जो बारातमें नहीं आये थे, क्या जान पड़ता कि क्या-क्या दायज दिया गया। वहाँ भेजनेसे घरवाले भी सब देखेंगे।—(पंजाबीजी) कोई-कोई कहते हैं कि आदर-दान इसीका नाम है कि जिसको दान दिया जाय उसके घर अपने खर्चसे पहुँचा दिया जाय।

चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी॥ २॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥ ३॥
होयेहु संतत पिअहि पिआरी। चिरु अहिवात असीस हमारी॥ ४॥
सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पतिरुख लखि आयेसु अनुसरेहू॥ ५॥
अति सनेह बसु सखी सयानी। नारि-धरमु सिखवहिं मृदु बानी॥ ६॥

शब्दार्थ—अहिवात=सौभाग्य, सोहाग। चिरु=बहुत दिनोंका, दीर्घकालवर्ती। अखण्ड। नारिधरम=पतिव्रत धर्म (काशी-खण्ड अध्याय ४ इस विषयमें देखने योग्य है। १०२। ३ देखिये) अरण्यकाण्डमें अनसूयाजीका सीताजीके मिष पातिव्रत्यका उपदेश भी देखिये।

अर्थ—'बरात चलेगी' सब रानियाँ यह सुनते ही ऐसी व्याकुल हो गयीं मानो मछलियोंका समूह थोड़े जलमें छटपटा रहा हो॥ २॥ वे श्रीसीताजीको बार-बार गोदमें लेती हैं और आशीर्वाद देकर शिक्षा देती हैं॥ ३॥ सदा पतिको प्यारी हो, तुम्हारा सोहाग अखण्ड हो यह हमारी आशीष है॥ ४॥ सास, ससुर और गुरुकी सेवा करना और पिताका रुख देखकर आज्ञाका पालन करना॥ ५॥ सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेहवश कोमल वाणीसे स्त्रियोंके धर्म सिखाती हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१ '*चलिहि बरात सुनत*······' इति। (क) पुरवासियोंको कमलकी उपमा दी थी, यथा—'*सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहु साँझ सरसिज सकुचाने॥*' (३३३। २), और रानियोंको मछलीकी उपमा देते हैं—'*बिकल मीन गन*·········।' इस तरह पुरवासियोंसे रनवासकी विकलता अधिक दिखायी। कमल और मछली दोनों ही जलके आश्रित हैं, फिर भी जलमें मछलीका प्रेम कमलसे अधिक है। (वैसे ही रानियोंका प्रेम पुरवासियोंकी अपेक्षा अधिक है, इसीसे ये अधिक विकल हुईं। '*सब रानी*' से जनाया कि जनक महाराजका रनवास भी बड़ा है। उनके भी अनेक रानियाँ हैं। इसीसे '*मीनगन*' की उपमा दी। (ख) '*लघु पानी*' कहनेका भाव कि अब बारातका रहना थोड़े ही समयतक और है। (ग) ☞ देश, काल और वस्तु तीनोंके सम्बन्धसे जनकपुरवासियोंकी विकलता दिखाते हैं, यथा—'*अवधनाथ चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥*' (३३२); अवधनाथ अवधको चलना चाहते हैं यह देश-सम्बन्धसे व्याकुलता कही। '*सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहु साँझ सरसिज सकुचाने॥*' यहाँ कालका सम्बन्ध कहा। जितने दिन बारातके रहनेके थे वे सब बीत गये '*चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी॥*' यहाँ वस्तुके सम्बन्धसे विकलता कही।

टिप्पणी—२ '*पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं*·······' इति। (क) सीताजीको पुनः-पुनः गोदमें लेनेका भाव कि रानियोंको मीनगणकी उपमा दी है जैसे जलके बिना मछली व्याकुल होकर बार-बार जलका स्पर्श करे वैसे ही श्रीजानकीजी जलरूप हैं; उनका भावी वियोग समझकर रानियाँ विकल हो गयीं, इसीसे बार-बार गोदमें लेती हैं, यही जलका स्पर्श करना है। बाराती जलरूप नहीं हैं, क्योंकि रानियाँ बारातियोंके वियोगसे नहीं विकल हुईं किन्तु चारों भाइयों और चारों कन्याओंके वियोगसे विकल हुईं। इसीसे चारों कन्याओंको हृदयसे लगाती हैं और चारों भाइयोंको देखकर सुखी हुई हैं; यथा—'*रूपसिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु।*' (३३५) ऊपर जो बारातका चलना सुनकर विकल होना कहा वह इस कारण कि बारात प्रधान है, चारों भाइयों और चारों कन्याओंका चलना अथवा रहना बारातके अधीन है। (ख)—'*देइ असीस सिखावनु देहीं,* इति। क्या आसिष देती हैं यह कवि आगे स्वयं लिखते हैं और सिखावन भी। 'असीस' 'सिखावन' को एक साथ लिखकर जनाया कि जो सिखावन देती हैं। उसीका आशीर्वाद देती हैं। 'पतिको प्रिय हो' यह कहकर 'पति बहुत कालतक जीवित रहे' यह आसिष देती हैं।

टिप्पणी—३ '*होयेहु संतत पिअहि पिआरी।*·····' इति। (क) अर्थात् पतिकी सेवा करना, पातिव्रत्यका पालन करना, ऐसा करनेसे अहिवात बहुत कालतक रहता है। '*चिरु अहिवात*' का यही साधन है। (पतिव्रताके पतिको

कोई मार नहीं सकता, यथा—*'परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी॥'* (१२३। ८) सावित्री तथा शैव्या सतीकी कथा प्रसिद्ध ही है कि उसने सूर्यका उदय रोक दिया था।) *'चिरु अहिवात'* देहलीदीपक है। पतिकी प्यारी हो, इससे अहिवात बहुत काल रहता है और हमारा आसिष भी यही है कि तुम्हारा अहिवात बहुत कालतक रहे। क्या करनेसे पतिको निरन्तर प्रिय होंगी, यह आगे कहती हैं। (ख) *'पिअ'* ('पिय') प्रियका अपभ्रंश है। *'पिअहि पिआरी'* कहनेका भाव कि जब स्त्रीको पति प्रिय हो (तब वह पिय है और) तब पियको (अर्थात्) पतिको स्त्री प्यारी होती है। (ग) *'चिरु अहिवात'* इति। श्रीजानकीजीको बहुत काल जीनेका आशीर्वाद नहीं देतीं, किंतु 'अहिवात चिर हो, बहुत कालतक सुहाग रहे' यह आसिष देती हैं। कारण कि स्त्रीका जीवन अहिवात ही है। बिना अहिवातके स्त्री मृतक (वत्) है, यथा—*'जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥'* (२। ६५) [*होयेहु संतत पिअहि पिआरी'* यह सिखावन है और *'चिरु अहिवात'* यह आसिष है। प० पु० पातालखण्ड सर्ग ८४ में कहा है कि 'पतिव्रता स्त्रियोंका तो पति ही देवता है। उन्हें पतिमें ही विष्णुके समान भक्ति करनी चाहिये। पतिका प्रिय करनेमें लगी हुई स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही विष्णुकी उत्तम आराधना है। यह सनातन श्रुतिका आदेश है। यथा—**'स्त्रीणां पतिव्रतानां तु पतिरेव हि दैवतम्। स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्कायकर्मभिः॥ स्त्रीणामथाधिकतया विष्णोराराधनादिकम्। पतिप्रियरतानां च श्रुतिरेषा सनातनी॥'** (५१-५२)—यही भाव *'होयेहु संतत पिअहि पिआरी'* का है। हिंदू-संस्कृतिमें आर्य महिलाओंको 'पतिको प्रिय हों और अहिवात अचल रहे' इन्हीं दो बातोंकी चाह होती थी और आज तो पतिको तलाक देकर दूसरा पति बनवानेकी चाह आर्यसंस्कृतिको नष्ट करनेका उत्साह कुछ पाश्चात्यशिक्षाप्राप्त स्वार्थी पुरुषोंमें होने लगा है।]

टिप्पणी—४ (क) *'सासु ससुर गुरु सेवा करेहू'*—ये तीनों क्रमसे बड़े हैं। यथा—**'उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥'** (मनु० २। १४५) अर्थात् उपाध्यायसे दसगुना आचार्य मान्य है। आचार्यसे सौगुना पिता मान्य है और पितासे हजारगुणी माता मान्य है। सास-ससुर-गुरुकी सेवा करना भी पतिव्रताका धर्म है। (ख) *'पतिरुख लखि आयेसु अनुसरेहू'* अर्थात् आज्ञा न होने पावे, जो रुख हो वही काम करना। भाव कि इशारेसे काम करना, कहना न पड़े। पुनः *'रुख लखि'* का भाव कि बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं कि प्रकट नहीं कही जा सकतीं और कभी ऐसा भी होता है कि कहा कुछ जाता है पर उसका तात्पर्य कुछ और ही होता है, अतः रुख देखकर काम करनेको कहा। (रा० प्र०) (ग) *'पतिरुख......'*—इस वचनके भीतर पतिव्रताके सब धर्म कह दिये गये (क्योंकि यावत् धर्म है वह पतिकी रुचि रखनेमें ही है।) सेवाके कुछ उदाहरण अयोध्याकाण्ड दोहा ६९ *'सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥'*, दोहा २५२ *'सीय सासु प्रति बेषु बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई। ......सीय सासु सेवा बस कीन्ही॥'* उत्तरकाण्ड दोहा २४ में *'पति अनुकूल सदा रह सीता।......सेवति चरन कमल मन लाई।......निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥ जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥ कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥'* इत्यादि हैं।

नोट—अध्यात्मरामायणमें **'सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः॥ श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता। पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम्॥'** (१। ६। ८०-८१) ऐसा कहा है अर्थात् रोती हुई सीताको गलेसे लगाकर नेत्रोंमें आँसू भरकर माताने कहा—'वत्से! तुम सासकी सेवा करती हुई सदा श्रीरामजीकी अनुगामिनी रह पातिव्रत्यका अवलम्बनकर सुखपूर्वक रहना।'

टिप्पणी—५ *'अति सनेह बस सखी सयानी.......'* इति। (क) *'अति सनेह बसु'* का भाव कि सखियाँ श्रीजानकीजीको उपदेश करनेमें समर्थ नहीं हैं (श्रीसीताजी तो सब जानती ही हैं। उनको कोई क्या सिखावेगा। उनको सिखलाना कैसा और क्या? दूसरे सखियाँ यह नहीं जानतीं कि इनका संयोग-वियोग है ही नहीं, ये तो परम शक्ति हैं। अतः वे माधुर्यमें सिखा रही हैं। अत्यन्त स्नेहका यही लक्षण है, यही स्वभाव है। 'अति स्नेह' के वश होनेसे वे सिखा रही हैं। नहीं तो श्रीअनुसूयाजी ऐसी महान्

पतिव्रता भी श्रीसीताजीको उपदेश देनेमें संकोचको प्राप्त हुई हैं, यथा—'*सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं। तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥*' (३। ५) (ख) '*सयानी*' अर्थात् जो अवस्थामें बड़ी और ज्ञानमें सयानी (चतुर बुद्धिवाली) हैं वे ही उपदेश करती हैं। (ग) '*नारि-धरमु*'—(३। ५) '*नारि धर्म कछु ब्याज बखानी* ॥ ४॥' से '*अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय*' तक श्रीअनुसूयाजीने पातिव्रत्यका कुछ वर्णन किया है)। स्त्रियोंके धर्म ऊपर माताओंके उपदेशमें लिख चुके—'*होयेहु संतत पिअहि पिआरी।*', '*सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयेसु अनुसरेहू॥*', इसीसे यहाँ फिर नहीं लिखते। (घ) '*मृदु बानी*'—क्योंकि उपदेश जो कोमल वाणीसे किया जाता है वही लगता है।

सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई॥ ७॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं बिरंचि रची कत नारी॥ ८॥
दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुलकेतु।
चले जनकमंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥ ३३४॥

अर्थ—रानियोंने सब कुमारियोंको आदरपूर्वक (पातिव्रत्यधर्म) समझाया और बारंबार हृदयसे लगाया॥ ७॥ माताएँ फिर-फिर भेंटती (गले लगाकर मिलती) हैं और कहती हैं कि विधाताने स्त्रीको क्यों बनाया॥ ८॥ (ठीक) उसी समय सूर्यकुलकी ध्वजा श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंसमेत प्रसन्नतापूर्वक विदा करानेके लिये श्रीजनकजीके महलमें गये॥ ३३४॥

टिप्पणी—१ (क) '*सादर*' अर्थात् जैसे श्रीजानकीजीको गोदमें ले-लेकर सिखावन देती थीं, वैसे ही इनको भी गोदमें बैठाकर पातिव्रत्यका उपदेश करती हैं, समझाती हैं। '*बार बार उर लाई*' से सूचित करते हैं कि जब एक रानी हृदयसे लगा चुकी, तब दूसरीने हृदयसे लगाया, इस तरह जब सब हृदयसे लगा चुकती हैं तब फिर हृदयसे लगाती हैं, इस प्रकार बार-बार सब रानियाँ भेंटती हैं। (ख) श्रीसीताजीको प्रथम हृदयसे लगाकर सूचित किया कि सब कन्याओंको क्रमसे गले लगाकर मिलीं, पहले श्रीसीताजीको, तब माण्डवीजीको, फिर उर्मिलाजीको और अन्तमें श्रीश्रुतिकीर्तिजीको।

टिप्पणी—२ (क) '*बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी*' इति। सब रानियोंके भेंटनेके पश्चात् माता कन्याओंको भेंटती हैं, क्योंकि माताको सबसे पीछे अधिकार है। विमाता मातासे दसगुना मान्य है, यथा—'**मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा।**' (ख) '*कहहिं बिरंचि रची कत नारी*' इति। भाव कि स्त्री जन्मभर पराधीन ही रहती है, सुख नहीं पाती; यथा—'*कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुखु नाहीं॥*' (१०२। ५) पुनः भाव कि अभी सब कन्याएँ बहुत छोटी हैं परन्तु पिता इन्हें विदा किये देते हैं, यहाँ पिताके अधीन हैं, वहाँ पतिके अधीन रहेंगी। पुनः भाव कि इतनी छोटी अवस्थामें दूसरेके घर जाने योग्य नहीं हैं, फिर भी इनको विदा करना पड़ता है। [पुनः भाव कि यदि हमलोग मर्द (पुरुष) होतीं तो चाहे जाकर देख भी आतीं एवं पुरुष तो चाहे जाकर देख भी आवें, पर हम अबलाओंके ऐसे भाग्य कहाँ ? कन्याएँ पराये घरकी होती हैं, माताओंको उनके वियोग-विरहका दुःख उठाना ही पड़ता है। (प्र० सं०) पर यह स्मरण रखना चाहिये कि ये आर्तवचन हैं और '*आरत कहहिं बिचारि न काऊ।*' (प० प० प्र०)]

प० प० प्र०—१ '*रामु भानुकुलकेतु*' का भाव कि अबतक भानुकुलकीर्तिका पताका फहरानेकी जिम्मेदारी (भार) दशरथजीपर थी, यथा—'*आवत जानि भानुकुलकेतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥*' (३०४। ५), अब वह भार श्रीरामजीपर आ गया। २—'*चले जनकमंदिर मुदित*' इति। अभीतक श्रीजनकजीके निवासस्थानको '*मंदिर*' केवल एक बार कहा था। यथा—'*भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥*' (२३६ छंद) विवाह-समयसे सब रनवास श्रीरामजीका गुणगान, पूजा, सेवा-चिन्तन ही सतत कर रहा है; इससे सारा रनवास श्रीरामजीका मन्दिर हो गया है। '*मन्दिर*' शब्दके प्रयोगकी विशेषता पूर्व २८७। ४ में और परशुराम-प्रसंगमें बतायी गयी है।

नोट—'*चले जनक .... मुदित बिदा करावन हेतु*' इति। (क) पाँड़ेजी कहते हैं कि 'जनक-मन्दिरको मुदित होकर चलना करुणासे विपरीत है, परंतु राजा दशरथ अपने स्थानको पुत्रोंका विवाह करके जानेवाले हैं, इसलिये करुणा मंद हो गयी है—दूसरा अर्थ यह है कि मुदित अर्थात् आनन्दमूर्ति (जानकी आदि जो चार पुत्री हैं उनको) विदा करानेके लिये जनकमन्दिरको चले—इसकी पुष्टता इस दोहेसे होती है—'***मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुना बिरह निवास।***' (ख) अवधमें माताओंको पुत्रवधुओंसहित पुत्रोंके दर्शनकी अत्यन्त लालसा है, मुनिके साथ जबसे अवधसे श्रीराम-लक्ष्मणजी आये हैं, तबसे दर्शन नहीं हुए हैं, पुरवासियोंको भी श्रीरामजी प्राणप्रिय हैं, वे भी वियोग सह रहे हैं। अवधमें विवाहमण्डप सूना पड़ा है, यहाँ सबको विवाहका आनन्द दे चुके, अब अवधके सब भक्तोंको भी आनन्द देनेके लिये विदा कराने जा रहे हैं, अतः '***मुदित***' हैं। (ग) वरपक्षको अपने-अपने घर लौटते समय आनन्द होता ही है। और कन्याके घर इस समय करुणा-विरहका अवतार होता ही है। फिर अपनी माताओंकी चिन्ता जाग्रत् हो गयी है, उनको अपार सुख देनेका लाभ मिलेगा, अतः मुदित हैं। [पुनः, मुदित इससे कि सब रनवास अब परम भक्त हो गया है, इनके अन्तःकरणरूपी मन्दिरोंकी मन्दिरता विरहसे अब अधिक दृढ़ हो जायगी। (प० प० प्र०)]

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥ १॥
कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥ २॥
लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥ ३॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥ ४॥
मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥ ५॥
पाव नारकी हरिपदु जैसे। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसे॥ ६॥

शब्दार्थ—**प्रिय पाहुने**=प्यारे मेहमान। पाहुनोंमें प्रिय। (रा० प्र०) **अतिथि**=मेहमान; घरमें आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति। **मरनसीलु** (मरणशील)=मरणप्राय; जिसकी मृत्यु निकट हो। जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रतीत होता है कि अब मरा, अब मरा, क्षण-क्षणमें यही दशा होती है। पिऊषा (पीयूष)=अमृत। नारकी=नरकमें जाने योग्य पापी एवं नरक भोगनेवाला। **हरिपदु**=भगवद्धाम, सद्गति, वैकुण्ठादि।

अर्थ—सहज ही सुन्दर चारों भाइयोंको देखनेके लिये नगरके स्त्री-पुरुष दौड़े॥ १॥ कोई कहता है कि आज ही जानेवाले हैं, विदेहने बिदाका साज (सामान) कर दिया है॥ २॥ चारों प्रिय पाहुन राजकुमारोंके रूपको नेत्रभर देख लो॥ ३॥ हे सयानी! कौन जानता है किस पुण्यसे विधाताने इनको यहाँ लाकर हमारे नेत्रोंका अतिथि (मेहमान) बनाया है॥ ४॥ जैसे मरनेवाला अमृत पा जाय, जन्मका भूखा कल्पवृक्ष पा जाय॥ ५॥ नरकगामी वा नरकमें बसनेवाला प्राणी जैसे हरिपद पा जाय वैसा ही इनका दर्शन हमको प्राप्त हुआ॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) '***पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता।***' (३३३। १) पर पुरवासियोंका प्रसंग छूटा है, अब वहींसे पुनः प्रसंग उठाते हैं। '***सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने***' यह पूर्व ही कह चुके, अब उसीके सम्बन्धसे कहते हैं कि '***नगर नारि नर देखन धाए***' धायेका भाव कि लोग अकुलाकर उठ दौड़े कि अब जाने ही चाहते हैं, शीघ्र दर्शन कर लें, ऐसा न हो कि चले जायँ। '***सत्य गवनु***' सुनकर अकुला उठे। चारों भाइयोंकी सुन्दर छबि देखनेके लिये '***धाए***'। इसका ब्योरा एक बार कर चुके हैं कि '***जुवती भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं रामरूप अनुरागी।***' (२२०। ४) इसीसे यहाँ स्त्रियोंका झरोखेमें बैठना नहीं कहते। (पूर्वकी तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिये कि पुरुष दौड़कर बाहर गये, स्त्रियाँ झरोखेसे देखने दौड़ीं।) सुन्दर शोभा देखने गये, इसीसे '***धाए***' का कारण प्रथम चरणमें कहा—'***चारिउ भाइ सुभाय सुहाए।***' '***सुभाय***' अर्थात् शृङ्गारादिसे

सुन्दर नहीं हैं किंतु स्वाभाविक बिना शृङ्गारके ही सुन्दर हैं। *'धाए'—'धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी।'* (२२०। २) देखिये।

टिप्पणी—२ (क) *'कोउ कह चलन चहतहहिं आजू'* इति। इस कथनका प्रयोजन अगली चौपाइयोंमें लिखते हैं—*'लेहु नयन भरि रूप निहारी'* इत्यादि। अर्थात् आज ही जा रहे हैं, अतः नेत्र भरकर रूपका दर्शन कर लो, नहीं तो फिर दर्शन दुर्लभ है। पुनः, *'आजू'* का भाव कि कल इनका दर्शन नहीं होगा, क्योंकि आज ही चले जायँगे। (ख) *'कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू'* इति। (भाव यह कि यह *'बिदेह'* हीका काम है, भला और कोई इन्हें कैसे विदा करता? *'बिदेह'* शब्दमें यह व्यंग है कि इन्हें न तो अपनी देहकी सुध है न किसीके देहमें ममत्व है, अतः उसके विदा करनेमें आश्चर्य ही क्या? यहाँ 'अविवक्षित वाच्यध्वनि' है।) पुनः, भाव यह कि विदेहजीने विदाका सामान कर दिया है, इसीसे चारों भाई विदा कराने आ रहे हैं। *'बिदेह'* का भाव कि किसीको बारातका विदा होना भाता नहीं, यथा—*'दसरथ गवनु सोहाइ न काहू'*, इसीसे सब कहते हैं कि वे तो विदेह हैं, इसीसे उन्होंने विदाका साज कर दिया, नहीं तो जिसे देहकी खबर होगी वह तो ऐसे प्राणप्रिय पाहुनको कदापि न विदा करेगा। [पुनः भाव कि अपने विदेहके विदा करनेका साज किया है। आशय यह कि (विदाका साज करनेसे) अब विदेहपना छोड़कर वियोगसे भर जायँगे, जैसा आगे कहा है—*'मिटी महा मरजाद ज्ञानकी।'* अथवा, भाव कि सबके विदेह होनेका साज किया है··· (पाँड़ेजी)]

टिप्पणी—३ (क) *'लेहु नयन भरि रूप निहारी'*—यहाँ रूप सिन्धु है। यथा—*'रूप सिन्धु सब बंधु लखि·····।'* (३३४) नयन पात्र हैं। *'नयन भरि'* रूप देख लेना नेत्ररूपी पात्रोंमें छबिसिंधुको भर लेना अर्थात् नेत्रोंसे भरपूर छबिका देखना है, यथा—*'भरि लोचन छबि लेहु निहारी।'* (२४६। ३), *'देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।'* (१४६। ६) *'लेहु नयन भरि रूप निहारी'* कहकर उसका कारण बताते हैं कि ये *'प्रिय पाहुने'* हैं, प्रियको देखा ही जाता है, पुनः ये भूपके पुत्र हैं अतः इनकी भेंट, इनका दर्शन, दुर्लभ है। (ख) *'को जानै केहि सुकृत सयानी'* इति। *'को जानै'* का भाव कि कर्मकी गति ब्रह्मा ही जानते हैं, सब कोई नहीं जानते, यथा—*'कठिन करम गति जान बिधाता।'* (२। २८२) सुकृत भी कर्म हैं, अतः इनकी व्यवस्था वे ही जानें। जानकारी (बुद्धिमानी) की बात जानकार (बुद्धिमान्)से कही जाती है, वह सखी *'सयानी'* थी, इसीसे उससे बुद्धिमानीकी बात कहती है। पुनः, *'सयानी'* है, इससे यहाँ इतना संकेतमात्र कहती है, आगे फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तिको हृदयमें धरनेको कहेगी। *'केहि सुकृत'* कहनेका भाव कि श्रीरामजी सुकृतसे मिलते हैं, बड़े सुकृत होते हैं तब इनके दर्शन होते हैं। यथा—*'सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा।'* (२। २१०) (ग) *'नयन अतिथि कीन्हें'*—भाव कि जैसे अतिथि दुर्लभ हैं, वैसे ही ये चारों भाई दुर्लभ हैं। ब्रह्माने इन्हें लाकर प्राप्त कर दिया, क्योंकि वे ही कर्मका फल देते हैं, उन्होंने अतिथिको नेत्रोंके सामने पहुँचा दिया। अतिथिका आदर करना धर्म है, कर्तव्य है, अतः नेत्र इनका आदर करें, आदरपूर्वक इनका दर्शन करें। यथा—*'लेहु नयन भरि रूप निहारी।'* [पुनः भाव कि इनका दर्शन अचानक प्राप्त हो गया—(प्र० सं०)]

प० प० प्र०—*'नयन अतिथि कीन्हे'* इति। *'अतिथि'* के लक्षण ये हैं—१ जो अनपेक्षित रीतिसे, गृहस्थोंके प्रयत्न बिना, यदृच्छासे आता है। २ जो दूरसे आया हो, श्रान्त हो, वैश्वदेवके समयपर आ जाय, अपरिचित हो, पहले न आया हो। अतिथिका आगमन पूर्वपुण्यसे होता है। गृहस्थोंका धर्म है कि उसे एक दिन अपने यहाँ ठहराकर भोजनादिसे संतुष्ट करें।—अतिथिके सब लक्षण श्रीराम-लक्ष्मणजीमें घटते हैं। दूरसे आये हैं, पूर्वपरिचित नहीं हैं, पहले कभी नहीं आये, पुरवासियोंने इनको लानेका प्रयत्न नहीं किया, ये धनुषयज्ञके समय आये हैं। (वैश्वदेव एक यज्ञ ही है।) भेद इतना ही है कि किसी एक गृहस्थके अतिथि नहीं हैं, नगरके नेत्रोंके अतिथि हैं, इसीसे नयनरूपी यजमान अपने हृदयरूपी घरमें इनको रखनेका प्रयत्न करते हैं, यथा—*'निरखि राम सोभा उर धरहू।'* तीन दृष्टान्तोंद्वारा दिखाते हैं कि यह दर्शन कितना अमूल्य, कैसा अनपेक्षित और कितना अपूर्वफलदायी है।

टिप्पणी—४ *'मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा……'* इति। (क) मरणकालमें वैद्य अच्छे रस देते हैं, उस रसके बदले यदि रोगी अमृत पा जाय तो मृत्यु ही दूर हो जाय। 'जन्मका भूखा' अर्थात् सबसे माँगनेपर भी जिसे कुछ न मिला। *'सुरतरु लहै'* अर्थात् उसको कल्पवृक्ष मिल गया, अब जो भी माँगता है वही प्राप्त होने लगा। कल्पवृक्ष भी माँगनेसे ही देता है, यथा—*'जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच। मागत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच॥'* (२। २६७)

टिप्पणी—५ *'पाव नारकी हरिपदु जैसे……'* इति। (क) नारकीको हरिपदप्राप्तिका भाव कि नरकमें बड़ा दुःख है और भगवद्धाममें बड़ा सुख है, अतः आशय है कि बड़े दुःखका अधिकारी जैसे बड़ा सुख पावे। बड़े दुःखमें जो सुख मिलता है उस सुखमें बड़ा आनन्द होता है, यथा—*'जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥'* (७। ६९। ३) (ख) यहाँतक तीन दृष्टान्त दिये। मरणशील, जन्मका भूखा और नारकी। ये तीनों बड़े कष्टमें रहे, सो इन तीनोंको बड़ा सुख मिला। मरणशीलको अमृत मिला, जन्मदरिद्रको कल्पवृक्ष मिला और नारकीको हरिपद प्राप्त हो गया। वैसे ही हमको इनका दर्शन मिला। तात्पर्य कि इनके दर्शनके लिये हम अति आर्त्त थे, यथा—*'सखि हमरे आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते॥'* (२२२। ८) अतएव हमें इनके दर्शनसे बड़ा सुख प्राप्त हो रहा है। पुनः भाव कि जैसे मरणशीलको अमृत दुर्लभ है, दरिद्रको कल्पवृक्ष दुर्लभ है और नारकीको हरिपद दुर्लभ है वैसे ही इनका दर्शन हमको दुर्लभ है। तात्पर्य यह कि हमको अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ। कल्पवृक्षकी प्राप्ति कहकर हरिपदकी प्राप्ति उससे पृथक् कही; क्योंकि कल्पवृक्ष हरिपद नहीं दे सकता।

नोट—१ पंजाबीजी लिखते हैं कि *'मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा'* *'सुरतरु लहै जनम कर भूखा'* और *'पाव नारकी हरिपद जैसे'* इन तीनों दृष्टान्तोंका तत्त्व यह है कि जब स्वयंवरमें बड़े-बड़े वीरोंसे भी धनुष न उठा तब सीताजीके अविवाहित रहनेके भयसे हमलोग ऐसा भी चाहती थीं कि चाहे कोई कुरूप पुरुष ही क्यों न धनुष तोड़े तो भी भला ही है जिसमें ब्याह तो हो जाय, सो भगवान्ने ऐसी कृपा की कि सब गुणोंका निधि स्वामी सीताजीको प्राप्त हुआ और ऐसा सुन्दर विवाह हुआ। हम भी पवित्र हुईं। इससे जान पड़ा कि हमारे बड़े पुण्य थे।'

गौड़जी—*'मरनसीलु……तैसे'*—जनकपुरकी नारियाँ वेदकी ऋचाएँ हैं। ये साधारण बातें भी करती हैं तो गूढ़ रहस्यसे खाली नहीं। अनेक ऐसे भक्त हैं जो जन्म-जन्मसे भगवद्-दर्शनोंकी लालसा लिये आये हैं, जिन्हें वरदान है कि जनकपुरीमें दर्शन होंगे। बूढ़े हो रहे थे, निराश हो रहे थे, उनके आध्यात्मिक जीवनका अन्त हो रहा था, उसी समय न केवल उन्हें दर्शन ही हुए वरन् महीनों दर्शन और बातचीततक सुननेका उन्हें मौका मिला। उन्होंने ब्याहतक देखा। मरनकालमें जहाँ एक घूँट जल अलभ्य है वहाँ उन्हें अमृत मिल गया। जो भक्त सदा दर्शनके भूखे थे, भरपेट दर्शन नहीं नसीब हुए थे, उन्होंने भरपेट दर्शन किये। और जो जनकनगरीमें किसी पुण्योदयसे उस समय आ गये थे उन्हें आकस्मिक दर्शन-लाभ हुआ, सो वस्तुतः हरिपद मिला। स्त्रियाँ जो केवल उत्प्रेक्षासे हरिपद कहती हैं वस्तुतः ठीक ही बात कह जाती हैं।

इन तीनों दृष्टान्तोंसे यह स्पष्ट देख पड़ता है कि तीनों बातें अत्यन्त दुर्लभ हैं, भगवत्-कृपा या पूर्व सुकृतोंके संस्कारसे भले ही प्राप्त हो जायँ, नहीं तो असम्भव-सी हैं। सखियोंका इन दृष्टान्तोंके देनेका भी यही अभिप्राय जान पड़ता है, जैसा उनके *'को जानै केहि सुकृत सयानी।……'* इन वचनोंसे समर्थन होता है। या यों कहिये कि *'को जानै केहि सुकृत……'* हीकी व्याख्या इन दृष्टान्तोंको देकर कर रही हैं। अयोध्याकाण्ड दोहा २२३ में मगवासियोंके वचनोंसे मिलान कीजिये। यथा—*'कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥ ६॥ बसहिं कुदेश कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरस पुन्य परिनामा॥ ७॥ अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥ ८॥ भरत दरस देखत खुलेउ मगलोगन्ह कर भागु। जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधिबस सुलभ प्रयागु॥'*

जनकपुरवासियोंका श्रीरामजीमें कैसा गाढ़ प्रेम है वह इन चौपाइयोंसे प्रकट हो रहा है जितनी ही कठिनता वा दुःखसे कोई वस्तु प्राप्त होती है, उतनी ही अधिक उसमें प्रीति होती है।

श्रीनंगे परमहंसजी—भाव यह कि हमलोग मानसरोगसे मरनेवाले थे, अब अमृतरूपी श्रीरामजीकी प्रेमाभक्ति प्राप्त हो गयी। अब नहीं मरेंगे अर्थात् पुनर्जन्म न होगा। पुनः हम लोगोंको भूखेकी तरह जन्मभर सुखकी प्राप्ति न हुई थी, अब श्रीराम-नाम कल्पतरु प्राप्त हो गया जिससे समस्त वाञ्छित सुख प्राप्त होंगे। पुनः हम लोग चौरासी लक्ष योनिरूप नरकमें पड़े रहते, अब श्रीरामजीके नाम और रूपको भक्ति करके हरिपद प्राप्त कर लेंगे।

प० प० प्र०—अमृतका पृथ्वीपर प्रयत्न करनेपर भी मिलना असम्भव है। उसका मिल जाना अतिथिके आगमनके समान अनपेक्षित और अकस्मात् है। इस दृष्टान्तसे इन लोगोंकी पूर्वस्थिति भी सूचित की कि इनको दैहिक सुखकी किंचित् आशा न थी, जीवन भाररूप हो रहा था। इससे मोक्ष और शारीरिक पूर्ण सुखलाभ ध्वनित किया। *'सुरतरु लहै जनम कर भूखा'*—इससे सूचित किया कि इनकी ऐहिक सुखकी आकाङ्क्षाएँ अब पूरी हो गयीं। इसमें मानस-सुख-लाभ ध्वनित किया। *'पाव नारकी हरिपदु जैसे'* से इनको *'मुनि दुर्लभ हरिभक्ति'* की अनायास अनपेक्षित प्राप्ति दिखायी।

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥ ७॥
येहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गये कुँअर सब राज निकेता॥ ८॥
दो०—रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठी रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु॥ ३३५॥

अर्थ—श्रीरामजीकी शोभा देखकर हृदयमें धर लो। अपने मनको सर्प और (श्रीरामजीकी) मूर्तिको मणि बना लो॥ ७॥ इस प्रकार सबको नेत्रोंका फल देते हुए सब राजकुमार राजमहलमें गये॥ ८॥ रूपके समुद्र सब भाइयोंको देखकर रनिवास प्रसन्न होकर उठा। सासुएँ महान् आनन्दित मनसे निछावर और आरती कर रही हैं॥ ३३५॥

टिप्पणी—१ *'निरखि राम सोभा……'* इति। (क) अर्थात् शोभाको अच्छी तरह देखकर शोभामयी मूर्तिको भीतर रख लो, यथा—*'लोचन मग रामहि उर आनी।……'* (ख) जब चारों भाई राजमन्दिरको चले तब रूप निहारनेको कहा, यथा—*'लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूपसुत चारी॥'* (३) और जब राजमन्दिरके भीतर जाने लगे तब कहती हैं कि श्रीरामजीकी शोभा देखकर हृदयमें रख लो। इससे जनाया कि राजमहलके भीतर सबको जानेका अधिकार नहीं है, इसीसे जब सब लोग भीतर न जा सके तब उन्होंने मूर्तिको हृदयमें धारण किया। (ग) *'निज मन फनि मूरति मनि करहू'* अर्थात् जैसे सर्प मणिको धारण करता है, क्षणभर भी नहीं भूलता और मणि बिना मर जाता है, यथा—*'मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥'*

नोट—१ *'निज मन फनि मूरति मनि करहू'* इति। अपने मनको सर्प और श्रीरामजीकी मूर्तिको मणि बनानेका भाव यह है कि मणिवाले सर्पका ध्यान निरन्तर मणिपर रहता है। वह मणिको कभी भी नहीं भूलता, वैसे ही सदा इनका ध्यान हृदयमें धारण किये रहो, कभी यह मूर्ति बिछुरे नहीं। पुनः जैसे सर्प बिना मणिके छटपटाता है, उसका जीवन कठिन हो जाता है और जबतक जीता रहता है व्याकुल और बिहाल रहता है, यथा—*'मनि लिये फनि जियें ब्याकुल बिहाल रे'* इति। (विनय० ६७), वैसे ही इनकी मूर्ति जिस समय हृदयसे अलग हो तो छटपटाकर मर ही जाओ, इस प्रकार प्रियत्व इनमें दृढ़ करो, हृदयसे इनका विस्मरण कदापि न होने पावे।

टिप्पणी—२ यहाँ श्रीरामजीके दर्शनको चारों फलोंकी प्राप्तिके समान कहती हैं। *'को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥'* में धर्म-फलकी प्राप्ति कही, क्योंकि पूर्व कहा ही

है कि सुकृत ही रूप धरकर 'राम' हुआ है, यथा—'*दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥*' (३१०। १) ('*सुकृत*' और '*अतिथि*' धर्मके सूचक हैं।) '*सुरतरु लहै जनम कर भूखा*' से 'काम-फल' की प्राप्ति कही। '*पाव नारकी हरिपदु जैसे*' से मोक्ष और '*निज मन फनि मूरति मनि करहू*' से अर्थ-फलकी प्राप्ति कही, क्योंकि मणि द्रव्य है। [पूर्व चारों भाइयोंको चार फल कह आये हैं, यथा—'*नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनु धारी॥*' (३०९। २) इसीसे यहाँ चार उपमाओंके विचारसे चार चौपाइयाँ दीं। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ '*येहि बिधि सबहि नयन फलु……*' इति। (क) इससे जनाया कि चारों भाई बहुत धीरे-धीरे राजमन्दिरको गये, जिसमें सब लोगोंको अच्छी तरह दर्शन हो, यही 'नयनका फल' देना है, यथा—'*निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।*' (अ०) (ख) ऊपर '*लेहु नयन भरि रूप निहारी*' से लेकर '*मूरति मनि करहू*' तक श्रीरामजीके प्रति जो पुरवासियोंका प्रेम है वह कहकर अब '*येहि बिधि……*' से श्रीरामजीकी उनपर कृपा दिखायी। (ग) '*चले जनक मंदिर मुदित*' उपक्रम है और '*गये कुँअर सब राज निकेता*' उपसंहार है।

टिप्पणी—४ '*रूपसिंधु सब बंधु लखि………*' इति। (क) '*रूपसिंधु……*' का भाव कि प्रथम रानियोंका थोड़े जलमें पड़ी हुई मछलीके समान विकल होना कहा था, यथा—'*चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी॥*' (३३४। २) थोड़े पानीमें विकल थीं, अब रूपसिंधुकी प्राप्ति हो गयी, अतः हर्षित हुईं। (ख) '*हरषि उठी रनिवास*'—'*उठी*' से सूचित होता है कि सब रानियाँ कन्याओंसे मिल-भेंटकर बैठ गयी थीं, अब चारों भाइयोंको देखकर उठीं। अथवा, '*हरषि उठीं*'=हर्षित हुईं। यथा—'*सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।*' (विनय० २७९) (पहले जलके संकोचसे मछली विकल थी, अब समुद्र मिल गया, अतः वह व्याकुलता दूर हो गयी और सुख हुआ, यथा—'*सुखी मीन जे नीर अगाधा।*' '*रूपसिंधु*' का भाव कि रूप ऐसा है कि जिसकी थाह कोई नहीं पा सकता।) (ग)-'*करहिं निछावरि आरती*' इति। आरती करके तब निछावर करना चाहिये, यह नियम है, यथा—'*करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥*' (२६५। ६) '*करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेम प्रमोदु कहै को पारा॥ भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥*' (१। ३४९) पर यहाँ '*महा मुदित*' होनेसे नियमका विचार न रह गया, प्रेमवश पहले निछावर करने लगीं। प्रेमका स्वरूप आगे दिखाते हैं, यथा—'*देखि राम छबि अति अनुरागी। प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी॥ रही न लाज प्रीति उर छाई॥*' (घ) '*महा मुदित मन सासु*'—भाव कि उनके इस समयके सुखका वर्णन कोई कर नहीं सकता, इतना महान् सुख है। (पूर्व भी कहा था—'*जो सुख भा सियमातु मन देखि राम बर बेषु। सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥*' (३१८) वैसा ही वा उससे अधिक सुख इस समय है। रनवासभर हर्षित हुआ और आरती कन्याकी माताएँ कर रही हैं। सम्भवतः इसीसे हर्षमें रनवासभरको कहा और आरतीमें '*सासु*' शब्द दिया।)

देखि राम छबि अति अनुरागी। प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी॥ १॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥ २॥
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेंवाए॥ ३॥

शब्दार्थ—उबटन=शरीरपर मलनेके लिये सरसों, तिल, चिरौंजी इत्यादिका लेप= अंगराग, अभ्यंग, बटना। **उबटि**=उबटन लगाकर। हेतु=प्रेम, यथा—'*चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु॥*' (१०२)

अर्थ—(सब रानियाँ) श्रीरामजीकी छबिको देखकर अत्यन्त अनुरागको प्राप्त हो गयीं। प्रेमके विशेष वश होनेसे बार-बार चरणोंमें लगीं अर्थात् चरण पकड़े॥ १॥ हृदयमें प्रीति छा गयी है (इसीसे) लज्जा न रह गयी। (वह) स्वाभाविक स्नेह कैसे वर्णन किया जा सकता है?॥ २॥ उन्होंने भाइयोंसहित (उनको) उबटन लगाकर स्नान कराया (और) अत्यन्त प्रेमसे षट्रस भोजन खिलाया॥ ३॥

टिप्पणी—१(क) *'देखि राम छबि अति अनुरागी'*—भाव कि सब भाइयोंको देखकर हर्षित हुईं थीं और श्रीरामजीकी छबि देखकर 'अत्यन्त' अनुरक्त हुईं। श्रीरामजी सब भाइयोंसे अधिक सुन्दर हैं। यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥'* (१९८। ६) इसीसे भाइयोंकी छबि देखकर अनुराग हुआ और श्रीरामछबि देखकर 'अति अनुराग' हुआ। (ख) *प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी'*—भाव कि सासुओंको जामाता (दामाद) के चरणोंमें लगना माधुर्यमें उचित नहीं है, पर वे प्रेमके विशेष वश हैं, अत्यन्त अनुरक्त हो गयी हैं; इसीसे चरण पकड़कर रह जाती हैं, (अत्यन्त प्रेममें ऐसा हो जाता है, उचित-अनुचितका विचार नहीं रह जाता। अत्यन्त प्रेमके वश होनेपर लोग 'बार-बार' चरणोंसे लगते हैं, चरण पकड़ लेते हैं, इत्यादि।) यथा—*'पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेमु अपारा॥'* (५। ४९), *'प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥'*

टिप्पणी—२ *'रही न लाज प्रीति उर छाई।.....'* इति। (क) *'रही न लाज'* से सूचित होता है कि शरीरपरके वस्त्रका सँभाल नहीं रह गया। अत्यन्त प्रेममें वस्त्रका सँभाल नहीं रह जाता, यथा—*'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥'* (२। २४०) (ख) *'प्रीति उर छाई', 'सहज सनेहु'* इति। प्रथम *'अति अनुरागी'* फिर *'प्रेम बिबस'* और फिर *'प्रीति' 'सनेह'* शब्द देकर जनाया कि ये सब पर्याय हैं अर्थात् सब एक ही हैं। [(ग) लज्जा न रह गयी। इसका कारण *'प्रीति उर छाई'* कहा। प्रीतिको नदीकी उपमा दी जाती है, नदीके प्रवाहमें जो कुछ पड़ता है वह बह जाता है। वैसे ही यहाँ श्रीरामप्रीतिरूपिणी सरिताके प्रवाहमें लज्जा और नियम बह गये। यथा—*'उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥'* (५। ४९)] (घ) *'सहज सनेहु बरनि किमि जाई'* इति। भाव कि यदि प्रेमीके मुखसे वह निकले तो कविसे कहते बने। हृदयके भीतरका प्रेम कैसे कहते बने? यथा—*'कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥ कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥'* (२। २४१) *'रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया॥ उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥'* (१। २४२) (ङ) पदकी प्रीति गङ्गा है, यथा—*'प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।'* अतः प्रथम प्रीतिरूपिणी गङ्गामें स्नान किया तब चारों भाइयोंसहित इनको स्नान कराया; क्योंकि प्रेमा भक्तिके बिना अभ्यन्तरका मैल जाता नहीं, यथा—*'प्रेमभगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥'* (७। ४९)

टिप्पणी—३ *'भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए।.....'* इति। (क) *'देखि राम छबि.....'* से केवल श्रीरामजीके वर्णनका प्रसंग है, इसीसे यहाँ *'भाइन्ह सहित'* कहा, नहीं तो यह पाया जाता कि केवल श्रीरामजीके उबटन लगाया और स्नान कराया गया। उबटन पहले लगाकर तब स्नान होता है, उसी क्रमसे यहाँ कहा। *'उबटि अन्हवाए'* से पाया गया कि (दिनमें) भोजनके समय पुनः स्नान किया करते हैं, क्योंकि यदि यह प्रथम स्नान होता तो बिना संध्या-पाठ-पूजा किये भोजन न करते, यहाँ पाठ-पूजा कुछ भी नहीं लिखते, क्योंकि पहर रात रहे चारों भाई स्नान-पूजा आदि सब कृत्य कर चुके हैं (जैसा पूर्व एक बार दिखा चुके हैं। *'बड़े भोर भूपतिमनि जागे।.....देखि कुअँर बर.....॥'* (३३०। २-३) तथा *'गुरतें पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान॥'* (२२६) देखिये)। (ख) *'छरस असन'*—यहाँ इतना ही कहा क्योंकि पहले विस्तारसे कह चुके हैं, यथा—*'छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥'* (३२९। ५) (ग) *'अति हेतु जेंवाए'* इति। भोजन करानेका भाव यह कि दूलहको कलेवा करानेकी रीति है, वही रीति यहाँ बरती। बिदाईके पूर्व कलेवा कराके नेग दिया जाता है, वह सब यहाँ जना दिया। *'अति हेतु'* कहकर भोजन करानेमें अत्यन्त प्रेमके अतिरिक्त भोजनके अन्तमें आचमन देना, फिर फूल-माला, अतर, पान (बीड़ी, लौड़ी, बीड़ोके साथ पुनः नेग इत्यादि सब भोजनके अङ्ग भी जना दिये। पूर्व लिख चुके हैं, अतः यहाँ विस्तारके भयसे नहीं लिखा। यथा—*अँचै पान सब काहू पाए। स्रक सुगंध भूषित छबि छाए॥' 'आदर सहित आचमनु दीन्हा॥ देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज॥'* (३२९) श्रीरामजी प्रेमहीको लेते हैं। *'अति हेतु जेंवाए'* कहकर जनाया कि माताके समान स्नेहसे खिला रही हैं।

बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥ ४॥
राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन* हम इहाँ पठाए॥ ५॥
मातु मुदित मन आयेसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥ ६॥

अर्थ—उत्तम अवसर (मौका) जानकर श्रीरामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचयुक्त वाणी बोले॥ ४॥ राजा श्रीअयोध्यापुरीको चलना चाहते हैं, विदा होनेके लिये हमें यहाँ भेजा है॥ ५॥ माताजी! प्रसन्न मनसे आज्ञा दीजिये। अपना बालक जानकर सदा स्नेह बनाये रखियेगा॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'बोले रामु'*—श्रीरामजी सब भाइयोंमें बड़े हैं, इसीसे वे ही बोले, उनके सामने छोटे भाई नहीं बोल सकते। यह शिष्टाचार है, प्राचीन आर्यसंस्कृति है। *'सुअवसरु जानी'* अर्थात् उबटन, स्नान, भोजन आदि करा चुकनेपर जब सब सावधान हुईं तब बिदाकी चर्चा चलायी। श्रीरामजी सदा अवसरसे ही काम करते हैं। यहाँ भी जब रानियाँ कन्याओंको पातिव्रत्यका उपदेश देकर मिल-भेंट चुकीं तब विदा कराने चले, यथा—*'तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुलकेतु। चले……।'* (३३४) उस (चलनेके) 'अवसर' से (विदा करानेकी चर्चाका) यह अवसर विशेष (कोमल) है; अतः यहाँ *'सुअवसरु'* देखकर बोलना पड़ा। बोलनेमें 'सुअवसर' देखकर भी बोलना चाहिये। विभीषणजी भी रावणके पास उपदेश कहनेके लिये 'सुअवसर' से आये थे, परंतु उपदेश 'सुअवसर' देखकर ही कहा था, यथा—*'अवसर जानि बिभीषन आवा।"'* (५। ३८) *'"……मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात। तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ 'सुअवसरु' तात॥'* (३९)] (ख) *'सील सनेह सकुचमय बानी'* इति। शील, स्नेह और संकोच तीनों आगेकी वाणीमें दिखाते हैं। *'राउ अवधपुर चहत सिधाए।"'* यह *'सील सकुचमय'* वाणी है। यहाँ मारे संकोच और शीलके प्रकट (शब्दोंसे) बिदा नहीं माँगते, कहते हैं कि राजाने हमें बिदा होनेके लिये भेजा है, 'हम बिदा कराने आये हैं' ऐसा नहीं कहते। शील और संकोचसे ही 'बिदा कराने' का नाम नहीं लेते, अपनी बिदा माँगते हैं, सो वह भी राजाकी ओटसे। यहाँ शील और संकोच दोनों साथ ही हैं। जैसे *'गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥ सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥'* (२। ३१३) में श्रीरामजीका सबको देखकर सकुचना कहा, फिर उसी संकोचको *'सील'* और *'सकुच'* कहकर सराहना कहा, वैसे ही यहाँ शील और संकोच दोनों ही साथ-साथ हैं। *'मातु मुदित मन आयेसु देहू।""नेहू'* यह स्नेहमय वाणी है। [प्र० सं० में *'राउ अवधपुर चहत सिधाए'* को शीलमय और *'बिदा होन हम………'* को सकुचमय वाणी लिखा गया था।]

टिप्पणी—२ (क) *'राउ अवधपुर चहत सिधाए'* इति। श्रीरामजी अपनी बिदा माँगना चाहते हैं, इसीसे प्रथम राजाका बिदा होना कहते हैं। अर्थात् राजा बिदा हो चुके, बारातको जानेकी आज्ञा मिल गयी, तब उन्होंने हमको यहाँ बिदा होनेके लिये भेजा है। *'बिदा होन हम इहाँ पठाए'* इति। जनवासेसे 'बिदा कराने' चले थे, यथा—*'चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु।'* परंतु संकोचवश 'बिदा कराने' का नाम न लेकर अपनी बिदा माँगते हैं, सो भी पिताकी आज्ञा सुनाकर। पुनः *'बिदा होन हम…'* का भाव कि समधी समधीसे बिदा होता है और जामाता सासुसे बिदा होता है, अतः हमें यहाँ बिदा होनेको भेजा। (ख)—*'मातु मुदित मन आयेसु देहू'* इति। *'मुदित मन'* का भाव कि मुदित मनसे आज्ञा देनेसे मुदमङ्गल होता है, यथा—*'आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥'* (२। ५३) पुनः भाव कि श्रीरामजीका जाना सुनकर सब रानियाँ व्याकुल हैं, यथा—*'चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी॥'* (३३४। २) तब वे हर्षपूर्वक जानेकी आज्ञा कैसे देंगी, यह समझकर उनसे *'मुदित मन'* से आयसु देनेको कहते हैं। पुनः भाव कि जब श्रीरामजीने कहा कि राजाने हमें बिदा होनेके लिये भेजा है, तब रानियाँ ये वचन सुनकर बहुत उदास हो गयीं, यह देखकर श्रीरामजीने कहा कि, माताजी!

* हित हमहि—छ०, १७०४। हम इहाँ—१६६१, १७२१, १७६२ को० रा०।

हमें आनन्दित होकर आसिष और आज्ञा दीजिये। वचन सुनकर उदास होना आगे स्पष्ट है, यथा—'*सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू।*' (ग) '*बालक जानि करब नित नेहू*' इति। बालकमें माताका स्नेह सबसे अधिक होता है, यथा—*सुतकी प्रीति प्रतीति मीत की*......' इति(विनयपत्रिका) अतः 'बालक' जानकर स्नेह करना कहा। पुनः स्नेह किसी-न-किसी कारणसे होता है, इसीसे स्नेह करनेका हेतु कहते हैं कि '*बालक जानि*' अर्थात् बालक जानना। बालक जाननेसे स्नेह स्वाभाविक ही होगा।

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहि प्रेम बस सासू॥७॥
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्हीं। पतिहि सौंपि बिनती अति कीन्हीं॥८॥
छं०—करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सबकी अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस* सील सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

अर्थ—(श्रीरामजीके) वचनोंको सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासें प्रेमवश बोल नहीं सकतीं॥७॥ (उन्होंने) सब कन्याओंको छातीसे लगा लिया (और फिर उन्हें) पतियोंको सौंपकर अत्यन्त विनती की॥८॥ (भाइयोंकी) विनती करके सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीके समर्पण किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगीं—हे तात! हे सुजान! मैं बलैया लेती हूँ, तुमको सबकी गति मालूम है। परिवारको, पुरवासियोंको, मुझको और राजाको सीता प्राणोंसे भी प्यारी जानिये। हे तुलसीके ईश! इसका सुन्दर शील और स्नेह लखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा।

टिप्पणी—१ (क) बिलखना=उदास होना, यथा—'*अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥*' (२। २१४) '*सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥*' (३३३। २) (ख) '*बोलि न सकहिं प्रेम बस सासू*' इति। श्रीरामजी बिदा अर्थात् चलनेकी आज्ञा माँग रहे हैं, इसपर कुछ बोल नहीं सकतीं अर्थात् कुछ उत्तर नहीं देतीं, इसका कारण '*प्रेम बस*' बताया अर्थात् प्रेमके वश होनेसे वचन नहीं निकलता। '*प्रेम बस*' का दूसरा भाव यह है कि प्रेमी कभी अपने प्यारेको जानेको नहीं कहता, इसीसे '*बोलि न सकहि*' कहा। पुनः भाव कि जब प्रियका वियोग होने लगता है, तब प्रेम अधिक बढ़ जाता है, इसीसे '*प्रेम बस*' होना कहा। अथवा प्रेमके वश तो पहलेहीसे हैं, यथा—'**प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी**' उसीसे '*प्रेम बस*' कहा। प्रेमके वश होनेसे मुखसे वचन नहीं निकलता, यथा—'*प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥*' (उदास होना रनिवासका कहा और बोल न सकना '*सास*' का कहा, क्योंकि बिदा करना, बोलना यह सब सासका काम है।)

टिप्पणी—२ '*हृदय लगाइ कुअँरि*......' इति। (क) पहले हृदयसे लगाकर तब कन्याओंको उनके पतियोंके कर-कमलोंमें समर्पण करनेका भाव कि ये कन्याएँ हमको अत्यन्त प्रिय हैं, यथा—'*नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।*' (१०१) (श्रीमेनाजीने यह जो बात कही थी वही बात यहाँ श्रीसुनयनाजीके '*हृदय लगाइ लीन्हीं*' में सूचित की गयी है)। (ख) '*पतिन्ह सौंपि*......' अर्थात् श्रीभरतजीको 'माण्डवी' श्रीलक्ष्मणजीको 'उर्मिला' और श्रीशत्रुघ्नजीको 'श्रुतिकीर्ति' समर्पण करके तब अन्तमें सबसे विनती की। '*अति बिनती*' वही है जो श्रीरामजीसे की है, वही इनसे भी की। क्या विनती की, यह आगे लिखा है।

टिप्पणी—३ '*करि बिनय सिय रामहि समरपी*......' इति। (क) तीनों भाइयोंकी विनती करके तब

* तुलसी सुसील—१७०४, १७२१, छ०, भा० दा०, रा० बा० दा०, रा० व० श०, को० रा०। तुलसीस सिलु—१६६१। 'स' स्पष्ट है, इससे 'तुलसीस' पाठ है और यह भावमें उत्तम भी है। 'सि' लेख प्रमाद है, 'सी' चाहिये।

श्रीरामजीके करकमलोंमें श्रीसीताजीको समर्पण किया। 'श्रीरामजीकी विनती करके तब 'सीता' उनको समर्पण की' ऐसा अर्थ नहीं है, क्योंकि आगे श्रीरामजीसे विनय करती हैं। दूसरे, छन्दके आदिमें (पहले) जो चौपाई होती है उसीका अर्थ छन्दके आरम्भमें रहता है। *'पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं'* यह छन्दके पहले है। अतः वही अर्थ छन्दमें आया। यहाँ सूचीकटाहन्यायसे श्रीरामजीकी विनती की (अर्थात् पहले औरोंकी विनती की। वह काम इस कामसे सहज था, इससे प्रथम उसे किया।) (ख) *'जोरि कर पुनि पुनि कहै'*—विनती करनेके लिये हाथ जोड़ती हैं, यथा—*'बिनती करउँ जोरि कर रावन।'* (५। २२) *'पुनि पुनि कहै'* अर्थात् बारम्बार विनती करती हैं जिसमें विनती मान लें, यथा—*'बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥'* (२५७। ८) (ग) *'बलि जाउँ तात'*—यह स्त्रियोंके बोलनेकी रीति है। (प्रायः अपने प्रियके सम्बन्धमें स्त्रियाँ *'बलि जाउँ'*, बलिहारी जाती हूँ, बलैया लेती हूँ, इत्यादि शब्दोंका प्रयोग करती हैं। यथा—*'मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥'* (३५७। १) *'तात जाऊँ बलि बेग नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥ पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥'* (२। ५३) *'जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।'* (२। ५७) *'तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥'* (२। ५५)। *'सुजान'*—श्रीसीताजीका शील और स्नेह लखने तथा सबकी गति जाननेके सम्बन्धसे *'सुजान'* कहा, यथा—*'करुनानिधानु सुजानु सील सनेह जानत रावरो।'* (१। २३६) (घ) *'तुम्ह कहुँ बिदित गति सबकी अहै'*—भाव कि (जो सबकी गति जानता है) ऐसे सुजानसे बहुत कहनेका प्रयोजन नहीं होता, यथा—*'सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।'* (२। ३००) अतः थोड़ा ही कहती हूँ, वह यह कि *'परिवारु पुरजन........।'*

टिप्पणी—४ *'परिवार पुरजन.....'* इति। (क) परिवार अर्थात् निमिवंशी। 'परिवार, पुरजन, मुझको और राजाको, सभीको, 'सीता' प्राणप्रिय है।' कहनेका भाव कि हमारी विनय सुनकर इसे आप भी अपनी प्यारी बनावें, आप भी इसको प्यार करें जिसमें यह सुखी रहे। इसके सुखी रहनेसे हम सब सुखी रहेंगे। [(ख) *'तुलसीस'* का भाव आगे नोट १ में देखिये।] *'सील सनेह लखि निज किंकरी करि मानबी'* इति। शील और स्नेह 'लख' कर किंकरी मानियेगा, इस कथनसे सूचित करते हैं कि शील और स्नेह होनेसे श्रीरामजी अपना किंकर मान लेते हैं, क्योंकि ये दोनों भारी गुण हैं, यथा— **'शीलं परं भूषणम्'** *'पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।'* किंकरमें यदि ये गुण न हों तो वह कैंकर्यके योग्य नहीं है। श्रीसीताजी तो पटरानी होंगी, इनको किंकरी माननेकी विनती करती हैं, इसमें अभिप्राय यह है कि श्रीरामजीको दास अत्यन्त प्रिय है। यथा—*'अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥ सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥ सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥'* (७।१६)

नोट—१ *'तुलसी-स-सील सनेहु लखि'* इति। पुरानी लिपियोंमें अक्षर अलग-अलग लिखनेकी रीति पायी जाती है, जिससे कहीं-कहीं किसी अक्षरको आगे या पीछे ले लेनेसे भावोंमें भिन्नता आ जाती है। कभी-कभी प्रसंगानुकूल दोनों शब्द और भाव लग जाते हैं और कभी नहीं भी लगते, जिससे शुद्ध पाठ विदित हो जाता है। विनयपत्रिकामें तो ऐसी भूलसे लोगोंने *'तनु-ज तऊ'* को *'तनु जतऊ'* पढ़कर अर्थ बैठानेके लिये *'तनु जनेऊ'*, *'तनु तजेऊ'* *'त्वच तजेऊ'* इत्यादि पाठ रखकर अर्थ लगानेमें सिरको पचा डाला। वस्तुतः पाठ *'तनुज तऊ'* है। इस तरहकी भूल हो जाना सम्भव है। यहाँ पाठ *'तुलसीस सील'* है। यह पाठ संवत् १६६१ की पोथीका है। सम्भवतः *'तुलसी ससीलु'* पढ़ा गया हो, और *'ससीलु'* का *'सुसील'* हो गया हो। *'सुसील'* पाठ प्रायः सभी छपी पुस्तकोंमें है। गीताप्रेसने सं० १६६१ का ही पाठ लिया है। *'तुलसीस'* पाठवाला भाव हमें इसी ग्रन्थमें अन्यत्र भी मिलता है, यथा—*'सकल तनय चिरजीवहु तुलसिदास के ईस।'*(१। १९६), *'तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।'* (२। ७५), *'तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपाल पार उतारिहौं।'* (१००), यह कविकी शैली है कि उत्तम अवसर

और प्रसंग पाकर अपना सम्बन्ध भी प्रेमी-पात्रोंद्वारा प्रभुसे जोड़ देता है। यह 'भाविक अलंकार' है। यहाँपर भी श्रीसुनयना अम्बाजीके मुखसे वह अपना भावी नाता दृढ़ करा रहा है।

अन्य प्रेमियोंका पाठ *'सुसीलु'* है। उस पाठके अनुसार अर्थ होगा—'तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर शील और स्नेह लखकर।' इस पाठसे *'तुलसीस सीलु'* को हम समीचीन समझते हैं, क्योंकि *'सील'* संज्ञा है और *'सुसील'* जब एक शब्द माना जाता है तब वह विशेषण ही है। *'सुसील'* पाठ यदि कविका मानेंगे, तो उसे सु+शील=सुन्दर शील, ऐसा अर्थ करना होगा।

'तुलसी सुसील' पाठमें भाव यह कहेंगे कि किंकर बननेके प्रकरणमें कविने अपना नाम रखा कि मुझे भी किंकर मान लें।

नोट—२ बाबा हरिहरप्रसादजी 'सुसील और स्नेह' को श्रीरामजी, श्रीसुनयनाजी और श्रीसीताजी तीनोंमें लगाकर ये भाव लिखते हैं कि—'अपने शील और स्नेहकी ओर देखकर इसको अपनी दासी करके मानियेगा। अर्थात् इससे जो कुछ न बने, उसपर दृष्टि न डालियेगा। पुन: हमारे मुलाहजा और स्नेहकी ओर देखकर इससे जो अपराध हो उसे क्षमा कीजियेगा। पुन: इसकी सुशीलता और स्नेहको देख इसको दासी करके मानियेगा। भाव यह कि इनका शील और स्नेह तो इनको प्रियतमा माननेके योग्य है, पर आप दासी ही जानियेगा।'

सो०—तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन*॥ ३३६॥
अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेमपंक जनु गिरा समानी॥ १॥

शब्दार्थ—**परिपूरन** (परिपूर्ण)=खूब लबालब भरा हुआ; पूर्णतृप्त। 'परि' उपसर्ग 'सर्वतोभावेन', 'सब प्रकारसे', 'अच्छी तरह' का अर्थ देता है। **काम**=कामना। **भाव**=अन्त:करणका प्रेम आदि सद्भाव। **गाहक**=ग्राहक; ग्रहण करनेवाले।

अर्थ—हे श्रीरामजी! आप सर्वतोभावेन पूर्णकाम हैं, ज्ञानियों एवं जानकारोंमें श्रेष्ठ हैं, आपको (भक्तोंका) भाव ही प्रिय है, आप भक्तोंके गुणोंको ही ग्रहण करते (लेते) हैं, दोषोंके नाश करनेवाले और करुणाके निवास-स्थान हैं॥ ३३६॥ ऐसा कहकर रानी (श्रीसुनयनाजी) श्रीरामजीके चरणोंको पकड़कर रह गयीं, वाणी मानो प्रेमरूपी कीचड़में समा (अर्थात् फँस) गयी॥ १॥

टिप्पणी—१ पूर्व जो चार बातें छन्दमें कही गयीं, उन्हींके सम्बन्धसे सोरठेमें सब विशेषण दिये गये हैं। श्रीसीताजीको जो समर्पण करना कहा—*'सिय रामहि समर्पी'*, उसपर कहती हैं कि *'तुम्ह परिपूरन काम'* अर्थात् आपको कोई क्या दे सकता है? (जिसके पास कोई वस्तु न हो अथवा जिसको किसी वस्तुकी चाह हो वह उनको दी जाय, सो आपको सब वस्तुएँ प्राप्त हैं, आपको किसी वस्तुकी न चाह है और न आवश्यकता ही है क्योंकि आप परिपूर्णकाम हैं। पंजाबीजी लिखते हैं कि 'परिपूर्णकाम' का भाव यह है कि यदि हम दानसे आपको रिझाना चाहें तो सम्भव नहीं है। आप हमारे दानसे अथवा श्रीसीताजीके (शील आदि गुण) सौन्दर्यसे प्रसन्न हो सकें यह बात नहीं है)। *'परिवारु पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी'* इस कथनके सम्बन्धसे कहती हैं कि आप 'ज्ञानशिरोमणि' हैं [पुन: भाव कि यदि हम चाहें कि अपने ज्ञानसे आपको प्रसन्न कर सकें तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि आप ज्ञानियोंमें शिरोमणि हैं'। (प्र० सं०)] *'तुलसीस सीलु सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी'* यह जो विनती की थी उसपर कहती हैं कि आप 'भाव-प्रिय' हैं। (अर्थात् हम किसी प्रकार आपको रिझा नहीं सकतीं। हाँ, भरोसा है तो केवल एक यही है कि आप *'भाव प्रिय'* हैं) अत: आप 'सीता' का शील और स्नेह लखकर उसे अपनी किंकरी कीजिये। *'किंकरी करि मानिबी'* अर्थात् किंकरी करनेको

* करुनाअयन—पाठान्तर।

कहा था, इसीसे *'जनगुनगाहक', 'दोषदलन', 'करुनायतन'* कहा। आशय यह है कि अपनी किंकरी 'सीता' के अपराध क्षमा कीजियेगा, गुणोंको ग्रहण करके उसपर करुणा कीजियेगा। (सोरठेका भाव यह है कि मैं आपको क्या समझाऊँगी। यह मेरी विनय सेवकोंके रीतिकी है, सेवकका धर्म है विनय करना। वही मैंने किया है। मिलान कीजिये—*'बार बार रघुनाथहिं' निरखि निहोरहिं, तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन। अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन॥' '(१०४)' जानि करब सनेह बलि दीन बचन सुनावहीं।'* (श्रीजानकीमङ्गल)। *'गुनगाहक'* यथा—*'देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥'* (२। २९९) *'जन गुन अलप गनत सुमेरु करि अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।'* (विनय० २०६) *'रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिए की॥'* (२९। ५)

टिप्पणी—२ *'अस कहि रही चरन गहि रानी।'*······ 'इति। (क) *'प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी।'* (३३६। १) उपक्रम है और *'अस कहि रही चरन गहि'* उपसंहार है। *'बोलि न सकहि प्रेम बस सासू।'* (३३६। ७) उपक्रम और *'प्रेम पंक जनु गिरा समानी'* उपसंहार है। [करुणा-प्रेमवश होनेसे ऐसा किया था, यथा—*'माँगेउ बिदा राम तब सुनि करुना भरी। परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी॥'* (१०३) (जानकीमङ्गल)]

नोट—१ *'प्रेम पंक जनु गिरा समानी'* इति। (क) पूर्व कहा था कि *'प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी'* अर्थात् पूर्व बारम्बार सिर नवानेकी सावधानता थी, पुनः-पुनः चरण लगनेका होश था, पर जब बिदा माँगी गयी तब वे ऐसी करुणावश हो गयीं कि *'रही चरन गहि'* अर्थात् वह सावधानता भी जाती रही, चरण पकड़े रह गयीं। जलसे मनुष्य निकल आता है, पर कीचड़-दलदलमें फँसनेसे बाहर निकलना कठिन हो जाता है, वैसे ही यहाँ वाणीकी दशा हुई, मुँहसे वचन नहीं निकलता ऐसी प्रेमसे बेबस हो गयी हैं। प्रेमको कीचड़का रूपक दिया है। प्रथम *'बोलि न सकहि प्रेमबस'* कहा था, भाव यह कि पहले भी बोल न सकती थीं, फिर भी कुछ बोली थीं, अब करुणा-प्रेम अधिक हो गया, इससे अब कुछ भी नहीं बोल सकतीं, बोलनेका सामर्थ्य न रह गया। (प्र० सं०) (ख) पहले *'बिकल मीनगन जनु लघु पानी'* यह अवस्था हो गयी थी, अब वह *'लघु पानी'* भी उड़ गया, केवल दलदल रह गया जिसमें फँस गयीं। बाहर निकलनेमें दूसरेकी सहायताकी जरूरत है। वह अब श्रीरामजी देंगे। (प० प० प्र०)

प० प० प्र०—मानसमें यह पाँचवीं स्तुति है। नक्षत्रमण्डलमें पाँचवाँ नक्षत्र मृगशीर्ष है। इसका आकार मृगके मुखका-सा है, इसमें तीन तारे हैं, देवता शशि है। और इस नक्षत्ररूपी स्तुतिकी फलश्रुति है *'जननि सिय राम प्रेम के।'* अब दोनोंका साम्य देखिये—(१) नामसादृश्य। नेत्र मस्तकका एक भाग ही होता है, इसीसे नवद्वारोंमेंसे ग्रीवके ऊपरके सात द्वारोंको सप्तशीर्षण्यानि कहा है। यह सुनयनाकृत स्तुति है और सुनयनाजी तो *'बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि'* में मुख्य हैं। (२) मृग समान लोचनवाले मुखसे ही स्तुति की गयी। यह आकार-साम्य है। मृगमुख साम्य है। (३) सुनयनाजीकृत तीन क्रियाएँ, *'सिय रामहि समर्पी' 'कर जोरि बिनय'* और *'चरन गहि रहना'* ही तीन तारे हैं। यह तारा संख्या-साम्य है। किसी-किसीने संख्या १३ कही हैं पर तीन ही दिखायी देते हैं। (४) यहाँ रामचन्द्र हैं और सुनयनाजी भी विधुबदनी हैं। यह देवतासाम्य हुआ। (५) फलश्रुति और स्तुतिमें साम्य है। सुनयनाजी सिय-जननी तो हैं ही और 'रामसिय' प्रेम इतना बढ़ गया कि दलदल हो गया, सब उसमें फँस गयीं। इससे जो इस स्तुतिको गान करेगा उसमें 'सियराम-प्रेम' उत्पन्न हो जायगा।

सुनि सनेह सानी बर बानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी॥ २॥
राम बिदा मागत* कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी॥ ३॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥ ४॥

अर्थ—प्रेममें सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्रीरामजीने सासका बहुत प्रकारसे सम्मान किया॥ २॥ श्रीरामजीने

* माँगा—१७०४, १७२१, १७६२, छ०, को० रा०। मागत—१६६१।

हाथ जोड़े विदा माँगते हुए बारम्बार प्रणाम किया॥ ३॥ आशीर्वाद पाकर पुनः भाइयोंसहित सिर नवाकर श्रीरघुनाथजी चले॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) ***'सुनि सनेह सानी बर बानी'*** इति। ***'बलि जाउँ तात'*** से लेकर ***'किंकरी करि मानिबी'*** तक जो छन्दमें वचन हैं वह ***'सनेह सानी'*** वाणी है और सोरठेमें कहे हुए (ऐश्वर्यसूचक) वचन ***'बर बानी'*** हैं, क्योंकि इनमें भगवद्गुणका वर्णन है। अथवा, सब वचन ***'बलि जाऊँ'*** से ***'करुनायतन'*** तक प्रेममय हैं, इससे सबको ***'बर बानी'*** कहते हैं। (ख) ***'बहु बिधि······सासु सनमानी'*** इति। भाव यह कि सुनयनाजीके ***'तुम्ह परिपूरन काम'*** के उत्तरमें कहा कि आपने हमको बहुत दिया, हम बहुत संतुष्ट हैं; आप तो हमारी माता हैं, अपना बालक जानकर हमपर सदा कृपा बनाये रखियेगा। 'सीताको अपनी किंकरी करके मानना' सासकी इस प्रार्थनाके उत्तरमें श्रीरामजी कुछ न कह सके। इसका उत्तर संकोचवश न दे सके। ***'बहु बिधि सनमानी'*** में ही इसका उत्तर भी आ गया, क्योंकि जो जिसका सम्मान करता है उसका वचन भी मानता है। ***'सनमानी'*** अर्थात् कहा कि माताजी आपकी आज्ञा सिरपर है।

टिप्पणी—२ ***'राम बिदा मागत कर जोरी।······'*** इति। (क) हाथ जोड़कर प्रणाम करनेका भाव कि दोनों हाथ जोड़कर माथेमें लगाकर प्रणाम किया। श्रीरामजी अत्यन्त विनम्र हैं, इसीसे उन्होंने अत्यन्त नम्रताका आचरण किया कि बार-बार प्रणाम कर रहे हैं। जैसे ***'बहु बिधि'*** से सम्मान किया वैसे ही बहुत विधिसे आदर किया—हाथ जोड़े, बार-बार प्रणाम किया, यह सब आदर-सम्मान है। (ख) सुनयनाजीने जो ***'जानसिरोमनि भाव प्रिय'*** विशेषण दिये थे वे यहाँ घटित हुए। ***'बहु बिधि राम सासु सनमानी'*** में ***'जानसिरोमनि'*** विशेषण घटित हुआ, क्योंकि बड़ी जानकारीसे सम्मान किया। ***'राम बिदा मागत कर जोरी'*** में 'भाव प्रिय' विशेषण घटित हुआ। श्रीरामजीको भाव प्रिय हैं इसीसे उन्होंने भी मातामें बड़ा भाव किया। (ग) ***'मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥'*** जो पूर्व कहा था वह वचनकी नम्रता है और ***'कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी'*** यह तनकी नम्रता है। [(घ) लज्जावश मुँहसे तो कह न सकते थे, प्रणामसे ही सूचित करते हैं कि आपका सब कथन प्रमाण है।' (पं०)]

टिप्पणी—३ ***'पाइ असीस बहुरि सिरु नाई।······'*** इति। (क) श्रीरामजी बिदा माँगते हैं। सास कैसे कहें कि जाओ, चारों ही भाई आँखोंकी ओट होने योग्य नहीं हैं, यथा—***'जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥'*** (२। १२१) (ये यमुनातट-ग्रामवासियोंके वचन हैं।) अतः उन्होंने जानेको नहीं कहा। आशीर्वाद दिया, आसिषके अभ्यन्तर आज्ञा हो चुकी। (कवि ***'असीस'*** देना भी प्रकट शब्दोंमें नहीं कहते, क्योंकि उसमें भी आज्ञाका आशय रहता है। इसीसे ***'पाइ असीस'*** में आशीर्वादका दिया जाना सूचित किया। प्रभु भी बिना बिदा मिले जायँ कैसे? इसीसे ***'पाइ असीस'*** कहा। आशीर्वाद बिदा होनेके समय दिया ही जाता है।) (आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए, अतः पुनः प्रणाम किया।) ***'भाइन्ह सहित'*** देहलीदीपक है। भाइयोंसहित सिर नवाया और भाइयोंसहित चले। (ग) आते समय भाइयोंसहित आना कहा था। यथा—***'तेहि अवसर भाइन्ह सहित राम भानुकुल केतु। चले जनक मंदिरमुदित······॥'*** (३३४)—यह उपक्रम है। वैसे ही बिदा होनेपर भाइयोंसहित जाना कहा। ***'भाइन्ह सहित चले रघुराई'*** यह उपसंहार है।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥ ५॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी॥ ६॥
पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥ ७॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥ ८॥

शब्दार्थ—**मञ्जु**=सुन्दर, मनोहर। **मधुर**=मनोरंजक; मनको प्रसन्न करने, आनन्द देनेवाली।

अर्थ—सब रानियाँ सुन्दर मधुर मूर्तिको हृदयमें लाकर प्रेमसे शिथिल हो गयीं॥ ५॥ फिर धैर्य धारण

करके लड़कियोंको बुलाकर माताएँ बारम्बार गलेसे लगाकर मिलती हैं॥ ६॥ कन्याओंको पहुँचाती हैं,* वहाँसे फिरकर पुनः मिलती हैं। आपसमें कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी (अर्थात् बहुत बढ़ी। दोनों ओरसे प्रेम बहुत बढ़-चढ़ रहा है)॥ ७॥ पुनः-पुनः मिलतेमें सखियोंने (माता और कन्याको) अलग किया, जैसे नयी ब्यायी हुई गौसे उसके बाल-बच्छको (लोग अलग कर देते हैं)॥ ८॥†

टिप्पणी—१ *'मंजु मधुर मूरति'''''* इति। (क) [*'मंजु'* अर्थात् देखनेमें सुन्दर, नेत्रोंको रुचिकर। (पं०) अथवा विकाररहित, निर्मल। (वै०) अथवा मनको हरण करनेवाला। *'मधुर'* अर्थात् जिनसे सम्भाषण करनेमें रस मिलता है (पं०) अथवा मन और नेत्रोंको प्रिय, आनन्ददायक। (वै०) अथवा न बहुत ऊँची न बहुत नीची। (रा० प्र०) अथवा चित्तको आनन्द देनेवाली तथा आकर्षक] *'उर आनी'* कहनेका भाव कि जब बाहरसे वियोग हुआ तब उस साँवली सुन्दर मधुर मूर्तिको हृदयमें लाकर रख लिया। हृदयमें मूर्तिके धारण करनेसे मारे प्रेमके सब अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, यथा—*'राम लषन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी॥ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची॥'* (२९०। ५-६) *'मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता॥'* (३४६। १) अतः *'मूरति उर आनी'* कहकर *'भईं सनेह सिथिल सब रानी'* कहा। (ख) *'भईं सनेह सिथिल'* कहकर जनाया कि देहकी सुध न रह गयी। यथा—*'मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥'* (२१५। ८) स्नेहसे शिथिल होना कहकर आगे शिथिलताका स्वरूप दिखाते हैं—*'पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी।'* [(ग) जैसे पुरवासियोंने श्रीरामजीको राजमहलमें प्रवेश करते देख उनकी शोभाको हृदयमें धारण करनेकी चर्चा करते हुए, यथा—*'निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥'* (३३५। ८) उस शोभाको हृदयमें रखा, वैसे ही यहाँ रानियोंने श्रीरामजीको जाते देख उनकी छबिमय मूर्तिको हृदयमें रख लिया। (प्र० सं०) *'भईं सनेह सिथिल'* यह रानियोंके प्रेममें विशेषता दिखायी।]

टिप्पणी—२ *'पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी।''''''* इति। (क) *'धीरजु धरि'*—यह लड़कियोंको बिदा करनेका समय है, शिथिल होकर बैठ रहनेका समय नहीं है, यह सोचकर मूर्तिके ध्यानकी मग्नताको धैर्य धारण करके हटाया। यथा—*'भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥'* (१०२। ६) (श्रीपार्वतीजीकी बिदाईके समय मेनाजीने जैसे धीरज धरा था वैसे ही यहाँ श्रीसुनयनाजीने *'कुसमय'* विचारकर धैर्य धारण किया। (ख) *'कुअँरि हँकारी'* से सूचित करते हैं कि रानियाँ प्रेममें इतनी शिथिल हैं कि चल नहीं सकतीं, इसीसे वे कन्याओंके पास न जा सकीं, उनको अपने पास बुलाकर उनसे भेंटीं—यह शिथिलताका स्वरूप है। *'हँकारी'* से सूचित होता है कि जब रानी चारों कन्याओंको उनके पतियोंको सौंपकर बिनती करने लगीं तब सब कन्याएँ लज्जावश कुछ दूर जाकर खड़ी हो गयी थीं, इसीसे उनको बुलाना पड़ा। यदि वे चारों भाइयोंके पास खड़ी होतीं तो बुलानेका कोई काम न पड़ता, क्योंकि चारों भाई तो समीप ही खड़े थे। (ग) *'बार बार भेटहिं महतारी'*—*'बार बार'* भेंटनेपर प्रसंग छोड़ा, यथा—*'रानिन्ह बार बार उर लाईं। बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी॥'* (३३४। ७-८) वही दशा अब फिर कह रहे हैं।

टिप्पणी—३ (क) *'पहुँचावहिं फिरि मिलहिं'''''* इति। सखियाँ कन्याओंको पहुँचाती हैं, यह आगे स्पष्ट करते हैं; यथा—*'पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई।'* सखियाँ ही पहुँचाती हैं और सखियाँ ही मातासे कन्याको अलग करती हैं, माताएँ प्रेमके कारण अलग नहीं करतीं और कन्याएँ प्रेमके कारण अलग नहीं होतीं। यही बात आगे कहते हैं—*'बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी।'* [बिदा करनेमें माता और सखियाँ आदि

* प्र० सं० में अर्थ था—'वे फिरकर फिरसे मिलती हैं'।

† प्र० सं० में अर्थ था—'सखियोंको अलग करके फिर-फिर मिलती हैं, जैसे नयी ब्यायी हुई बछिया नयी ब्यायी गऊसे और यह उसमें (मिला करती है)।' प्र० सं० में पाठ था 'मिलति'; परन्तु सं० १६६१ में 'मिलत' पाठ है। मिलतका अर्थ 'मिलतेमें' मिलती हुई होगा। यदि यह अर्थ अभिप्रेत होता कि 'मिलती हैं' तो 'मिलति' पाठ होता। दूसरे बिदा हो जाना, अलग होना आगे कहा नहीं गया, इससे भी सखियोंका अलग करना अर्थ ही ठीक है। हाँ, 'सखिन्ह बिलगाई' का दूसरा अर्थ भी साथ-साथ भावार्थमें ले सकते हैं कि सखियोंको अलग कर-करके मिलती हुई माँ बेटियोंको सखियोंने अलग किया।

सब द्वारतक जाती हैं! माताको कन्यासे सखियाँ आदि अलग करती हैं। कन्या माँको रोकर पुकारती है, माता फिर लौटकर सबको अलग करके मिलती है इत्यादि। यह रीति अबतक प्रचलित है। दूसरे *'पहुँचावहिं फिरि मिलहिं'* का कर्ता यहाँ *महतारी'* ही देहली-दीप-न्यायसे होता है। माता और कन्यामें वियोगके कारण प्रीति अधिक बढ़ जाती ही है।]

(ख) *'बढ़ी परस्पर प्रीति'* का भाव कि पहुँचानेसे प्रीति अधिक बढ़ी, यह सोचकर कि अब वियोग होना ही चाहता है। *'न थोरी'* अर्थात् प्रीति बहुत है, इसीसे दोनों एक-दूसरेसे अलग नहीं होतीं, यदि प्रीति थोड़ी होती तो अलग हो जातीं। (विशेष आगे टि० ४ में)

टिप्पणी—४ (क) *'पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई'* इति। सखियोंने दोनोंको अलग किया क्योंकि माता और कन्या दोनों अपनी ओरसे अलग नहीं हो सकतीं। माताएँ पहुँचाती हैं फिर लौटकर मिलतीं हैं फिर पहुँचाती हैं फिर मिलती हैं, इस प्रकार जब वे पुनः-पुनः मिलती हैं, एक-दूसरेको छोड़ती नहीं, तब सखियोंने (कई एकने मिलकर) कन्याओंको मातासे अलग किया। (ख) ऊपर जो कहा कि *'बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी'* उसको *'बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई'* के उदाहरणसे दिखाते हैं। *'बाल बच्छ'* पदसे कन्याकी प्रीति (मातामें) कही, क्योंकि मातामें बालबच्छकी प्रीति बहुत होती है और *'धेनु लवाई'* से माताकी प्रीति कही क्योंकि धेनुकी प्रीति बालबच्छमें बहुत होती है। *'बार बार भेटहिं महतारी'* यह माताकी प्रीति है और *'पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई'* यह कन्याकी प्रीति है, इसीसे *'परस्पर प्रीति'* कहा (ग) *'बाल बच्छ'* की उपमासे सूचित किया कि कन्याएँ माताकी ओर फिर-फिरकर देखती हैं, यथा—*'फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥'* (१। १०२) [(*'बाल बच्छ'* से हालकी ब्यायी बछियाका अर्थ होगा। इस शब्दसे पुँल्लिङ्गका भी बोध होता है परंतु यहाँ पुँलिङ्ग अर्थ असंगत है।) *'बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई'* के भाव टीकाकारोंने ये लिखे हैं—(१) माता सखियोंको अलग कर-करके लड़कियोंसे इस तरह मिल रही हैं जैसे कोई नयी ब्यायी हुई गाय अपने बछड़ेसे। (२) 'राजकुमारियाँ बारम्बार सखियोंसे पृथक्-पृथक् मिलती हैं जैसे—*'बाल बच्छ लवाई धेनुसे'*—(पंजाबीजी) (३) 'बार-बार' भेंटतेमें सखियाँ इनको पृथक् करती हैं जैसे तुरत ब्यायी गायसे बाल-बछड़ेको लोग अलग करते हैं'—(रा० प्र०) (४) 'मिलते समय सखियोंसे बिलगायी बारम्बार माताको पुत्री कैसे मिलती हैं जैसे बालबच्छको लवाई गाय मिलती। (बैजनाथजी)]

दोहा—प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहु कीन्ह बिदेहपुर करुना बिरह निवासु॥ ३३७॥

अर्थ—सब स्त्री-पुरुष और सखियोंसहित सब रनवास प्रेमके विशेष वश हो गया है, (ऐसा जान पड़ता है) मानो *'बिदेहपुर'* में करुणा और विरहने डेरा डाल दिया है (भाव यह कि सब स्त्री-पुरुष करुणा-विरहके रूप हो रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ये नर-नारि नहीं हैं, किंतु करुणा और विरह ही अगणित रूप धारणकर मूर्तिमान् होकर यहाँ निवास कर रहा है)॥ ३३७॥

टिप्पणी—१ (क) प्रथम नर-नारियोंका दर्शनके लिये आतुर हो दौड़ना लिख आये हैं, यथा—*'चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥'* (३३५। १) यहाँ *'प्रेम बिबस नर नारि सब'* से उन्हींकी दशा दिखाते हैं। [*'पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बालबच्छ जिमि धेनु लवाई॥'* यह दशा देखकर सब स्त्री-पुरुष आर्त और विह्वल हो गये। जो पुरवासी दर्शन करते हुए राजद्वारतक आये थे, वे पुनः चारों भाइयोंके लौटनेकी प्रतीक्षामें वहीं खड़े रहे, इसीसे बिछुड़न-समयकी दशा देखकर वे भी करुणा-विरहके विशेष वश हो गये।] (ख) *'मानहु कीन्ह बिदेहपुर····'* इति। *'बिदेहपुर'* का भाव कि यह तो ज्ञानियों (योगियों, विरक्तों)का पुर है, यहाँ तो करुणा और विरह किञ्चित् भी न होने चाहिये थे, यह जो करुणाविरह हुआ है यह श्रीसीतारामजीके स्नेहकी शोभा है [अर्थात् श्रीसीतारामजीके सम्बन्धसे यहाँ

करुणा और विरहका होना ज्ञानकी शोभा है—(प्र० सं०)] यथा— *'जासु ज्ञानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनिकमल बिकासा॥ तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सियराम सनेह बड़ाई॥ ''''''सोह न रामपेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥'* (२। २७७) (ग) *'करुना बिरह'* इति। करुणा और विरह एक ही हैं। करुणा स्त्रीलिङ्ग है और विरह पुँल्लिङ्ग है। स्त्रियाँ करुणारूपा हैं और पुरुष विरहरूप हैं, यह दरसानेके लिये 'करुणा' और 'विरह' दो शब्द दिये। [करुणा, यथा— *'छूटि जात केशौ जहाँ सुख के सबै उपाइ। उपजत करुणा रस तहाँ आपुन ते अकुलाइ॥'* (केशव। बै०) विशेष २५। १-२ भाग १ में देखिये। (घ)—*'कीन्ह निवास'* भाव यह है कि संसारमें लोगोंको करुणाविरह होता है पर कुछ दिनोंमें जाता रहता है, पर जनकपुरमें तो उसने डेरा ही डाल दिया, बस ही गया, यहाँसे आजन्म अब नहीं जानेका। आशय यह है कि यह (श्रीराम-जानकी-सम्बन्धका) करुणा-विरह जन्मभर निवृत्त नहीं होनेका। (इससे जनाया कि जनकपुरवासी वियोग-शृङ्गारके उपासक हैं। 'प्रियतम' का विरह ही वे प्रेमका सर्वस्व समझते हैं। गोपियोंकी भी ऐसी ही उपासना थी।)

मानस-मयंक—''भाव यह है कि बिना जानकीजीसे बिछुड़े लोक-लाज होगी, अर्थात् ससुराल अवश्य जाना चाहिये और बिछुड़नेसे प्राणका कष्ट पहुँचता है तिसपर भी मिलना अपने वशमें नहीं है, यही करुणा-विरह जानो।''

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥ १॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही॥ २॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती॥ ३॥

अर्थ—श्रीजानकीजीने जिन तोताओं-मैनाओंको जिलाया (अर्थात् खिला-पिलाकर पाल-पोसकर बड़ा किया था) और सोनेके पिंजड़ोंमें रखकर पढ़ाया था॥ १॥ वे व्याकुल होकर कह रहे हैं कि वैदेही कहाँ है? यह सुनकर धैर्य किसको न छोड़ देगा?॥ २॥ पशु-पक्षी इस प्रकार व्याकुल हो गये हैं (तब भला) मनुष्योंकी दशा कैसे कही जा सकती है॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'सुक सारिका'*—ये दोनों पक्षी पढ़नेमें श्रेष्ठ हैं। इसीसे इनके नाम लिखे। पक्षी तो और भी बहुत हैं पर वे पढ़नेमें वैसे श्रेष्ठ नहीं हैं, इससे उनके नाम नहीं दिये, इतना ही मात्र आगे उनके विषयमें कहते हैं कि *'भए बिकल खग''''।'* (ख) *'जानकी ज्याए'* कहनेका भाव कि जो श्रीजानकीजीके पाले-पोसे हुए हैं उन्हींका विलाप लिखते हैं। इसी प्रकार श्रीमाण्डवी-उर्मिला-श्रुतिकीर्तिजीके पाले-पोसे हुए शुक-सारिका भी हैं, वे भी इसी प्रकार विलाप करते हैं। (ग) *'कनक पिंजरन्हि राखि''''*' का भाव कि इन पक्षियोंको बड़े दुलारसे रखा और स्वयं पढ़ाया है। (घ) *'ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही'*—भाव कि जब सखियाँ सीताजीको मातासे अलग करके ले चलीं और वे देख न पड़ीं तब पक्षी व्याकुल होकर 'वैदेही कहाँ हैं, वैदेही कहाँ **हैं'** ऐसा विलाप करने लगे। [मयङ्ककार लिखते हैं कि 'शुक-सारिका साथ नहीं दिये गये, अतएव व्याकुल होकर बोलती हैं कि वैदेही कहाँ हैं? शुक-सारिकाके न देनेका कारण यह है कि जानकीके नामको लेकर शुक-सारिका उनको पुकारती थीं, अतएव नहीं दिया कि अयोध्यामें नाम लेकर पुकारना उचित नहीं, वहाँ प्यारी लाड़िली वधू और सुतवधू कहके पुकारी जायँगी।' ये तोते पढ़ाये हुए हैं। दूसरे ये दूसरोंके वचनोंकी नकल भी करते हैं, जैसा सुनते हैं वैसा स्वयं भी कहते हैं। *'ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही'* से यह भी प्रकट करते हैं कि इनको श्रीसीताजी कितनी प्रिय हैं। जब आँखोंकी ओट होती रही होंगी तब वे इसी तरह पुकारते होंगे, पुकार सुनकर वे तुरत आ जाती होंगी। पर आज आती नहीं, अतः व्याकुल हैं। शरीर सामने नहीं है, इसीसे 'वैदेही' कहकर विलाप करते हैं। प० प० प्र० स्वामीजी कहते हैं कि *'कहाँ बैदेही'* का भाव यह कि ''अबतक हम व्यर्थ ही 'सीता' 'जानकी' कहकर पुकारा करते थे, पर यह तो सचमुच वैदेही ही है, जानकी नहीं। उसे बुला तो दो, हम पूछ लें कि वह क्या है? जानकी

हो तो हमें साथ ले जाय, वैदेही हो तो पिंजड़ेसे छोड़ दे, हम उड़ते-उड़ते वहाँ आ जायँगे, हमको न खिलाना-पिलाना, हम स्वतन्त्र रहकर ही दो-एक बार दर्शन कर जाया करेंगे। जो कहो कि वहाँ तुम *'जानकी सीता'* नाम लेकर पुकारोगे, हम ऐसा न करेंगे, मौन रहेंगे, जबतक कि वहाँके नामोंसे परिचित न हो जायँगे।……''] (ङ) *'सुनि धीरजु परिहरै न केही'* इति। भाव कि लोग धीरजको नहीं छोड़ते पर धैर्य स्वयं ही उनको त्यागे देता है। पक्षियोंकी व्याकुलता देखकर धैर्य किसे नहीं छोड़ देता (अर्थात् मूर्तिमान् धैर्य स्वयं ही भाग जाता है, यथा—*'धीरजहू कर धीरज भागा।'* भाव यह कि बड़े-बड़े धीरजवानोंका धैर्य छूट जाता है।

टिप्पणी—२ *'भए बिकल खग मृग एहि भाँती।……'* इति। (क) स्त्री-पुरुषोंकी व्याकुलताकी विशेषता दिखानेके लिये खग-मृगकी व्याकुलताका वर्णन किया। यथा—*'जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसे॥'* (२। १००)*'जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥'* (८५। ३) मनुष्योंकी दशा कहनेके लिये खग-मृगके विरहका वर्णन किया गया। भाव कि जब पशु-पक्षी वियोगसे अकुला उठे और विलाप कर रहे हैं, तब भला माता-परिजन आदिको तो प्राण निकलनेका दुःख हुआ होगा, कैसी दशा है, कौन सह सकता है? (ख) शुक-सारिकाके विलापका वर्णन किया गया, परंतु अन्य पशु-पक्षियोंका केवल विकल होना कहा गया; क्योंकि अन्य खग-मृग वैखरी वाणी कहकर विलाप नहीं कर सकते। (तोता-मैनाको पढ़ाया गया है। वे मनुष्योंकी-सी वाणीमें बोल लेते हैं। अतः उनका बोलना कहा। अन्य पशु-पक्षी मनुष्यकी बोली नहीं बोल सकते, इससे उनका बोलना नहीं कहते।)।

बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥ ४॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥ ५॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की॥ ६॥

अर्थ—तब जनकजी भाईसहित आये। प्रेमकी उमंगसे नेत्रजल (प्रेमाश्रु) से भर गये॥ ४॥ कहलाते (तो) थे परम वैराग्यवान् (परंतु आज) सीताजीको देखकर उनका धैर्य भाग गया॥ ५॥ राजाने श्रीजानकीजीको हृदयसे लगा लिया। ज्ञानकी महान् मर्यादा मिट गयी॥ ६॥

टिप्पणी—१(क) *'बंधु समेत जनकु……'* इति। विदा करनेमें लड़कीसे भेंट करनी चाहिये, इसीसे राजा जनक और उनके भाई दोनों आये, क्योंकि दोनोंकी लड़कियाँ हैं। 'तब' अर्थात् जब चारों भाई विदा होके चले गये और चारों कन्याएँ रनवाससे विदा होकर महलके बाहर आयीं तब आनेका समय देखकर आये। जबतक स्त्रियोंका व्यवहार रहा तबतक आनेका मौका नहीं था। (ख) *'प्रेम उमगि'*—प्रेमका उमड़ना कहनेका भाव कि जब प्रेम उमड़ता है तब ज्ञान-वैराग्यादि सब डूब जाते हैं, यही आगे कहते हैं। *'प्रेम उमगि लोचन जल छाए'* कहनेका भाव कि नेत्रोंमें जो जल आ गया वह मोहसे नहीं, किंतु श्रीजानकीजीके प्रेमसे भर आया है, यथा—*'मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥'* (२। २८६) [जब कन्याएँ राजद्वारपर आयीं तब कन्याओंको दर्शन देनेके लिये प्रेम उमड़ा।]

टिप्पणी—२ (क) *'सीय बिलोकि धीरता भागी'* इति। पूर्व लिखा था कि *'सुनि धीरज परिहरै न केही'* यहाँ उसको चरितार्थ करते हैं कि *'सीय बिलोकि……'* अर्थात् जनक-ऐसे महानुभावको भी छोड़कर धीरज भाग गया। और लोगोंको तो धीरजने छोड़ा भर था—*'धीरज परिहरै न केही'*, पर जनकजीको छोड़कर 'भागा'। वहाँ *'परिहरै'* और यहाँ *'भागी'* कहनेका भाव यह है कि और लोग प्रेमी हैं और जनकजी सबसे अधिक प्रेमी हैं, इससे इनका धैर्य अधिक छूटा। [ये अति प्रीतिके कारण अति व्याकुल हो गये। (मा० म०) रा० प्र० कार लिखते हैं कि श्रीजानकीजीको देखकर वैराग्यकी धीरता भागी। भाव यह कि वैराग्य तो श्रीसीतारामजीकी प्राप्तिके हेतु किया जाता है सो उनके त्यागमें वैराग्य कैसे रहे?'] (ख) *'रहे कहावत परम बिरागी'* इति। भाव कि इस समय परम वैराग्य कुछ भी न देख पड़ा। *'धीरता भागी'* से पाया गया कि पूर्व धैर्य रहा है।

'रहे कहावत·····' का भाव कि ऐसा जान पड़ता है कि वैराग्यवान् तो थे ही नहीं, कहलाते भर थे। (ग) प्रथम धीरताका छूटना कहा, धीरजके छूटनेसे ज्ञान-वैराग्य छूट गये, यदि धैर्य न छूटता तो ज्ञान-वैराग्य भी न छूटते।

टिप्पणी—३ *'लीन्हि राय उर लाइ जानकी।·····'* इति। (क) प्रेम उमड़ा। प्रेमसे श्रीजानकीजीको हृदयमें लगा लिया। *'मिटी महा मरजाद ज्ञान की'* इति। ज्ञानकी महान् मर्यादा श्रीजनकजीतक थी। (अर्थात् श्रीजनकजी बड़े ज्ञानी विख्यात थे। इनके समान कोई भी ज्ञानी नहीं है। ये उसकी महान् मर्यादा थे) जब वे ही विलाप करने लगे, तब ज्ञानकी मर्यादा न रह गयी। भाव यह कि ज्ञानीके हृदयमें करुणा-विरह न होने चाहिये। ज्ञानकी मर्यादा यही है कि ज्ञानीमें विषयादि विकार न आवें, यदि वह विह्वल हो जाय तो फिर ज्ञान कहाँ रह गया? यही बात कह रहे हैं। पहले धीरज छूटा, उससे ज्ञान और वैराग्य भी न रह गये अर्थात् वे बहुत विह्वल हो गये, अज्ञानीकी तरह विलाप करने लगे। यही *'मिटी मरजाद'* का भाव है। यथा—*'सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञानु न धीरजु लाजा॥·····रोवहिं सोकसिंधु अवगाहीं'* (२। २७६) (ख) प्रेमसे ज्ञानकी 'मर्यादा मिटी' इससे ज्ञानकी शोभा कही, यथा—*'सोह न राम पेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिन जिमि जलजानू॥'* (२। २७७) *'जोगु कुजोगु ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥'* (२। २९१) प्रेमसे ज्ञान न रहा, इससे स्नेहकी बड़ाई की। यथा—*'जासु ज्ञान रबि भवनिसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥ तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सियराम सनेह बड़ाई॥'* (२। २७७) ऐसे महान् ज्ञानको भी स्नेहने डुबा दिया यह स्नेहकी बड़ाई है। ['मर्यादा' सीमा, मेंड़ हदको कहते हैं। महामर्यादा मिट गयी अर्थात् ज्ञानकी पक्की मेंड़ टूट गयी।]

नोट—१ रा० प्र० कार लिखते हैं कि ज्ञानकी महामर्यादा मिटी अर्थात् अभेदबुद्धिकी मर्यादा मिटी। अभेदबुद्धिकी मर्यादा तबतक है जबतक श्रीजानकी-रघुनाथजी हृदयमें न लगें। चित्रकूटमें भी श्रीजनकजीने इन्हें हृदयमें लगाया है। तब भी ऐसी ही दशा हो गयी थी, यथा—*'लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रानकी॥ उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहु पयागू॥ सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर रामपेम सिसु सोहा॥ चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥ मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥'* (२। २८६। ४—८)

बैजनाथजी लिखते हैं कि 'जनकजीने जानकीजीको हृदयमें लगा लिया। इस हेतुसे कि रूक्ष ब्रह्मानन्दसे हृदय रूखा था, अब राम-स्नेह-रससे हृदय भक्तिरसका गाहक हुआ सो जानकी आह्लादिनी पराशक्ति भक्तिरूपाको उरमें लगाकर बाहर-भीतर भक्तिपूर्ण किया, तब ज्ञानकी महामर्यादा जो विषयवारि रोकनेको पुष्ट मेंड़ थी सो मिटी, प्रेमप्रवाहमें बह गयी। वा बिना इनके रामरूप नहीं रह सकता, अतः इनको उरमें लगाकर रामरूप दृढ़ रखा, अथवा भक्तिरूप उरमें लगा ज्ञानको असार जान त्याग दिया।'

बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि ज्ञानकी बड़ी भारी मर्यादा है 'निष्ठुरता' अर्थात् किसीसे भी स्नेह न करना। श्रीसीतारामजीका प्रेम भी बड़ा भारी है, इसीसे उसने निष्ठुरतारूपी ज्ञानकी मर्यादाको मिटाकर अपने वश कर दिया। *'रहे कहावत परम बिरागी'* यह श्रीरामभक्तका ज्ञानी भक्तपर 'दंश' (कटाक्ष) है।

पंजाबीजी लिखते हैं कि 'यद्यपि राजा परम विरक्त और ज्ञानवान् थे तथापि सीताजी महामाया हैं, इससे उन्होंने राजाको अधीर कर दिया। यद्यपि ज्ञानियोंके चित्त दृढ़ हैं तथापि देवी भगवती महामाया बलात् उनको खींचकर मोहकी प्राप्ति कर देती है। यथा—**'ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥ बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।'** (सप्तशती १। ५५-५६) शोकका न होना ज्ञानकी मर्यादा है। शोकसे मर्यादा टूट गयी, जैसे आँधीके बलसे सुन्दर चक्षुवालेकी भी दृष्टि मलिन हो जाती है।'

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसर* जाने॥ ७॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकीं मँगाई॥ ८॥

* १६६१ वाली पोथीमें 'अ २ न १ वसर' है। जिससे न अवसरु पाठ हुआ। अन्य सभी पोथियोंमें अनवसरु है।

दो०—प्रेम बिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥ ३३८॥

शब्दार्थ—अनवसर=कुसमय, बेमौका। सिद्धिगणेश—शक्तिसहित गणेशजी। टीकाकारोंने प्राय: 'सिद्धिके देनेवाले गणेशजी' ऐसा अर्थ किया है। सिद्धि गणेशजीकी शक्ति है—मं० सो० १ भाग १ देखिये।

अर्थ—सब वयोवृद्ध चतुर बुद्धिमान् मन्त्री समझाते हैं। तब राजाने विचार किया और (विषादको) बेमौका जाना। (अर्थात् जाना कि इस समय विषाद करनेका अवसर नहीं है)॥ ७॥ बारम्बार पुत्रियोंको हृदयसे लगाकर, सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मँगाकर॥ ८॥ सब परिवार प्रेमके विशेष वश एवं प्रेमसे बेबस हैं यह जानकर और सुन्दर मुहूर्त समझकर सिद्धि-गणेशका स्मरण करके राजाने कन्याओंको पालकियोंपर चढ़ाया॥ ३३८॥

टिप्पणी—१ (क) '***समुझावत***' इति। अर्थात् जब राजाको शोकमें डूबे हुए विलाप करते देखा तब समझाने लगे। '***सब सचिव***'—भाव कि कन्याके बिदा होनेके समय मुनियों और पुरोहितोंको वहाँ आनेका कोई प्रयोजन नहीं रहता, इसीसे वहाँ कोई मुनि न थे, मन्त्री थे; अत: उन्होंने समझाया। मन्त्रियोंके समझानेसे स्पष्ट हो गया कि राजा अधीर होकर विलाप करने लगे थे। (राजा अत्यन्त विषादयुक्त थे, यह इससे स्पष्ट है कि सभी मन्त्रियोंके समझानेपर उनको चेत हुआ, एक-दो मन्त्री उनको समझानेमें समर्थ न हुए।) '***सयाने***' से जनाया कि जो वयोवृद्ध हैं, जनकजीसे उमरमें बड़े हैं तथा जिनका अधिकार है वे सब मन्त्री समझाते हैं। (ख) '***समुझावत*****'—समझाते हैं कि राजन्! अब धैर्य धारण कीजिये, यह विकल होनेका अवसर नहीं है। [आपकी व्याकुलता देखकर सारी प्रजा, परिवार, रनवास आदि सब अत्यन्त विकल हो जायँगे। आपके धीरज धरनेसे सबको धीरज बँधेगा। आप तो ज्ञानियोंके सिरताज हैं, ज्ञानीलोग अवश्य 'दंश' करेंगे, ताना मारेंगे, कटाक्ष करेंगे तथा लज्जित होंगे कि संसार ज्ञानियोंकी हँसी करेगा, यद्यपि आपको मोह नहीं, आप तो श्रीसीतारामजीके स्नेहमें मग्न हैं जिसके बिना ज्ञान व्यर्थ है।] यह सुनकर राजाने विचार किया और समझ गये कि यह शोकका अवसर नहीं है। (लग्न बीती जा रही है। दूसरे, महाराजकी विदाई करना है, हमारे धीरज न धरनेसे सब काम बिगड़ जायगा। इत्यादि।)

टिप्पणी—२ '***बारहिं बार सुता उर लाई*****' इति। (क) '***सुता उर लाई***'—श्रीजानकीजीको हृदयसे लगा चुके, यथा—'***लीन्हि राय उर लाइ जानकी***' अब श्रीमाण्डवीजी और श्रीउर्मिलाजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजीको हृदयमें लगाया। '***सुता***' से इन तीनोंको जनाया। तीनोंको बारम्बार हृदयमें लगानेसे सूचित हुआ कि ये तीनों श्रीजानकीजीसे अधिक प्रिय हैं तभी तो इनको बार-बार हृदयसे लगाया और जानकीजीको एक ही बार। भाईकी लड़कीको अपनी लड़कीसे अधिक 'प्रिय' (प्यार) करना चाहिये, इसीसे उनको अधिक प्यार किया। (ख) श्रीजानकीजीको प्रथम हृदयसे लगाया। इससे पाया गया कि सब कन्याओंको क्रमसे मिले। (ग) '***सजि सुंदर पालकीं***' —पालकी एक तो बनावमें प्रथमसे ही सुन्दर है, उसपर भी सुन्दरता साजी गयी है, सुन्दर ओहार पड़े हैं, दिव्य कोमल बिछौने बिछे हैं, मसनद, तकिया, शृङ्गारदान, पीकदान आदि प्रयोजनकी सब वस्तुएँ उसमें ठीक-सी सजी हुई रखी हैं।

टिप्पणी—३ '***प्रेम बिबस परिवारु सबु*****' इति। सबका प्रेमविवश होना पूर्व कह चुके हैं, यथा—'***प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु॥***' (३३७) '***नर नारि***' कहनेसे सबका ग्रहण हो गया, अब यहाँ उनसे पृथक् परिवारका प्रेमविवश होना कहनेका भाव यह है कि इस समय परिवारका ही काम था, परिवारवालोंको उचित था कि कन्याको पालकीमें चढ़ाते, सो वे सब प्रेमके विशेष वश हैं, किसीको इसकी खबर नहीं है, होश नहीं है और रानियाँ महलके भीतर रह गयीं, बाहर आ न सकीं, तब कन्याओंको पालकीमें कौन चढ़ावे और इधर सुन्दर मुहूर्त भी बीता जा रहा है, यह सब सोचकर जनकजीने स्वयं सबको पालकियोंमें चढ़ाया। ('राजाने पालकीमें चढ़ाया' कहनेका भाव

कि कन्याको परिवारके लोग पालकीमें चढ़ाते हैं, पिता नहीं चढ़ाता। पर यहाँ उपर्युक्त कारणवश पिताको ही यह कठोर काम करना पड़ा।)

मानसमयङ्क—भक्ति दो प्रकारकी है—ऐश्वर्यमय, माधुर्यमय। ऐश्वर्यमय भक्तिवालेको ज्ञान अधिक रहता है, प्रेम गौण रहता है। उसे प्रभुकी माधुर्य-लीलामें भी ऐश्वर्यका ज्ञान रहनेसे उसमें अश्रुपातादि दशाएँ कम होती हैं। माधुर्यमय भक्त प्रेमकी दशाओंमें सराबोर रहता है, उसे ऐश्वर्य भूला रहता है, इससे उसे धैर्य नहीं रहता। 'दशरथजी और सुनयनाजी दोनों पराभक्तिमें मग्न हैं। राजा जनक और कौसल्याजी पर-विज्ञानमें मग्न हैं। वहाँ वनगमनके समय कौसल्या पर-विज्ञान धारण किये थीं, अतएव धीरज बना रहा, परंतु महाराज दशरथ प्रेममें मग्न थे, अतएव धैर्यरहित हो गये। यहाँ जानकीजीकी बिदाईके समय श्रीसुनयनाजी परमप्रेममें मग्न हो गयी थीं और राजा जनक पर-विज्ञानके अवलम्बसे धीरज धारण किये थे, इसी कारण जानकीजीको राजाहीने पालकीपर चढ़ाया। माताको सुधि नहीं थी'।

नोट—*'जानि सुलगन'* इति। मुनियों, ज्योतिषियोंकी बतायी हुई शुभ लग्न। 'पौष शुक्ल दशमी, सोमवार, रेवती नक्षत्र, दाहिने चन्द्रमा, मीन लग्न, उसके स्वामी गुरु पंचम स्थानमें, रवि और भौम दशम स्थानमें, लग्नमें चन्द्र श्रीजानकीजीके तृतीय स्थानमें इति शुभ लग्न वार इष्टपर जानकर।'' (वै०)

श्रीजनक ऐसे महान् ज्ञानी भी मूहूर्तादिका विचार करते थे। हम लोगोंको इससे उपदेश लेना चाहिये।

बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारि-धरम कुलरीति सिखाई॥ १॥
दासी दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥ २॥
सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगलरासी॥ ३॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥ ४॥

अर्थ—राजाने पुत्रियोंको बहुत प्रकारसे समझाया, स्त्रियोंके धर्म और कुलकी रीति सिखायी॥ १॥ बहुत-से दासी और दास दिये जो श्रीसीताजीके प्रिय और पवित्र सच्चे विश्वासपात्र सेवक थे॥ २॥ श्रीसीताजीके चलते समय पुरवासी व्याकुल हो गये। मङ्गलकी राशि शुभ शकुन हो रहे हैं॥ ३॥ ब्राह्मणों, मन्त्रियों और समाजसहित राजा साथ-साथ पहुँचाने चले॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'बहु बिधि भूप सुता समुझाई'''''* इति। (क) समझानेका कारण यह है कि सब कन्याएँ पिताको देखकर प्रेमके वश व्याकुल हैं, इसीसे उनको समझाना पड़ा। *'बहु बिधि'*—यह कि हम तुमको बहुत शीघ्र ले आयेंगे, तुम्हारे प्रिय दास-दासी सब तुम्हारे साथ जा रहे हैं, वहाँ तुमको बहुत सुखसे सब रखेंगे इत्यादि। [तुम चार बहिनें साथ-साथ हो, साथमें तुम्हें वियोगका दुःख न रहेगा, कन्याएँ ससुरालमें पतिके घरमें रहती ही हैं; वही उनका घर है। तुम चक्रवर्ती महाराजकी बहू हो, वहाँ तुम्हें सब प्रकारका सुख मिलेगा। तुम्हारे भाई तुम्हें जब-तब देखने जाया करेंगे। (प्र० सं०) वहाँके सब लोग बड़े ही शीलवान् (सुशील) हैं, तुमको कोई कष्ट न होगा। (वै०)] व्याकुलता दूर करनेके लिये बहुत प्रकार समझाना पड़ा। समझानेसे व्याकुलता निवृत्त हुई तब 'नारिधर्म' और 'कुलरीति' की शिक्षा दी, क्योंकि व्याकुलतामें सिखावन नहीं लगता। (ख) 'नारिधर्म', यथा—*'नारि धरम पतिदेव न दूजा'।* अर्थात् पातिव्रत्यका उपदेश दिया। जैसा अनुसूयाजीने बखानकर कहा है॥ (३। ५ में देखिये १। ३३४। ६) *'नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी'* भी देखिये। *'एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥'* (३। ५। १०) श्रीसीताजी बहुत बुद्धिमती हैं, सब जानती हैं। फिर श्रीजनकजी यह भी जानते हैं कि ये श्रीरामजीकी परम शक्ति हैं। उनको समझाना कैसा? पर ये सिखावन माधुर्यमें है। माता-पिताका धर्म है कि वे कन्याको उसका धर्म सिखावें। लोकशिक्षार्थ भी सिखावन है। ऐसा करके जनाते हैं कि 'स्त्रियोंके धर्म' और 'कुलरीति' दोनों ही कन्याको अवश्य सिखाने चाहिये। इसीलिये जनकजीका भी यहाँ माधुर्यमें सिखाना लिखा गया। नारिधर्म मुख्य है, इसीसे उसको प्रथम सिखाया तब कुलरीति सिखायी—(यह क्रमका भाव है।)

नोट—१ बाबा हरिदासजी नारिधर्मका सिखाना और भी इस प्रकार लिखते हैं कि—''देखो, नारिधर्म पुरुषधर्मसे श्रेष्ठ है। पुरुष धर्मपर टिकनेसे स्वयं ही तरता है पर स्त्री अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक रत रहनेसे दोनों कुलोंको तार देती है और लोक-परलोक दोनोंमें उसका यश होता है। पुरुष यदि अधर्मरत हुआ तो लोकमें निन्दित होता है और यदि स्त्री अधर्ममें रत हुई तो उसके दोनों कुलोंकी निन्दा लोकमें होती है। पुनः, देखो कि एक राजाके बहुत रानियाँ होती हैं, पर एक रानीका तो एक ही राजा है, उसीमें वह मन-तन-वचनसे लगकर सती हो स्वर्गको जाती है, पुरुष पत्नीके लिये नहीं जल जाता, इस तरह भी नारिधर्म श्रेष्ठ है। पुनः, हे पुत्रि! पातिव्रत्य सब धर्मोंका शिरमौर है, क्योंकि इससे भगवान् वशमें हो जाते हैं। वृन्दाकी कथा जानती हो, वह पातिव्रत्यके बलसे तुलसी होकर भगवान्‌के संग रहती है, उनपर चढ़ायी जाती है। पुनः उत्तम पतिव्रता वह है जो पतिके मनकी जानकर उसकी आज्ञाका पालन करे और अनन्यभावसे उसमें प्रीति करे।''

नोट—२ '*कुलरीति*' इति। अर्थात् जैसी माता-पिताकी कुलकी सनातन रीति देखी है उसी मार्गपर चलना धर्म है। (शीलावृत्ति) अथवा समता, सुशीलता, क्षमा, उदारता, दीनोंको दान और गुरुजनोंका मान इत्यादि। (वै०) अथवा कुलरीति अर्थात् 'कुलवधूधर्म' यथा—'**अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्यापचर्या स्वयम्। सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः॥**' (वि० टी०) अर्थात् गृहस्वामीके आगमनपर उठ खड़ी हो जाना, उनसे नम्रतापूर्वक भाषण करना, उनके चरणोंपर सदा दृष्टि रखना, उनको आसन देना, स्वयं उनकी सेवा करना, उनके सोनेपर सोना और पहले ही उठना, प्राचीन शास्त्रोंमें कुलवधूकी दिनचर्याका प्रतिपादन इस प्रकार किया है।

टिप्पणी—२ '*दासी दास दिए*………' इति। (क) भीतरकी सेवाके लिये दासियाँ और बाहरकी सेवा करनेके लिये दास दिये। '*बहुतेरे*' बहुत-से दिये, क्योंकि श्रीसीताजीका ऐश्वर्य बड़ा भारी है, बहुत काम है, थोड़े दास-दासियोंसे होने योग्य नहीं है। '*सुचि सेवक*' अर्थात् जो सेवा करनेमें निश्छल हैं, काम नहीं बिगाड़ते, चोरी नहीं करते, घूस नहीं लेते, स्वामीका काम अपना ही काम जानते हैं, विश्वासपात्र हैं—यह सेवकका धर्म है। '*जे प्रिय सिय केरे*'—यह स्वामीका धर्म है कि सेवकको प्यार करे। (ख)—यहाँ प्रथम-प्रथम श्रीसीताजीकी दासी-दासोंका देना कहकर जनाया कि इसी प्रकार श्रीमाण्डवीजी, श्रीउर्मिलाजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजीको दिये गये। '*सुचि सेवक*' कहकर '*जे प्रिय*' कहनेका भाव कि 'शुचि' होनेसे ही वे प्रिय हैं।

टिप्पणी—३ '*सीय चलत ब्याकुल पुरबासी।*…' इति। (क) पुरवासियोंकी व्याकुलता कहनेका भाव यह है कि जब '*पुर*' से जानकीजी चलीं तब पुरवासी व्याकुल हुए। मङ्गल-समय जानकर गोस्वामीजी किसीका रुदन करना, विलाप करना नहीं लिखते; किंतु केवल प्रेमके विशेष वश होना, व्याकुल होना कहते हैं। मङ्गलसमयमें रोना अमङ्गल है, यथा—'*मंगल जानि नयन जल रोकहिं।*' [जानकीमंगलमें भी कहा है—'*सिय चलत पुरजन नारि हय गय बिहग मृग ब्याकुल भए॥*' (१७५)] '*सीय चलत*' का भाव कि जनकजीने जबतक पुत्रियोंको पालकियोंमें बैठाया, नारिधर्म सिखाया, तबतक पालकी उठायी नहीं गयी, राजद्वारपर ही रही। जब कहार पालकीको ले चले तब '*सीय चलत*' कहा। (ख) '*होहिं सगुन सुभ मंगल रासी*' इति। '*होहिं*' कहनेका भाव कि पुरवासी तो सभी व्याकुल हैं। विदाईके समय मङ्गल वस्तु, मङ्गल कलश आदि लेकर खड़े होना चाहिये था, पुष्पोंकी वृष्टि करनी थी, इत्यादि। व्याकुलताके कारण पुरवासी यह कुछ न कर सके। शकुन और मङ्गल पूर्व कह चुके हैं—'*तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥* (१।२९६)……' तथा '*होहिं सगुन सुंदर सुभदाता। चारा चाषु बाम दिसि लेई॥* ……' (१।३०३) देखिये।—ये सब मङ्गल शकुन आप ही होने लगे।

टिप्पणी—४ '*भूसुर सचिव समेत समाजा।*……' इति। (क) जब विश्वामित्रजी आये थे तब '*संग*

सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति। चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ येहि भाँति॥' (२१४) जैसे मिलने और उनका स्वागत करने गये थे, वैसे ही अब बिदा होनेपर उन्हें पहुँचाने चले। पहुँचानेमें किसीका नाम नहीं लेते कि किसको पहुँचाने चले। केवल *'संग चले'* कहते हैं क्योंकि सभीको पहुँचाने जा रहे हैं—कन्याओंको, राजाको, बारातको, विश्वामित्र-वसिष्ठादि मुनियोंको, राजकुमारोंको इत्यादि सबको पहुँचाने चले। जैसे राजाकी अगवानी की थी, यथा—*'सतानंद अरु बिप्र सचिवगन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥ सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥'* (३०९। ५-६) (वैसे ही आदरपूर्वक पहुँचाने चले।) 'समाज' से भाई, बन्धुवर्ग, ज्ञातिवर्ग इत्यादिका साथ होना जनाया। (ख) जब विश्वामित्रजीको लेने गये थे तब *'मुदित'* कहा था पर यहाँ मुदित होना नहीं कहते। कारण कि राजा पालकीके सङ्ग चले जिसमें लड़कियाँ व्याकुल न हों। इसीसे मुदित होना नहीं कहते।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥ ५॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥ ६॥
चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥ ७॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भये नाना॥ ८॥

दोहा—सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥ ३३९॥

अर्थ—समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियोंने रथ, हाथी और घोड़े सजाये॥ ५॥ राजा दशरथजीने सब ब्राह्मणोंको बुला लिया और उनको दान-मानसे परिपूर्ण कर दिया॥ ६॥ राजाने उनके चरण-कमलोंकी रजको सिरपर धर और आज्ञा पाकर आनन्दित हो गणेशजीका स्मरणकर प्रस्थान किया। (उस समय) अनेकों मङ्गल शकुन हुए॥ ७-८॥ देवता प्रसन्न होकर फूल बरसा रहे हैं। अप्सराएँ गा रही हैं। अवधपुरीके राजा श्रीदशरथ महाराज अवधपुरीको डंका बजाकर आनन्दपूर्वक चले॥ ३३९॥

टिप्पणी—१ (क) *'समय बिलोकि बाजने बाजे'* इति। अर्थात् बजनियोंको जब मालूम हुआ कि बहुओंकी पालकियाँ आ रही हैं, बाजा बजानेका समय है, पुरवासी विकल हैं, इससे उधर बाजे नहीं बजे, अतः समय देखकर बाजेवालोंका बाजा बजाना कहा। (ख) *'रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे'* इति। बाजोंका बजना सुनकर बाराती जान गये कि बारातके प्रस्थानका समय आ गया। अतएव वे चलनेकी तैयारी करने लगे। अभी चले नहीं, क्योंकि अभी राजा चले नहीं हैं, जब वे चलेंगे तब बारात साथ चलेगी। (ग) *'दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे'* इति। पूर्व गो-दान करनेके लिये गुरुद्वारा ब्राह्मणोंको बुलवाया था और इस समय स्वयं बुला लिया। इससे जनाया कि यह साधारण दान है, गो-दान नहीं है, गो-दानमें बहुत विचार करना पड़ता है, इसीसे उसमें गुरुसे गो-दानके अधिकारी ब्राह्मणोंको बुलवाया था। साधारण दानमें विशेष विचार नहीं होता। (घ) *'दान मान परिपूरन कीन्हे'* इति।—अर्थात् बहुत दान दिया और बहुत सम्मान किया, क्योंकि ब्राह्मण दान-सम्मानके अधिकारी हैं। यहाँ दानका नाम न देकर जनाया कि अनेक प्रकारके दान दिये। और मानसे पूर्ण किया, अर्थात् सबको दण्डवत् प्रणामकर प्रेमपूर्वक पूजा की, उत्तम आसन बैठनेको दिये, जैसा गो-दानके समय किया था, यथा—*'दंड प्रनाम सबहिं नृप कीन्हें। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हें॥'* (३३१। १) *'परिपूरन कीन्हे'*—भाव कि प्रथम तो गो-दान ही किया था, अब और भी सब वस्तुओंका दान दिया और बहुत दिया; अब ब्राह्मणोंको किसी बातकी कमी नहीं रह गयी। पुनः भाव कि जैसी शास्त्रमें दानकी विधि है वैसा ही परिपूर्ण किया, खण्डित नहीं किया। [पुनः भाव कि जो दानके अधिकारी थे, उन्हें दान देकर परिपूर्ण किया और जो सम्मानके योग्य थे उनको सम्मानसे परिपूर्ण किया। अथवा, मानसहित दानसे परिपूर्ण किया। (रा० प्र०) पुनः भाव कि

सबको दान दिया और सबका सम्मान किया। दानके पीछे 'मान' को कहा, क्योंकि दानके पीछे विनय की जाती है वह किया। दान बिना मानका व्यर्थ होता है।]

टिप्पणी—२ '*चरन सरोज धूरि धरि सीसा।*......' इति। (क) ब्राह्मणोंके चरणोंमें राजाका बहुत बड़ा भाव है। उन्होंने बड़े भावसे दान दिया, सम्मान किया और चरणरजको सिरपर धारण किया, इसीसे चरणोंको सरोज विशेषण देकर उनका महत्त्व दिखाया। पुनः भाव कि सरोजमें लक्ष्मीका वास है और चरणकी रजमें लक्ष्मीका वास है। अतः सरोज विशेषण दिया। ब्राह्मणोंको धन दिया और उनके चरणरजको मस्तकपर धरकर विभवको वशमें किया। (ख) '*मुदित महीपति*' देहली-दीपक है, चरणरजको शिरोधार्य करके मुदित हुए और आशीर्वाद पाकर मुदित हुए। '*मुदित महीपति*' का भाव कि जैसे महीपति होनेसे मुदित हैं वैसे ही ब्राह्मणोंका आशीर्वाद पानेसे '*मुदित*' हैं, क्योंकि ब्राह्मणोंका आशीर्वाद अमोघ है और वाञ्छित फलका दाता है। (ग) '*सुमिरि गजाननु*' इति। कोई नाम ऐश्वर्यवाचक होते हैं, जैसे 'गणेश' कोई गुणवाचक होते हैं जैसे '*कृपासिंधु*' और कोई मूर्तिवाचक होते हैं। '*गजानन*' मूर्तिवाचक नाम है। '*सुमिरि गजाननु*' कहनेका भाव कि गणेशजीकी मूर्तिका ध्यान करके उनका स्मरण किया। गणेशजी मङ्गलके दाता हैं—'***मोदक प्रिय मुद मंगल दाता***' (विनय० १); इसीसे उनके स्मरणके पश्चात् मङ्गलके मूल शकुनोंका होना कहा। मङ्गलका होना आगे कहते हैं—'*सुर प्रसून*.....'।

टिप्पणी—३ '*सुर प्रसून*.....' इति। राजाको अनायास मङ्गल हुए—देवताओंने फूल बरसाये, अप्सराओंने गान किया। फूलका बरसाना मङ्गल है, यथा—'***बरषहिं सुमन सुमंगल दाता।***' गान और नगाड़ोंका बजना यह सब शकुन है। यथा—'**भेरीमृदङ्गमृदुमर्दलशङ्खवीणावेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः**'। यात्राके समय जनकपुरमें बाजे बजने तथा गान होना चाहिये था, पर वह न हो सका, क्योंकि सब व्याकुल थे, इसीसे यह काम देवताओं और अप्सराओंने किया, बारातमें बाजे बजे। (ख) '***चले अवधपति अवधपुर मुदित***......' इति। अवधपति हैं, इसीसे अयोध्याजीके लिये प्रस्थान करनेसे हर्षित हुए, क्योंकि बहुत दिनसे अयोध्याजी छूटी हुई थीं। '***चले मुदित***'—जैसे और सब शकुन हुए, वैसे ही मनका मुदित होना भी शकुन है। [चारों पुत्रोंका विवाह कराके पुत्रवधुओं और पुत्रोंसहित श्रीअयोध्याजीको जा रहे हैं यह भी कारण 'मुदित होने' का है।]

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥ १॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥ २॥
बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥ ३॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं॥ ४॥
पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि* आए॥ ५॥

अर्थ—राजा दशरथजीने विनती करके 'महाजनों' को लौटाया। आदरसहित मँगताओंको बुलाया॥ १॥ सबको भूषण, वस्त्र, घोड़े और हाथी दिये और प्रेमसे संतुष्ट करके सबको खड़ा किया॥ २॥ वे सब बारम्बार विरदावली-(रघुवंशके राजाओं तथा श्रीदशरथजी महाराजके उदारता आदि गुणोंकी प्रशंसा-) का वर्णन कर-करके और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर लौटे॥ ३॥ श्रीदशरथजी बारम्बार कहते हैं पर श्रीजनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते॥ ४॥ राजा पुनः सुन्दर वचन बोले—हे राजन्! बहुत दूर निकल आये, (अब) लौटिये॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) '***नृप करि बिनय महाजन फेरे।***' इति। यहाँ '*महाजन*' से ब्राह्मण अभिप्रेत हैं। (पाँड़ेजीने भी '*ब्राह्मण*' अर्थ लिखा है।) जिन ब्राह्मणोंको दान दिया था वे ही प्रेमसे साथ हो लिये, उन्हींको राजाने लौटाया। ब्राह्मणोंको '*महाजन*' कहनेका भाव यह है कि राजाने ब्राह्मणोंको महान् पुरुष समझकर लौटाया कि इनका विदा करनेके लिये साथ चलना अनुचित है। यदि '*महाजन*' द्रव्यवाले (धनाढ्य) लोग होते तो

* बड़—१६६१।

राजा उनकी विनती न करते। यथा—*'बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥'* (२८७। ३) (मा० पी० प्र० सं० में हमने *'महाजन'* से 'ब्राह्मण, मन्त्री, रईस आदि प्रतिष्ठित लोग' जो पहुँचाने आये थे, यह अर्थ लिया था। हमारी समझमें जो साथमें प्रतिष्ठित लोग गये थे उन्हींका लौटना यहाँ कहा गया। इसीसे आगे राजाके साथ इनका लौटना नहीं कहा गया। यथा—*'फिरे महीस आसिषा पाई।'* (३४३। ६) परंतु जिन ब्राह्मणोंको दान दिया था उनका भी लौटना पूर्व नहीं लिखा गया, इससे उनका भी लौटाना दरसानेके लिये यहाँ *'महाजन'* शब्द दिया गया हो, यह संभव है। इसमें दोनों आ जाते हैं।) (ख) *'सादर सकल मागने टेरे'* इति। *'सादर'* का भाव कि मँगतालोग बिना आदरके ही आते हैं, पर दशरथजी महाराजने उनको आदरसहित बुलाया। भाव यह कि जिनका आदर कोई भी नहीं करता, उनका भी आदर किया। *'सकल'*—सबको बुलानेका भाव कि जिसमें किसीको दुःख न हो कि राजाने हमको नहीं बुलाया, हमें कुछ न दिया। इसी तरह जब दान देनेको हुए थे तब सब ब्राह्मणोंको बुलाया था, यथा—*'दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे।'* (३३९। ६) [(ग) पाँड़ेजी 'टेर' का भाव यह कहते हैं कि जनकपुरके मँगता भी ऐसे हैं कि बुलानेसे आये। (मुं० रोशनलाल)

टिप्पणी—२ *'भूषन बसन बाजि गज दीन्हे।......'* इति। (क) भूषण-वस्त्र पहनने और घोड़ा-हाथी चढ़नेको दिये। बिना भूषण-वस्त्र पहने हाथी-घोड़ेपर चढ़नेसे शोभा नहीं होती। इसी तरह भूषण-वस्त्र पहने पैदल चलनेमें शोभा नहीं, इसीसे दोनों दिये। (ख) *'प्रेम पोषि'* अर्थात् प्रेमसे संतुष्ट किया। ब्राह्मणोंको दान-मानसे परिपूर्ण किया और याचकोंको प्रेमसे पुष्ट किया; क्योंकि ब्राह्मण सम्मानपूर्वक और याचक प्रेमसे देनेपर संतुष्ट होते हैं। (ग) *'ठाढ़े सब कीन्हे'* इति। भाव कि सब याचक प्रेमसे संगमें चले आते हैं, इसीसे सबको खड़ा किया (कि बस अब आगे न चलो)। ब्राह्मणोंको विनती करके लौटाया और याचकोंको मुखसे प्रेमके वचन कहकर खड़े किये। जब ब्राह्मणोंको दान दिया, तब वे साथ चले थे, इससे उनको लौटाया, जब याचकोंको दिया तब वे भी साथ चले, इससे उनको रोका। [पुनः भाव कि उदारताके साथ-साथ इतना अधिक प्रेम दरसाया कि याचकोंके सुखकी मात्रा बहुत बढ़ गयी। वे अनुरागसे पुष्ट हो गये। (प्र० सं०) पुनः, प्रेमसे पुष्ट करके सबको सम्पन्न अर्थात् बलयुक्त कर दिया। (मानसाङ्क)]

टिप्पणी—३ (क) *'बार बार बिरिदावलि भाषी'*—भाव कि राजाके प्रेमसे संतुष्ट हुए हैं, इसीसे बार-बार वंशकी प्रशंसा सुनाते हैं, यथा—*'बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं'*। *'रामहि उर राखी'* इति। *'निरखि राम सोभा उर धरहू।'*—यह वचन कई जगह चरितार्थ हुआ है, यथा—*'मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह सिथिल सब रानी॥'*, तथा यहाँ *'फिरे सकल रामहि उर राखी'*। (*'चले सकल रामहि उर राखी'* से जनाया कि ये याचक धनके लोभी न थे। प० प० प्र०) (ख) *'कोसलपति'* का भाव कि जो जैसा बड़ा होता है वह वैसा ही शीलवान् होता है। इसीसे *'बहुरि बहुरि'* पुनः-पुनः कहते हैं, उनसे राजा जनककी तकलीफ (कष्ट) सही नहीं जाती। राजा जनक पालकियोंके साथ राजमहलसे पैदल चले और इधर जनवासेसे चक्रवर्ती महाराजकी सवारी आयी। बीचमें दोनोंकी भेंट हुई। जहाँ भेंट हुई, वहींसे महाराज जनकजीको लौटाने लगे। यदि जनवासेमें भेंट होती तो वहींसे लौटाते, इतनी दूरतक आनेका परिश्रम न करने देते। (ग) *'जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं'* —भाव कि राजाके वचन मानकर वे अवश्य लौटते पर प्रेमके वश नहीं फिरते। *'फिरैं न चहहीं'* का भाव कि वे चक्रवर्ती महाराजको प्रसन्न करनेके लिये इतनी दूर नहीं आये किंतु प्रेमवश चले जा रहे हैं, फिरनेकी चाह किंचित् नहीं है। (घ) *'बचन सुहाए'* इति। *'फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए'* ये वचन दयामय, कृतज्ञतामय हैं, इसीसे इन्हें *'सुहाए'* कहा। दशरथजी महाराजके हृदयमें दया आयी, इतनी दूर आनेका बोझा (एहसान, कृतज्ञता) अपने ऊपर मानते हैं, उनका परिश्रम न सह सके।

राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥ ६॥
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधा जनु बोरी॥ ७॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥ ८॥

दो०—कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदय समाति॥ ३४०॥

अर्थ—फिर उतरकर खड़े हो गये, दोनों नेत्रोंमें प्रेम-प्रवाहकी बाढ़ आ गयी॥ ६॥ तब विदेहजी हाथ जोड़कर मानो स्नेहरूपी अमृतमें डुबाकर वचन बोले॥ ७॥ मैं किस प्रकार बनाकर विनती करूँ! हे महाराज! आपने मुझे बड़ाई दी है॥ ८॥ कोसलपति श्रीदशरथजीने अपने स्वजन समधीका सब प्रकार सम्मान किया। वह अत्यन्त मिलन और अत्यन्त विनय परस्परका है,अत्यन्त प्रीति हृदयमें नहीं समाती॥ ३४०॥

टिप्पणी—१ *'राउ बहोरि उतरि……'*—अर्थात् जब बार-बार कहनेसे भी न लौटे तब सवारीसे उतरकर खड़े हो गये (भाव यह कि हम अब आगे न जायँगे, जबतक आप न लौटेंगे)। *'जनक प्रेम बस फिरै न चहहीं'* श्रीजनकजीका यह प्रेम देखकर श्रीदशरथजी महाराजके हृदयमें प्रेम उमड़ आया। दोनों नेत्रोंमें प्रेमका प्रवाह चला, इसीसे प्रवाहका बढ़ना कहा, प्रवाहका बहना न कहा। श्रीदशरथजीका तन-मन-वचन तीनोंसे प्रेम दिखाया। *'पुनि कह भूपति बचन सुहाए'* यह वचन, *'उतरि भये ठाढ़े'* यह तन और *'प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े'* यह मनका प्रेम है।

टिप्पणी—२ (क) *'तब बिदेह बोले कर जोरी।……'* इति। *'तब'* अर्थात् जब दशरथजी सवारीसे उतर पड़े तब बोले। सवारीपर चढ़े चलनेमें विनयका मौका न देखा, इससे विनय न की। (अथवा, विनय तो विदा होते समय की जाती है। अब राजा नहीं मानेंगे, अवश्य लौटना पड़ेगा, अतः अब विनय की।) *'बिदेह'* शब्द देनेका भाव कि प्रेममें इस समय शरीरकी सुध नहीं है। यहाँ राजा जनकजीकी श्रीदशरथजीमें तन-मन-वचनसे भक्ति दिखाते हैं। श्रीदशरथजीने तन-मन-वचनसे उनका सम्मान किया, इसीसे इन्होंने भी तन-मन-वचनसे उनकी भक्ति की। तनसे हाथ जोड़े, मनसे प्रेम किया और वचनसे मधुर बोले। (ख) *'करौं कवन बिधि बिनय बनाई'*—अर्थात् आपके गुण अनन्त हैं, मैं किस प्रकार कहूँ। यथा—*'दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥ जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।……'* (२। २०९) [यह भरद्वाजजीका वाक्य है। पुनः भाव कि विधि-हरि-हर आदि आपके गुणोंकी गाथा वर्णन किया करते हैं, मैं मनुष्य हूँ, मैं किन शब्दोंमें आपकी विनती करूँ, आपकी बड़ाई कौन कर सकता है, यथा—*'बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुन गाथा॥ कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु। राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥'* (२। १७३)—ये वसिष्ठजीके वचन हैं। *'बनाई'*=पूर्णरूपेण, भलीभाँति, उत्तम रीतिसे। अर्थात कितनी ही और कैसे भी शब्दोंमें मैं विनय क्यों न करूँ, वह सब अत्यन्त लघु ही होगी] (ग)—*'महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई'* इति। भाव कि आप बड़े हैं, इसीसे आपने मुझे बड़ाई दी। *'बड़ाई'* यथा—*'संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।'* (३२६) (आपने हमारे साथ सम्बन्ध किया, यह बड़ाई आपने हमें दी।) *'मोहि'* कहकर अपनेको छोटा जनाया।

टिप्पणी—३ *'कोसलपति समधी सजन……'* इति। (क) कोसलके पति हैं, अर्थात् बड़े हैं, इसीसे उन्होंने समधीका सम्मान किया। जो बड़ा है वही दूसरेका सम्मान करता है, इसीसे श्रीजनकजीका सम्मान करनेसे बड़ाईसूचक *'कोसलपति'* शब्द दिया। यथा—*'पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किये।'* (छं० ३२६) (ख) राजा जनक महाराज दशरथजीकी 'अति विनय' करते हैं और चक्रवर्ती महाराज अत्यन्त मिलते हैं। यह मिलन और विनय परस्पर है।

बैजनाथजी—परस्पर मिलाप और मुखसे विनती जो की गयी, उससे जो प्रीति दोनोंमें बढ़ी, वह उनके हृदयमें नहीं समाती। अश्रु-रोमाञ्चादिद्वारा प्रकट हो रही है। (रा० प्र०)

मुनिमंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥ १॥
सादर पुनि भेटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता॥ २॥
जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥ ३॥

अर्थ—राजा जनकने मुनिसमाजको प्रणाम किया और सभीसे आशीर्वाद पाया॥ १॥ फिर आदरपूर्वक रूप, शील और गुणोंके निधान सब भाइयों (अपने) दामादोंसे गले लगकर मिले॥ २॥ सुन्दर करकमलोंको जोड़कर मानो प्रेमसे उत्पन्न किये हुए वचन बोले॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'मुनिमंडलिहि जनक सिरु नावा'* इति। राजासे मिलकर मुनिमण्डलीको प्रणाम किया। इससे जनाया कि मुनियोंकी मण्डली राजाके साथ है। राजा साधु ब्राह्मणोंको सदा साथमें रखते हैं। यथा—*'गुरहि पूछि करि कुलबिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥'* (३१३। ८) *'साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा॥'* (३१५। ५) [बारातमें सब साथ आये हैं, ये सब बाराती हैं, इसीसे साथ हैं। यथा—*'तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा॥'* (३००। ४)] मण्डलको सिर नवानेका भाव कि राजाके पयानका समय है, बारात चल रही है, सब मुनियोंको पृथक्-पृथक् प्रणाम करनेसे विलम्ब हो जायगा, इसीसे समाजभरको एक साथ सिर नवाकर प्रणाम किया। (ख) *'आसिरबादु पावा'* इति। मुनिलोग प्रायः किसीको आसिष वा शाप नहीं देते। मुनियोंका आशीर्वाद दुर्लभ है, इसीसे *'पावा'* कहा। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है यथा—*'पाइ असीस महीसु अनंदा।'* (३३०। ५) *मुदित महीपति पाइ असीसा।'* (३३९। ७)

टिप्पणी—२ (क) *'सादर पुनि भेटे जामाता'* इति। *'सादर'*—अर्थात् सबको पृथक्-पृथक् हृदयमें लगा-लगाकर। *'पुनि'* अर्थात् प्रथम उनके पितासे मिले, क्योंकि वे सबसे बड़े हैं, फिर मुनिसमाजको प्रणाम किया, तत्पश्चात् चारों दामादोंसे मिले। (यह जनाया कि इसी क्रमसे बारात चल रही है।) *'रूप सील गुन निधि सब भ्राता'* कहकर सूचित किया कि चारों भाइयोंके रूप, शील और गुण देखकर जनकजी मग्न हो गये। (ख) [श्रीसुनयनाकृत स्तुतिके अन्तमें *'प्रेम पंक जनु गिरा समानी'* कहा है। यहाँ श्रीजनकजीकृत स्तुतिका प्रारम्भ *'जोरि पंकरुह पानि सुहाए'* से करके जनाया कि दोनों एकरूप हैं, कारण कि दोनों स्तुतियोंकी फलश्रुति *'जननि जनक सियराम प्रेमके'* एक-सी है। भाव यह कि जिस प्रेमपङ्कमें सुनयनाजीकी *'गिरा समानी'* उसी प्रेमपङ्कसे इस स्तुतिकी उत्पत्ति है—*'बोले बचन प्रेम जनु जाए'*। (प० प० प्र०)] (ग) *'बोले बचन प्रेम जनु जाए'* इति। श्रीदशरथजीसे विनय करनेमें *'बचन सनेह सुधा जनु बोरी'* कहा और श्रीरामजीसे विनय करनेमें वचनोंको *'प्रेम जनु जाए'* कहते हैं। भेद साभिप्राय है। राजासे मधुर वाणीसे बोलना चाहिये, यह नीति है। अतः वचनकी मधुरता दिखानेके लिये *'सुधा जनु बोरी'* कहा। और श्रीरामजीको प्रेम प्रिय है, यथा—*'रामहि केवल प्रेम पियारा।'* अतः उनसे विनय करनेमें *'प्रेम जनु जाए'* कहा। (घ) यहाँ श्रीजनकजीके तन, मन, वचन तीनोंकी सुन्दरता दिखाते हैं। *'जोरि पंकरुह पानि सुहाए'* से तन (कर्म), *'प्रेम जनु जाए'* से मन और *'बोले बचन प्रेम जनु जाए'* से वचनकी सुन्दरता कही। (ङ) जिस क्रमसे चारोंसे भेंटे वह यहाँ दरसाते हैं कि प्रथम श्रीरामजीसे मिले, इसीसे उनसे प्रथम विनय की।

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥ ४॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मद त्यागी॥ ५॥
ब्यापक ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुन-रासी॥ ६॥

अर्थ—हे राम! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ। आप (तो) मुनियों और महादेवजीके मनरूपी मानससरोवरके हंस हैं॥ ४॥ जिसके लिये योगी लोग क्रोध,ममता और मदका त्याग कर योग-साधन करते हैं॥ ५॥ जो ब्रह्म व्यापक, अलक्ष्य, अविनाशी, चैतन्य, आनन्दस्वरूप, अव्यक्त गुणवाला तथा मायिक गुणोंसे रहित, दिव्य गुणोंकी राशि हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'करौं केहि भाँति प्रसंसा'* इति। भाव कि किसी भी भाँतिसे प्रशंसा नहीं हो सकती। जिस बातकी जो भी प्रशंसा की जाय वह सब कुछ भी नहींके बराबर है। आपके नाम, रूप, गुण और लीला सभी अनन्त हैं। प्रशंसा करना वैसा ही है जैसे करोड़ों जुगुनूकी उपमा सूर्यके

लिये दें। न कोई उपमेय है, न कोई उपमान है, न कोई समान है, न कोई अधिक है—तब किस प्रकार प्रशंसा की जाय? (ख) *'मुनि महेस मन मानस हंसा'* इति। भाव कि ये दोनों आपके उपासक हैं, इनके मनमें आपकी मूर्ति बसती है, जैसे मानसमें हंस रहते हैं। हंसकी उपमा देनेका भाव कि हंस (मानससरके) जलमें बसते हैं। मन मानस-सर है, मनमें जो प्रेम है वही जल है। (इनके हृदय निर्मल, निर्विकार हैं, इसीसे इनके मनको मानसका रूपक दिया। हंस मानसरोवर छोड़ कहीं नहीं जाते, वैसे आप इनके हृदयमें सदा निवास करते हैं।)—[पुन: भाव कि एक हंस होकर मानसरोवरोंमें रहते हैं, अथवा आप सूक्ष्ममनके निवासी हैं तब स्थूल वाणी आपकी प्रशंसा कैसे कहे? अथवा, शिव और मुनि आदि जिनका ध्यान धरते हैं उनकी स्तुति मैं क्यों कर सकूँ।' (रा० प्र०, पं०) अथवा, आपकी महिमा सिन्धुवत् है, मेरा मुख पिपीलिकावत् है, अत: प्रशंसा कैसे कर सकता हूँ। (वै०)]

टिप्पणी—२ (क) *'करहिं जोग जोगी.....'* इति। सगुण ब्रह्मके उपासकोंको कहकर अब निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको कहते हैं। श्रीजनकजी उपासक हैं और योगी भी, यथा—'**जनको योगिनां वर:**'। इसीसे उपासना और योग दोनोंकी बात कहते हैं। *'कोहु मोहु ममता मद त्यागी'*—भाव कि क्रोध, मोह, ममता और मद रात्रिवत् हैं, यथा—*'मद मोह महा ममता रजनी।'* (७। १४) *'घोर क्रोध तम निसि जो जागा।'* (४। २१) इनको त्यागकर अर्थात् क्रोधादिरूपिणी रात्रिसे जागकर योग कहते हैं। यथा—*'पश्यंति यं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा'* (३। ३२) *'जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान* **कबहुँक पावहीं।'** (४। १०) *'करहिं'* से यह भी जनाया कि यह सब करते हैं तब भी ध्यानमें भी दर्शन दुर्लभ है। क्रोधसे मोह, मोहसे ममता और ममतासे मद होता है, अत: उसी क्रमसे लिखा। धन-धामादिमें अपनपौ ममता है और जाति-विद्या-गुण-ऐश्वर्यादिका गर्व मद है। *'जेहि लागी'*—*'जेहि'* का सम्बन्ध आगे है। (ख) *'ब्यापक ब्रह्म अलखु अबिनासी'* इति। व्यापक कहकर अलख-अविनाशी कहनेका भाव कि सब कोई लख पड़ता है, सबका नाश होता है और ब्रह्म सबमें व्यापक है, इससे पाया जाता है कि सबको ब्रह्म भी लख पड़ता है और ब्रह्मका नाश भी होता है, अत: कहते हैं कि ऐसा नहीं है, वह व्यापक होते हुए भी अलक्ष्य और अविनाशी है। (ग) *'चिदानंदु'* अर्थात् सच्चिदानन्द है। यहाँ 'सत्' शब्दका अध्याहार है। ब्रह्म सत् है और सब असत् है, ब्रह्म चैतन्य है और सब जड़ हैं, ब्रह्म आनन्दस्वरूप है और सब दु:खरूप हैं। (घ) *'निरगुन गुनरासी'*—निर्गुण कहनेसे जाना गया कि ब्रह्म गुणरहित है, अत: *'गुनरासी'* कहा, अर्थात् ब्रह्म त्रिगुणसे परे है, दिव्य गुणोंकी राशि है। निर्गुण-गुणराशि कहनेका (अद्वैतमतानुसार) भाव कि ब्रह्म निर्गुण है और गुणराशि है अर्थात् सगुण होता है, सगुण ब्रह्ममें अनन्त गुण हैं। पुन: भाव कि आप ही निर्गुण ब्रह्म हैं और आप ही सगुण ब्रह्म हैं। (ङ) ब्रह्म व्यापक है इसीसे अलख है, अलख है इसीसे अविनाशी है और अविनाशी है इसीसे सच्चिदानन्द है, इत्यादि क्रमका भाव है।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥ ७॥
महिमा निगमु नेति कहि* कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥ ८॥
दो०—नयन बिषय मो कहुँ भयेउ सो समस्त सुखमूल।
सबइ लाभु† जग जीव कहँ भए ईसु अनुकूल॥ ३४१॥

शब्दार्थ—तरकना (तर्कणा)=तर्क करना, विवेचना करना। *अनुमानी*=अनुमान करनेवाले, नैयायिक।

अर्थ—जिसको मनसहित वाणी नहीं जानती, सब अनुमान करनेवाले जिनकी तर्कणा नहीं कर सकते॥ ७॥ जिनकी महिमाको निगम (वेद) 'न इति' कह-कहकर वर्णन करता है। जो तीनों कालोंमें एक समान रहता है॥ ८॥ वही सम्पूर्ण सुखोंका मूल मेरे नेत्रोंका विषय हुआ। ईश्वरके अनुकूल होनेपर

* नित। † सुलभ—१७२१, १७६२, छ०। लाभ—१६६१, १७०४।

जीवको संसारमें सभी लाभ प्राप्त हो जाते हैं॥ ३४१॥

टिप्पणी—१ (क) मनसमेत वाणी कहनेका भाव कि प्रथम मन जाता है तत्पश्चात् वाणी कहती है। निर्गुण ब्रह्ममें मन नहीं जाता, वाणी उसे कह नहीं सकती। यथा—'**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**' (तैत्ति० उ० ब्रह्मानन्द-वल्ली अनुवाक ४)। ब्रह्मके परम आनन्दस्वरूपके सम्बन्धमें यह श्रुति है। अर्थात् जहाँसे मनके सहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है। यहाँ 'मनसमेत वाणी' से समस्त इन्द्रियोंका समुदायरूप मनोमय शरीर अभिप्रेत है)। (ख) *'तरकि न सकहिं सकल अनुमानी'* इति। मनसे परे वाणी है और वाणीसे परे बुद्धि है। अनुमान बुद्धिसे किया जाता है। *'सकल अनुमानी'* कहनेसे पाया गया कि अनुमानी बहुत हैं और सब अनुमानियोंके अनुमान भिन्न-भिन्न हैं। इन सभी अनुमानोंसे ब्रह्म पृथक् है। वहाँ मन, वाणी और बुद्धि तीनोंहीकी पहुँच नहीं है—यह जनाया।

टिप्पणी—२ *'महिमा निगमु नेति कहि कहई'……।'* इति। (क) सबसे पीछे वेदको कहा, क्योंकि वेद सबसे विशेष (श्रेष्ठ) हैं, इनसे अधिक कोई नहीं कह सकता। अनुमानी एक-से-एक अधिक श्रेष्ठ हैं पर वेद सबसे श्रेष्ठ हैं। (ख) प्रथम कहा कि *'राम करौं केहि भाँति प्रसंसा'* उसका अर्थ यहाँ खोला कि जिसकी महिमाको वेद नहीं कह सकते उसकी प्रशंसा मैं किस विधिसे करूँ। *'न इति'* =इतना ही नहीं, यही नहीं, ऐसा ही नहीं।=इति नहीं है। विशेष पूर्व लिखा गया है।

नोट—१ *'कहि'* की जगह *'नित'* भी पाठान्तर है। परंतु *'कहि'* इसलिये उत्तम है, कि यद्यपि *'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी'* सही है, तो भी वेद गुण गाते ही हैं, यह क्यों और कैसे? वे तो निरन्तर नेति-नेति कहकर लाचारी दिखाते रहते है तो भी कहते जाते हैं, क्योंकि *'भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा।'* यहाँ जानने, सोचनेके साथ कहना ही सुसम्मत है, इसीलिये *'कहि कहई'* उत्तम पाठ है। (गौड़जी)

टिप्पणी—३ *'जो तिहुँ काल एकरस रहई'* इति। ब्रह्म भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें एकरस रहता है, न उसका आदि है, न मध्य और न अन्त है अर्थात् वह न तो उत्पन्न हो, न बढ़े और न उसका कभी नाश ही हो। वह कभी षड्विकारको नहीं प्राप्त होता। ऊपरसे लेकर यहाँतक यह दिखाया कि कोई उनका मनसे सेवन करता है, कोई उनके लिये कर्म करता है और कोई वाणीसे उनका कथन करता है। अतः तीनोंको यहाँ कहा गया। *'मुनि महेस मन मानस हंसा'*— ये मनसे सेवन करनेवाले हैं। *'करहिं जोग……'* यह कर्मवाले और *'महिमा निगम……'* यह वाणीसे कहनेवाले हैं।

टिप्पणी—४ *'नयन बिषय मो कहुँ……'* इति। (क) भाव कि मुनि, महेश, योगी और वेद किसीको नयनका विषय नहीं होते, पर मुझे हुए अर्थात् मुझे अपने साक्षात् दर्शन दिये। मुझे नेत्रोंसे देख पड़े। (ख) *'सो समस्त सुखमूल'* यथा—*'सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो॥'* (३२४) *'आनंदकंद बिलोकि दूलहु……॥'* (३१८। ३२१) '**आनन्देन जातानि जीवन्ति**' (तैत्ति० भृगु० अनु० ६) अर्थात् उस आनन्दमयके आनन्दका लेश पाकर सब प्राणी जी रहे हैं। '**एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति**' (बृह० ४। ३। ३२)। अर्थात् यह इसका परमानन्द है। इस आनन्दकी मात्राके आश्रित ही अन्य प्राणी जीवन धारण करते हैं। (ग) *'सबै सुलभ'*—भाव कि आप अत्यन्त दुर्लभ हैं, मुझे सुलभ हो गये। *'भए ईसु अनुकूल'* भाव कि महादेवजीकी कृपासे श्रीरामजीका दर्शन होता है। पूर्व कहा ही है—*इन्ह सम काहु न सिव अवराधे।'*

नोट—२ *'नयन बिषय………।'* (क)—नेत्रका विषय रूप-दर्शन है। भाव यह कि जिनको मन-वाणी भी नहीं जान सकते वे ही हमें प्रत्यक्ष नेत्रोंसे दिखायी पड़े। इसमें आश्चर्य नहीं, क्योंकि ईश्वरके अनुकूल होनेसे *'सबै'* सुलभ है—(रा० प्र०)। (ख)—'ईश' का दूसरा अर्थ शिव है। पाँड़ेजी यह अर्थ करते हैं कि—'सब जीवोंको तुम्हारी प्राप्ति सुलभ करनेके लिये शङ्कर अनुकूल हुए।' राजा जनकने धनुषभङ्गकी प्रतिज्ञा शिवजीकी आज्ञासे की थी और जनकजीके विषयमें कहा भी है कि *'इन्ह सम कोउ न सिव अवराधे।'* अतः वह भी भाव हो सकता है कि शिवजीकी अनुकूलतासे सभी सुलभ हो जाता है। पर

यहाँ श्रीरामजीकी स्तुति कर रहे हैं इससे उन्हींके लिये 'ईश' शब्द विशेष संगत प्रतीत होता है। आगेके ***'निज जन जानि लीन्ह अपनाई'*** से भाव स्पष्ट है।

गौड़जी—श्रीजनकजी रामजीकी प्रशंसा करनेमें लाचारी यों प्रकट करते हैं कि मुनि, शिव, योगी, ज्ञानी सभी आपको प्राप्त करनेमें यत्नवान् हैं। ज्ञानी हैरान है कि मन-वचन-बुद्धिसे प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, अनुमान करके सब मिलकर भी तर्कणा (खयाल) में नहीं ला सकते। आपकी प्रशंसा वेद करते भी हैं तो भी नेति-नेति कहकर—लाचारी जाहिर करके वह सच्चिदानन्द तीनों कालमें एकरस रहता है (अर्थात् कभी गुप्त, कभी प्रकट, कभी कुछ, कभी कुछ नहीं होता, अविकारी है, नयन-विषय नहीं हो सकता), सो वही सब सुखोंका मूल मुझे प्रत्यक्ष हो गया। जब शङ्कर प्रसन्न हों तो जगत्‌में भी उनके भक्तको सब कुछ सुलभ (असम्भव भी सम्भव) हो सकता है।

टिप्पणी—५ प्रमाण चार हैं—उपमान, अनुमान, शब्द और प्रत्यक्ष। यथा—'**प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदाच्चतुर्विधं प्रमाणं नैयायिकमते।**' यहाँ चारों प्रमाण कहते हैं। ***'मुनि महेस मन मानस हंसा'*** जैसे मानसमें हंस रहते हैं वैसे ही आप मुनि और महेशके मनमें रहते हैं, यह उपमान है। ***'तरकि न सकहिं सकल अनुमानी'*** यह अनुमानकी दशा कही। ***'महिमा निगम नेति कहि कहहीं'*** यह शब्दप्रमाणका हाल कहा। ***'नयन बिषय मो कहुँ भयेउ'*** यह प्रत्यक्ष प्रमाण कहा।

नोट—३ '**न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्॥**' (केनोपनिषद् १। ३) (अर्थात् वहाँ न तो नेत्र जा सकें, न वाणी, न मन इसलिये हम उसे नहीं कह सकते कि ऐसा है या वैसा है या कैसा है), इस श्रुतिसे मिलान कीजिये। इसके अनुसार '**न तत्र चक्षुर्गच्छति**' से प्रत्यक्ष, '**न वाग्गच्छति**' से शब्द, '**नो मनः**' से अनुमान, '**न विद्मः**' से बुद्धि और '**न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्**' से उपमानसे भी अगम्य जनाया है। प्रमाण कितने हैं इसपर पूर्व ५१ (८) भाग २ में लिखा जा चुका है।

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥ १॥
होहिं सहसदस सारद सेषा। करहि कलप कोटिक भरि लेखा॥ २॥
मोर भाग्य राउर* गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥ ३॥
मैं कछु कहौं एकु बल मोरे। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे॥ ४॥
बार बार माँगौं कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥ ५॥

अर्थ—आपने मुझे सभी प्रकार बड़ाई दी। अपना जन जानकर (मुझे) अपना लिया॥ १॥ (यदि) दस हजार (भी) शारदा और शेष हों और करोड़ों कल्पोंतक लिखते रहें॥ २॥ (तो भी) हे श्रीरघुनाथजी! सुनिये। मेरा भाग्य और आपके गुणोंकी गाथा कहकर (अर्थात् कहनेसे) समाप्त नहीं हो सकती॥ ३॥ मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह अपने इस एक बलपर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेमसे रीझते (प्रसन्न हो जाते) हैं॥ ४॥ मैं हाथ जोड़े बारम्बार (यह वर) माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी (आपके) चरणोंको न छोड़े॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) ***'सबहि भाँति……'*** अर्थात् मुझे मुनियोंसे, योगियोंसे, राजाओंसे तथा जातिसे इत्यादि सब प्रकारसे बड़ाई दी। मुनियों, योगियों आदिके हृदयमें बसते हो और मुझको साक्षात् दर्शन दिया। श्रीरामजी जिसको अपनाते हैं, उसको जगत्‌में प्रशंसा और बड़ाई होती है, यथा—***'राम कीन्ह आपन जब ही तें। भयउँ भुवन भूषन तब ही तें॥'*** (२। १९६) इसीसे बड़ाई देना कहकर अपनाना भी कहते हैं। ***'निज जन जानि'*** का भाव कि आप अपनाये हुए तो सभीको हैं, यथा—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'***, पर मुझे अपना जन जानकर अपनाया है (यह विशेषता है)। पुनः, 'बिना बुलाये स्वयं कृपा करके आये, मैंने रोषभरे वचन कहे उसपर भी मुझपर कुपित न हुए, मेरे वचन सह लिये और पिताके समान मेरा

* रउरे—छ०।

सम्मान करते आये, इति *'सब भाँति'*। (पं०) अथवा, *'लोक बेद सब भाँति से'*। (वै०)] (ख) *'होहिं सहसदस सारद सेषा'*—शारदा और शेष दोके नाम यहाँ कहनेका प्रयोजन आगे कहते हैं—*'मोर भाग्य राउर गुनगाथा''''''''''*'। दो बातोंके कहनेके लिये दो वक्ता चुने। मेरे सौभाग्यका कथन शारदा करें और आपके गुणगाथाको शेष कहें। दो वक्ता बताये जिसमें शीघ्र कहकर समाप्त कर दें। एक ही वक्ता दोनोंके गुण कहें तो विलम्ब होगा। *'होहिं'* कहनेका भाव कि एक ब्रह्माण्डमें एक ही शारदा और एक ही शेष होते हैं, दस-दस हजार नहीं हैं, इतने जब हो तब। (ये ही दो प्रधान वक्ता हैं। एक स्वर्गमें, एक पातालमें, इसीसे इन्हीं दोको कहा। मर्त्यलोकमें कोई ऐसा है ही नहीं, इससे यहाँ किसीका नाम न दिया)।

२ *'मोर भाग्य राउर गुनगाथा।'* इति। (क) अपना जन जानकर अपनाया, यह मेरा 'भाग्य' है। अपने भाग्यको और श्रीरामजीके गुणोंको एक साथ मिलाकर कहनेमें भाव यह है कि आपके गुणोंहीने मुझे भाग्यवान् किया। आशय यह कि आपने अपने गुणोंसे मुझे अपना जन बनाया, इसीसे आपके गुणोंकी बड़ाई है और इसीसे मेरे भाग्यकी बड़ाई है। यथा—*'सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥'* (ख) *'कहि न सिराहिं'* से जनाया कि दोनों अनन्त हैं, दोनोंका पार कोई नहीं पा सकता। (ग) *'सुनहु रघुनाथा'* इति। भाव कि श्रीरामजी अपना गुण सुननेमें सकुचाते हैं, *'निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं।'* (६। ४६) (यह सन्तका लक्षण श्रीरामजीने नारदजीसे कहा है। वह गुण अपनेमें अनेक स्थानोंमें उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया है)। इसीसे जनकजी सुननेको कहते हैं। (हो सकता है जब ऐश्वर्य-वर्णन करने लगे तब श्रीरघुनाथजीने सकुचाकर आँखें नीची कर ली हों, इसीसे ऐसा कहा)। *'रघुनाथा'* का भाव कि इस रघुनाथ-रूपके गुण अनन्त हैं। (घ)—प्रथम जो कहा था कि *'रूप सील गुन निधि सब भ्राता'* उन्हीं तीनोंकी क्रमसे बड़ाई की है—*'राम करौं केहि भाँति प्रसंसा'* से लेकर *'नयन बिषय मो कहुँ भयेउ सो समस्त सुखमूल।'* तक रूपकी, *'सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥'* में शीलकी और *'मोर भाग्य राउर गुन गाथा।'* में गुणकी प्रशंसा की।

टिप्पणी—३ *'मैं कछु कहौं एक बल मोरें''''''* इति। (क) *'मैं'* कहकर अपनी लघुता दिखाते हैं। *'कछु'* का भाव कि शेष-शारदा बहुत कहते हैं, मैं तो कुछ ही कहता हूँ। अथवा, आपके अनन्त गुणोंमेंसे मैं कुछ कहता हूँ। *'एक बल मोरें'* अर्थात् यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप स्नेहसे रीझते हैं। अथवा, मुझमें एक ही बल है, वह यह कि मुझमें स्नेह है; मेरे स्नेहको देखकर आपने मुझपर बड़ी कृपा की—वही एक गुण मैं कहता हूँ कि *'तुम्ह रीझहु''''''''*'। [*'एक बल मोरें'* अर्थात् मुझे यह विश्वास और भरोसा है और हमारे पास यही एक वस्तु है भी। (प्र० सं०)] (ख) अनन्त गुणोंमेंसे एक गुण कहनेका भाव यह है कि अनन्त गुण एक ओर हैं और 'अत्यन्त थोड़े स्नेहसे रीझना' यह गुण एक ओर है (अर्थात् ये दोनों तोले जायँ तो यह एक गुण भारी निकलेगा। अनन्त गुण मिलकर भी इस एक गुणके बराबर नहीं हो सकते)। ☞उपदेश—*'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें'* यह कहकर श्रीजनकमहाराजने जगत्‌भरको कृतार्थ कर दिया। लोग इस वाक्यको लेकर स्नेह करें और कृतार्थ हो जायँ।

टिप्पणी—४ *'बार बार मागौं कर जोरें''''''* इति। (क) बार-बार माँगनेका भाव यह है कि भक्ति परम दुर्लभ वस्तु है, शीघ्र नहीं मिलती। [आप सब सुख दे देते हैं पर रीझनेपर भी अपनी भक्ति शीघ्र नहीं देते, बिना माँगे देते ही नहीं। यथा—*'कागभुसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि। अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥'*(७। ८३) *ज्ञान बिबेक बिरति बिज्ञाना। ''''''''''प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥*'] (ख) *'कर जोरें'* —श्रीजनकजी प्रथमसे ही हाथ जोड़े हुए हैं, यथा—*'जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन''''''''''॥'* (३४१। ३) इसीसे *'कर जोरें'* कहा। *'जोरि पंकरुह पानि'* उपक्रम है और *'बार बार मागौं कर जोरें'* उपसंहार है। वहाँ स्तुति करनेके लिये हाथ जोड़े और यहाँ वर माँगनेके लिये जोड़े। (ग) *'मन परिहरै चरन जनि भोरें'* इति। जिस स्नेहकी बड़ाई की वही स्नेह माँगते हैं; परंतु *'मन परिहरै''''''*' में स्नेहका नाम नहीं लिया। कारण कि श्रीरामजीमें जो

जनकजीका स्नेह है वह गुप्त है, यथा—*'जाहि रामपद गूढ़ सनेहू। जोग भोग महुँ राखेउ गोई।'*……' (१। १७), इसीसे ग्रन्थकारने भी अक्षरोंमें गुप्त रखा। [*'परिहरै जनि'* से सूचित हुआ कि इन चरणोंमें प्रेम तो है ही और गुप्त भी है, अब उसकी अचलताका वर माँग रहे हैं। (घ) इस वरके माँगनेसे सिद्ध हुआ कि तत्त्व-ज्ञान स्नेहके समान आनन्ददाता नहीं है। (रा० प्र०) अथवा मोक्षसुख *'रहि न सकइ हरिभगति बिहाई'* इसीसे अन्य सुजान मुनियोंकी तरह विदेहजी भी 'पदरति' माँगते हैं। मोक्ष फल है, उस फलमें यदि हरिपदरतिरूपी रस न हुआ तो उस फलका कुछ भी मूल्य नहीं है। (प० प० प्र)]

सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकामु रामु परितोषे॥ ६॥
करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥ ७॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही॥ ८॥

अर्थ—(श्रीजनकजीके) श्रेष्ठ वचनोंको, जो मानो प्रेमसे पोसे (पुष्ट) किये हुए थे, सुनकर पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट हुए॥ ६॥ सुन्दर श्रेष्ठ विनती करके उन्होंने ससुरका सम्मान किया। उनको पिता, कौशिक (विश्वामित्रजी) और वसिष्ठजीके समान जाना॥ ७॥ फिर (राजा जनकने) भरतजीसे विनती की। प्रेमपूर्वक मिलकर फिर आशीर्वाद दिया॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'बोले बचन प्रेम जनु जाए।'* (३४१। ३) उपक्रम है। *'बर बचन प्रेम जनु पोषे',* उपसंहार है। उपक्रममें *'जाए'* और उपसंहारमें *'पोषे'* कहनेका भाव कि राजाके वचन उनके प्रेमसे उत्पन्न हुए हैं और उन्हींके प्रेमसे पुष्ट हुए हैं। वचन 'वर' अर्थात् श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनमें भगवान्‌के रूप और गुणोंका कथन है और प्रेमसे वे बलयुक्त किये हुए हैं। [पुनः थोड़े अक्षरोंमें अर्थ बहुत और गूढ़ आशय विलक्षण देशकालानुकूल सुहावने श्रवणरोचक तथा स्नेहवर्धक होनेसे वचनको 'वर' कहा (वै०)।] पुनः प्रेमसे उत्पन्न हुए और उसीसे पुष्ट हुए होनेसे *'बर'* कहा। श्रीजनकजीने स्नेहकी प्रशंसा की—*'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे',* इसीसे स्वयं प्रेमसे उत्पन्न और पुष्ट किये हुए वचन बोले। (ख) *'पूरन कामु रामु परितोषे'* इति। तात्पर्य कि श्रीरामजीकी सब कामनाएँ पूर्ण हैं; वे एकमात्र प्रेमके भूखे हैं, केवल प्रेमसे संतुष्ट होते हैं, इसीसे प्रेमके वचन सुनकर संतुष्ट हुए। यथा—*'रीझत राम सनेह निसोतें।'* (१। २८) (*'प्रेम जनु जाए'* और *'प्रेम जनु पोषे'* कहकर आद्यन्त प्रेममय जनाये। 'पूर्णकाम' और 'परितोषे' से जनाया कि कोई भी कामना न रहनेपर भी वे भक्तोंको कृतार्थ करनेके लिये प्रेमसे प्रसन्न होते हैं)। (ग) *'राम परितोषे'*—इस कथनसे श्रीजनकजीके वचनोंकी स्वीकृति जनायी, अर्थात् उनको चरणोंकी भक्ति दी। क्योंकि देवताका संतुष्ट होना व्यर्थ नहीं होता। माधुर्यकी मर्यादा रखी, इसीसे प्रकटरूपसे 'एवमस्तु' न कहा। [इसी प्रकार जब गुरु श्रीवसिष्ठजीने *'नाथ एक बर माँगउँ राम कृपा करि देहु। जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥'* (७। ४९) कहा, तब भी कविने *'कृपासिंधु मन अति भाए'* कहकर माधुर्यका निर्वाह करते हुए भी वरका देना गुप्तरूपसे दिखाया है। कोई-कोई 'श्रीरामजीने उनका परितोष किया', यह अर्थ करते हैं।

टिप्पणी—२ *'करि बर बिनय'*……' इति। (क) श्रीजनकजीके *'बर बचन प्रेम जनु पोषे'* के सम्बन्धसे *'बर बिनय'* करना कहा। अर्थात् उन्होंने सुन्दर श्रेष्ठ वचन कहे थे, इसीसे इन्होंने भी श्रेष्ठ विनय की, क्योंकि यह भगवान्‌का विरद है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥**' (गीता ४। ११) भगवान्‌को जो जिस प्रकार भजता है, भगवान् भी उसी प्रकार उसे भजते हैं। (ख) *'पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने'* इति। अर्थात् जैसा इनको मानते हैं वैसा ही जनकजीको माना, वैसे ही नम्र हुए, वैसी ही विनय की और मुखसे कहा कि आप हमारे पिताके समान हैं, कौशिकजीके समान हैं, गुरु वसिष्ठजीके समान हैं—ऐसा कहकर सम्मान किया। (ग) पिता, कौशिक और वसिष्ठ तीनको कहनेका भाव कि कर्म, ज्ञान और उपासना (वेदोंमें ये) तीन ही हैं (वही तीनों यहाँ दिखाते हैं) पिताके समान उपासक जाना, यथा—*'सुत बिषइक तव पद रति होऊ।'* (१५१। ५) (श्रीमनुजीने *'पद रति'* माँगा था) तथा यहाँ श्रीजनकजी भी माँगते हैं

कि *'मन परिहरै चरन जनि भोरे।'* राजा दशरथजी और राजा जनकजी दोनोंकी श्रीचरणोपासना गुप्त है, प्रत्यक्षमें वात्सल्य है। कौशिक समान कर्मकाण्डी जाना; क्योंकि जैसे कौशिकजीने यज्ञको प्रधान रखा, श्रीरामजीको यज्ञका रक्षक बनाया, वैसे ही जनकजीने धनुषयज्ञको प्रधान रखा और श्रीरामजीको सामान्य (गौण) रखा। वसिष्ठ-समान जाननेका भाव कि जैसे श्रीवसिष्ठजी ज्ञानी हैं, वैसे ही श्रीजनकजी ज्ञानी हैं। (वसिष्ठजीने अपने प्रेमको ज्ञानमें गुप्त रखा, वैसे ही जनकजीने अपने प्रेमको योगमें गुप्त रखा।) वसिष्ठजीको ज्ञानी विशेषण जहाँ-तहाँ दिया गया ही है; जैसे नामकरण-संस्कारमें, यथा—*'नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी॥'* (१९७।२) (प्र० सं०)]

नोट—१ *'पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने'* के और भाव—(१) धर्मशास्त्रने श्वशुरको पिता-समान कहा है; अतः *'पितु सम जाने'* विश्वामित्रजी तपोनिधि हैं, तपपुञ्ज हैं, वैसे ही जनकजीने भी पूर्व-जन्ममें और इस जन्ममें भी ज्ञानके निमित्त यमनियमादि कठिन साधन किये हैं, अतः *'कौसिक सम जाने।'* *'बसिष्ठ सम जाने'* क्योंकि जैसे वसिष्ठजीको एकरसस्वरूपकी अपरोक्षता है वैसे ही राजाको भी है। (पं०) दोनों एकरस ज्ञानी हैं। (रा० प्र०)

नोट—२ 'राम-जानकी एक अङ्ग हैं, इसीलिये जनकको पिताके समान जाना। विश्वामित्रके समान इसलिये जाना कि जैसे उनके कारणसे विजय मिली ऐसे ही जानकीजी विजयरूपा हैं सो इनसे मिलीं। प्रथम विद्या वसिष्ठसे मिली है, इसलिये जानकीजी जो ब्रह्मविद्यारूपा हैं उनकी प्राप्तिसे वसिष्ठसमान जाना।' (पाँ०) आशय यह है कि श्रीराम और श्रीजानकी एक ही हैं, देखने वा कहनेमात्रमें दो हैं—*'कहिअत भिन्न न भिन्न।'* अतः श्रीजानकीजीके पिता होनेसे श्रीरामजीके भी पिताके तुल्य हैं। अथवा जानकीजी श्रीरामजीकी धर्मपत्नी हैं और जनकजी श्रीजानकीजीके पिता हैं, अतः इनके भी पिताके समान हैं। विश्वामित्रजीके कारण यज्ञरक्षामिष तथा अहल्योद्धारद्वारा श्रीरामजीने विजय और कीर्ति पायी, यथा—*'कीरति रही भुवन भरि पूरी।'* (३५७।३) वैसे ही श्रीजनकजीके कारण शुल्क स्वयंवर धनुषयज्ञके मिष 'विजय कीर्ति' रूपा श्रीजानकीजीकी प्राप्ति हुई, यथा—*'बिस्व बिजय जसु जानकि पाई।'* (३५७। ५) अतः *'कौसिक सम जाने।'*

नोट—३ *'पितु'* से वात्सल्यभाव, यथा—*'सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति...॥'* (२४२।३), कौशिकसे राजर्षितुल्यता, महान् तपस्या इत्यादि और 'वसिष्ठ' से ब्रह्मर्षितुल्यता सूचित की। (प० प० प्र०)

प० प० प्र०—यह स्तुति मानसकी छठी स्तुति है और नक्षत्रमण्डलमें आर्द्रा छठा नक्षत्र है। यह स्तुति आद्यन्त प्रेमरससे आर्द्र है और उसका नाम ही आर्द्रा है, यह साम्य है। पुनः जैसे आर्द्रामें एक तारा है उसका आकार मणिका-सा और देवता शर्व है, वैसे ही स्तुतिमें 'ईशकी अनुकूलता' ही तारा है। शिवजीकी कृपा होनेपर इस स्तुतिका अवसर मिला है। मणि प्रकाशमय होती हैं और यहाँ शिव-कृपाप्रकाशमें चलनेपर ही रामभक्ति प्राप्त हो गयी है। शर्व=संहारकर्ता। 'शिवचापके संहारका फल यह स्तुति है। फलश्रुति है *'जनक सियराम प्रेमके'* और यहाँ स्वयं सिय-जनक ही स्तुति कर रहे हैं। जो इस स्तुतिका गान करेगा उसे सियरामपद प्रेम होगा।

टिप्पणी—३ (क) पिता गुरुसे श्रेष्ठ हैं इससे प्रथम पिताको कहा। फिर पिताका भाव कौशिकजीमें है, यथा-*'तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।'* (२०८। १०), अतः पिताके पश्चात् कौशिकजीको कहा तब वसिष्ठजीको। (ख) *'बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही।...'* इति। भरतजी श्रीरामजीके रूप हैं, इससे भी विनती की जैसे रामजीसे विनती की, वैसे ही इनसे भी की। *'मिलि सप्रेम'* अर्थात् प्रेमपूर्वक गले लगाकर मिले, श्रीरामजीमें ईश्वरभाव माना, इससे उनसे विनय की और भरतजीमें ईश्वरभाव और शिशुभाव दोनों भाव माने इससे विनय किया और फिर आशीर्वाद भी दिया।

दो०—मिले लषन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस।
भये परसपर प्रेमबस फिरि फिर नावहिं सीस॥ ३४२॥

अर्थ—राजा (श्रीजनकजी) श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजीसे मिले (अर्थात् इनको हृदयमें लगाया) और आशीर्वाद दिया। ये परस्पर प्रेमवश हो गये। फिर-फिरकर सिर नवाते हैं (प्रणाम करते हैं)॥ ३४२॥

टिप्पणी—१ (क) *'मिले लषन रिपुसूदनहि'* अर्थात् पहले श्रीलक्ष्मणजीसे मिलकर उनको आशीर्वाद दिया तब श्रीशत्रुघ्नजीसे मिले और आशीर्वाद दिया। *'दीन्हि असीस'* से जनाया कि केवल शिशुभाव मानकर इनको आशीर्वाद दिया, इनसे विनय न की। [इस प्रसंगमें तीन तरहका मिलाप दिखाया है। श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर विनती की, रामजीने *'करि बर बिनय ससुर सनमाने'*; अर्थात् उत्तरमें विनम्र वचन कहे। शीश नवाना इनका न कहा। राजाने श्रीरामजीको आशीर्वाद नहीं दिया। इस प्रकार इनसे पूर्ण ऐश्वर्यभावसे मिले। भरतजीसे विनती की और फिर उनको आशीर्वाद दिया, इस प्रकार इनके मिलापसे ऐश्वर्य-माधुर्य दोनों दिखाये। और लक्ष्मण-शत्रुघ्नमें केवल माधुर्य दिखाया, इनसे विनती करना नहीं दिखाया। (प्र० सं०) इससे बताया कि भरतजीका महत्त्व लक्ष्मण-शत्रुघ्नसे ऐश्वर्यभावदृष्ट्या अधिक है। प्राज्ञकी महत्ता विश्व और तैजससे अधिक है ही। (प० प० प्र०)] (ख) श्रीजनकजीका प्रेम, सब भाइयोंमें बराबर है, इसीसे सब जगह (चारों भाइयोंके प्रसङ्गोंमें) कविने प्रेम लिखा है। श्रीरामजीमें प्रेम, यथा—*'बोले बचन प्रेम जनु जाए'* (एवं *'सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे'*)। श्रीभरतजीमें प्रेम, यथा—*'बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही॥'* श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजीमें प्रेम, यथा—*'भये परसपर प्रेम बस।'* (ग) *'भये परसपर प्रेम बस.........'* इति। इससे सूचित किया कि राजा बार-बार दोनों भाइयोंको हृदयमें लगाते हैं और आशीर्वाद देते हैं, इसीसे दोनों भाई 'फिरि फिरि' शीश नवाते हैं— यही 'परस्पर प्रेमवश' होना है। [बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि परस्पर प्रेमवश हो जानेसे बड़ाई-छुटाईका विचार भूलकर एक-दूसरेको प्रणाम करते हैं। (घ) प्रेमवश होना मनका भाव है, सिर नवाना तनका काम है, विनय करना वचन है। इस तरह मन, तन, वचन तीनोंसे प्रेम दिखाया।

प० प० प्र०—धनुर्यज्ञारम्भसे श्रीजनकजी तथा सुनयनाजी माधुर्य भक्तिभावसे सब व्यवहार करते रहे। बिदाके समय दोनोंमें ऐश्वर्यभावकी जागृति हो गयी। तथापि रानी बहुत देर ऐश्वर्यभावमें न टिक सकीं। भगवान्‌के वचनोंसे उनका माधुर्यभाव फिरसे बलवान् हो गया। किंतु राजाका माधुर्यभाव फिरसे जागृत न हुआ। इसीसे उन्होंने श्रीरामजीको न तो आशीर्वाद ही दिया न फिर मिले।

श्रीबैजनाथजी—श्रीजनकजी दोनों भाइयोंसे मिले, जब उन्होंने प्रणाम किया तब राजाने आशीर्वाद दिया। लक्ष्मणजीको देख रङ्गभूमिमें अपने करुणावश होने और श्रीलक्ष्मणजीके वीरताके वचन सुनकर शोक मिटनेका प्रसंग स्मरण हो आनेसे महाराज प्रेमके वश हो गये। उधर दोनों भाई इनको बड़ा और श्रीरामप्रेमपरिपूर्ण जानकर प्रेमवश हुए। अत: परस्पर प्रेमवश होना कहा। लक्ष्मणजीने जो सरोष वचन कहे थे, उनके क्षमार्थ बार-बार प्रणाम करते हैं।

बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥ १॥
जनक गहे कौसिकपद जाई। चरनुरेनु सिर नयनन्ह लाई॥ २॥
सुनु मुनीसबर दरसन तोरे। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे॥ ३॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥ ४॥
सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥ ५॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥ ६॥

अर्थ—बार-बार विनती और बड़ाई (प्रशंसा) करके सब भाई रघुनाथजीके साथ चले॥ १॥ श्रीजनकजीने जाकर श्रीविश्वामित्रजीके चरण पकड़े और चरणोंकी धूलि सिर और नेत्रोंमें लगायी (और बोले—)॥ २॥ हे मुनीश्वरोंमें श्रेष्ठ! सुनिये। आपके दर्शनोंसे कुछ भी दुर्लभ नहीं (ऐसा) मेरे मनमें विश्वास है॥ ३॥ लोकपाल जिस सुख और सुयशकी चाह करते हैं, (पर जिसका) मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं॥ ४॥ हे स्वामिन्!

वही सुख और सुयश मुझे सुलभ (सुगमतासे प्राप्त) हो गया। सब सिद्धियाँ आपके दर्शनोंकी अनुगामी (अर्थात् पीछे-पीछे चलनेवाली) हैं॥ ५॥ (इस प्रकार) बारम्बार विनती की और बारम्बार सिर नवाकर आशीर्वाद पाकर राजा लौटे॥ ६॥

टिप्पणी—१(क) *'बार बार'* क्योंकि प्रेमके वश हैं। *'बिनय बड़ाई'*—भाव कि श्रीरामजीने श्रीजनकजीकी विनय और बड़ाई की, यथा—*'करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥'* (पिता आदिके समान जाना यह बड़ाई है।) इसीसे सब भाइयोंने भी विनय और बड़ाई की। (ख) *'रघुपति चले संग सब भाई'* इति। यहाँ किसीका सवारीपर सवार होना नहीं लिखते; क्योंकि अयोध्याजीमें सवारियोंका विस्तारसे वर्णन कर चुके हैं, सबोंकी वही सवारियाँ यहाँ भी हैं; इसीसे यहाँ सवारियोंका विस्तारसे वर्णन न करके संक्षेपसे कह दिया कि *'रथ गंज बाजि बरातिन्ह साजे।'* (३३९। ६) *'चले'* अर्थात् चारों भाई अपने-अपने घोड़ोंपर सवार हुए। *'संग सब भाई'*—सब भाई श्रीरघुनाथजीके साथ ही रहते हैं, इसीसे सर्वत्र भाइयोंसहित कहते हैं, यथा—*'तेहि अवसर भाइन्ह सहित राम भानुकुल केतु।'* (३३४), *'पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥'* (३३७) तथा यहाँ *'संग सब भाई'* (इससे यह भी जनाया कि जबतक कि जनकजी सब भाइयोंसे मिलकर विदा न हुए तबतक श्रीरामजी खड़े रहे)।

टिप्पणी—२ *'जनक गहे कौसिकपद जाई।.........'* इति। (क) जनकजीका मुनिमण्डलीको प्रणाम करना लिख आये, यथा—*'मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥'* (३४१। १) यहाँ विश्वामित्रजीके चरणोंकी सबसे पृथक् वन्दना की गयी। इससे जनाया कि ये मुनि-मण्डलीमें नहीं थे, श्रीरामजीके निकट ही थे, इसीसे चारों भाइयोंसे मिलकर कौशिकजीसे मिले। (ख) *'गहे कौसिक पद'*—चरण पकड़ना अत्यन्त प्रेम सूचित करता है, यथा—*'पदु अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥.........'*, *'अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥'* (३३७। १) चरणरजका आँखोंमें लगाना भी अत्यन्त प्रेमका स्वरूप है, यथा—*'चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥'* (२। १९९) (ग) *'जाई'* से जनाया कि विश्वामित्रजी श्रीरामजीके समीप नहीं थे, कुछ दूरीपर थे। यदि कौशिकजी समीप होते तो पहले इन्हींके चरण पकड़ते तब चारों भाइयोंसे मिलते।

टिप्पणी—३ (क) *'सुनु मुनीसबर'*—*'मुनीसबर'* कहकर अत्यन्त श्रेष्ठता दिखायी। मुनियोंसे श्रेष्ठ मुनीश हैं और आप तपस्याके कारण सब मुनीश्वरोंसे श्रेष्ठ हैं, यथा—*'मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥'* (३५९। ६) *'तोरे'* छन्दहेतु कहा। यहाँ यह अनादरका वचन नहीं है। (ख) *'अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे'* इति। भाव यह कि मुझे आपके दर्शनका प्रत्यक्ष फल मिला, इसीसे मुझे विश्वास है। फलकी प्राप्ति आगे कहते हैं—*'जो सुखु ......'* विश्वामित्रजीके दर्शनका भारी फल कहा, इसीसे विश्वामित्रजीको 'मुनीश्वर' कहा। जैसी मूर्ति हैं वैसा ही दर्शनका फल है। (ग) *'लोकपति चहहीं'* से सुख-सुयशकी बड़ाई दिखाते हैं कि इतना भारी है कि जो सुख-सुयशसे पूर्ण हैं वे भी इसका मनोरथ करते सकुचाते हैं। [भाव यह है कि वह सुख कि ब्रह्म हमारे जामाता हों अलभ्य है, इस प्रकारके सुखका मनोरथ भी इन्द्रादिक करते सकुचते हैं। जो इतने बड़े ऐश्वर्यवान् हैं वे भी अपनेको इस सुखके योग्य नहीं समझते, वह सुख मुझे आपके द्वारा प्राप्त हुआ और जगत्में मुझे यश मिला। ऐसा कहकर यह भी सूचित किया कि आप अलभ्यसुख-सुयश-युक्त हैं। (प्र० सं०) सुख और सुयशकी प्राप्ति जनकजीने स्वयं कही है, यथा—*'नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुखमूल। सबइ लाभु जग.....।'* (३४१) *'सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई।'* में देखिये। पुनश्च यथा—*'सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंदु चकोरा॥....... इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा॥'* (१। २१६), *'जनकु लहेउ सुख सोच बिहाई।'* (२६३। ४), *'सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई॥ जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥ मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई।'* (१। २८६) (यहाँ भी कौशिकजीकी कृपासे कृतकृत्य होना कहा है), इत्यादि।

सुयशकी प्राप्ति पूर्व *'तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई।'* (१। ३२४ छन्द ४) में विस्तारसे लिखी गयी है। जानकीमङ्गलमें भी कहा है—*'प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पायऊँ।'* (१०८) जैसे राजा जनकने इनकी कृपासे सुखकी प्राप्ति कही, वैसे ही श्रीअवधेशजीने भी कही है, यथा—*'येहु सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ।'* (३३१)] विशेष टि० ४ में देखिये।

टिप्पणी—४ (क) *'सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी।'* ''''''' इति। भाव कि लोकपालोंको दुर्लभ था और मुझे सुलभ हो गया। *'दरसन अनुगामी'*—अर्थात् आपके दर्शन प्रथम हुए तब श्रीरामजीका दर्शन हुआ, वे मिले, उन्होंने धनुष तोड़ा, विवाह हुआ, यह सब सुख आपके दर्शनके पीछे हुआ। आपके दर्शनके पश्चात् सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। (ख) *'कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई।'* ''''''' इति। *'सुनु मुनीस बर दरसन तोरे'* से *'सब सिधि तव दरसन अनुगामी'* तक विनय है। विनयके आदिमें प्रणाम किया था, यथा—*'जनक गहे कौसिक पद जाई'*—यह उपक्रम है। *'कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई'* उपसंहार है। (ग) श्रीजनकजीके यहाँ जो सुख हुआ उसके सम्पुट श्रीविश्वामित्रजी हैं, इसीसे सबके आदिमें इनका मिलन और सबके अन्तमें इनकी विदा कही गयी। *'संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति। चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ येहि भाँति॥'* (२१४) उपक्रम है और *'कीन्ह''''। फिरे महीसु आसिषा पाई।'* उपसंहार है। इसके बीचमें सब सुख है। इसीसे सबके अन्तमें विश्वामित्रके चरणोंमें सिर नवाया।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥७॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥८॥
दो०—बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥३४३॥

शब्दार्थ—**जनेत**=बारात। यह देहलीके पश्चिम हरिहरपुरकी बोली है—पं० रामकुमारजीका मत है कि यह शब्द 'जनता' शब्द है, अनुप्रासके लिये 'जनता' का 'जनेत' कर दिया है—**'जनानां समूहो जनता'** अर्थात् लोगोंके समूहको जनता कहते हैं—**बास**=निवासस्थान, टिकाव।=निवास

अर्थ—बारात डंका (नगाड़ा) बजाकर चली। छोटे और बड़े सभी तथा छोटे-बड़े सबोंके समुदाय (समाज, समूह) प्रसन्न हैं॥ ७॥ (मार्गमें) ग्रामोंके स्त्री-पुरुष श्रीरामजीको देखकर नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं॥ ८॥ बीच-बीचमें श्रेष्ठ निवास-स्थानोंमें निवास करके मार्गके लोगोंको सुख देती हुई बारात श्रीअयोध्यापुरीके समीप पवित्र (शुभ) दिनपर आ पहुँची॥ ३४३॥

टिप्पणी—१ (क) *'चली बरात निसान बजाई'* इति। प्रथम राजा निशान बजाकर चले, यथा—*'चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥'* (३६९) जब राजा चले तब बारात नहीं चली। बारात श्रीरामजीकी राह देखती रही, क्योंकि सब श्रीरामजीके प्रेमी हैं। यथा—*'रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥'* (३०९। १) बारातमें दूलह ही मुख्य है, उसको लेकर बारात चलती है। अत: जब विश्वामित्रसहित चारों भाई चले तब बारात चली। इस चौपाईका सम्बन्ध *'समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥'* (३३९। ५) से है, वहाँ सजकर तैयार होना कहा था, अब यहाँ उसका चलना कहते हैं—[(ख) यहाँ बारातके चलनेका क्रम भी दिखाते हैं कि आगे अवधपति हैं, उनके साथ मुनि-मण्डली है, फिर भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजी हैं; तब विश्वामित्रजी हैं और उनके पीछे बारात है—इसी क्रमसे श्रीजनकमहाराज सबसे मिलते हुए पीछे लौटे—*'सब समुदाई'* में सब समाज बराती, हाथी, घोड़े, सेवक इत्यादि सभी समाज आ गये। (प्र० सं०)] (ग) *'मुदित छोट बड़ सब समुदाई'* अर्थात् बड़ोंके समूह और छोटोंके समूह—अर्थात् घोड़ों, हाथियों और रथोंके समूह, ब्राह्मणोंके समूह, मागधों-सूतों-बन्दियोंके समूह, कहारोंके समूह, सेवकोंके समूह, इत्यादि। (घ) दोहा—*'उपक्रम उपसंहार पुनि दुहुँ दिसि बजे निसान। चलन सबन को क्रम कथन तेहि कर भाव बखान॥'* ☞बारातके श्रीजनकपुरसे प्रस्थानके समयकी चौपाइयोंमें इतनी बातें कही गयी हैं।]

टिप्पणी—२ *'रामहि निरखि ग्राम नर नारी'*……इति। (क) पहले दशरथजी महाराजकी सवारी निकली तब श्रीरामजीकी, इनके पीछे बारात निकली। श्रीरामजी बारातसे आगे हैं, इसीसे सबको दर्शन होते हैं। यदि वे बारातके बीचमें होते तो सब ग्रामवासियोंको दर्शन न होता। सब श्रीरामजीको देखते हैं, इस कथनसे पाया गया कि ग्रामवासी स्त्री-पुरुष बारात देखनेके लिये ग्रामसे निकलकर बाहर खड़े हुए हैं। (जैसा वनवासके समय वर्णन किया गया है।) यथा—*'सीता लषन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥ सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी॥ राम लषन सिय रूप निहारी। पाइ नयनु फलु होहिं सुखारी॥'* (२-११४) (ख) *'पाइ नयनु फलु'* बारातका देखना नेत्रोंका फल नहीं है, श्रीरामजीका दर्शन नयनोंका फल है, यह दिखानेके लिये ही *'रामहि निरखि'* कहा। (भुशुण्डिजीने भी कहा है—*'निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥'* (७। ७५)

टिप्पणी—३ *'बीच बीच बर बास करि'*……इति। (क) बीच-बीचमें टिकनेके लिये श्रेष्ठ निवास-स्थान बने हैं, यथा—*'बीच बीच बर बासु बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥'* (३०४। ६) उनमें आरामका सब सामान है, रसोई तैयार है; अतः उनको सफल करनेके लिये बीच-बीचमें उन स्थानोंमें वास किया। *'बास'* शब्द देहलीदीपक है—'बर बास हैं, उनमें बास करके' इस प्रकार अर्थ होगा। (ख) *'बीच-बीच'*……*'सुख देत'* से सूचित किया कि बारात बहुत धीरे-धीरे आयी है, नहीं तो सब सवारियाँ बड़ी शीघ्रगामी हैं, बहुत शीघ्र श्रीअयोध्यापुरीमें पहुँच जाते। (ग) *'अवध समीप'* का भाव कि अभी अवधपुरीमें नहीं पहुँची। श्रीअवधकी मङ्गल रचना कहकर तब श्रीअवधपुरीमें बारातका पहुँचना कहेंगे।

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥ १॥
झाँझि बीन* डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥ २॥
पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥ ३॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥ ४॥
गली सकल अरगजा सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥ ५॥

शब्दार्थ—'**भेरि**'=बड़े ढोल, पनव (पणव)=छोटा ढोल या छोटा नगाड़ा। 'डिंडिमी' यह रोशनचौकीके साथ बजती है। नगाड़ेके साथ छोटी नगाड़ी होती है, एक चोट नगाड़ेपर और एक इस छोटे नगाड़ेपर साथ-साथ एकके पीछे एकपर पड़ती है। इसीको डिंडियी कहते हैं। **सहनाई** (शहनाई)=बाँसुरी या अलगोजेके आकारका, पर उससे कुछ बड़ा, मुँहसे फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकारका बाजा जो प्रायः रोशनचौकीके साथ बजाया जाता है।=नफीरी। **चौहट**=चौराहा। **अरगजा**=केशर, चन्दन, कपूर आदि मिश्रित सुगन्धित द्रव्य जो पीले रंगका होता है। टिप्पणी ४ (क) में देखिये।

अर्थ—डंकोंपर चोटें पड़ने लगीं, सुन्दर ढोल सुन्दर बजने लगे। भेरी और शङ्खकी ध्वनि हो रही है। घोड़े हिन-हिनाते और हाथी चिघाड़ते हैं॥ १॥ सुन्दर झाँझ वीणा और डुगडुगियाँ तथा शहनाई रसीले रागसे बज रही हैं॥ २॥ बारातको आती हुई सुनकर सब पुरवासी आनन्दित हैं, सबके शरीरोंमें पुलकावली हो रही है॥ ३॥ सबोंने अपने-अपने सुन्दर घरों, बाजारों, मार्गों, चौराहों और नगरके फाटकोंको सजाया॥ ४॥ सब गलियाँ अरगजासे सिचाई गयीं। जहाँ-तहाँ सुन्दर चौकें पुरायी गयीं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'हने निसान'* कहनेका भाव कि जैसे बारातके जानेके समय नगाड़े बजाये गये थे, वैसे ही बारातके (लौटकर) आनेके समय बजाये। यथा—*'येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥'* (३०४। ४) तथा यहाँ *'हने निसान*……*हय गय गाजे।'* [(प्र० सं०)—जैसा बारातके अवधपुरसे चलनेके समय हुआ था वैसा ही इस समय भी हो रहा है। यथा—*'येहि बिधि....'* दोहा ३००

*बीरव—१६६१। गीताप्रेसने 'बिरव' को विशेषण मानकर उसका विशेष शब्द करनेवाला 'झाझ' ऐसा अर्थ किया है। बीरि—१७२१। बीन—६० छ०। भेरि—१७०४, को०रा०, १७६२।

से ३०४। ४ तक देखिये।] (ख) निशान, पणव, भेरी, और शङ्ख उच्च स्वरके बाजे हैं, इसलिये इन सबोंको एक साथ लिखा (और इसीसे इन्हें *'हय गय गाजे'* के साथ उसी पंक्तिमें रखा)। आगे मध्यम स्वरके सब बाजोंको इकट्ठे लिखते हैं—*'झाँझि'*......।' (ख) *'गाजे'* शब्दसे जनाया कि मेघोंके समान गरज रहे हैं, यथा—*'गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥'*

टिप्पणी—२ (क) *'झाँझि बीन*.........' इति। जैसे गवैयेके साथ मृदङ्ग, मजीरा और सितार बजते हैं, वैसे ही यहाँ शहनाईके साथ झाँझ, वीणा और खँजरी बजते हैं। झाँझ, वीणा और डिंडिमी तीनोंके अन्तमें *'सुहाई'* शब्द देनेका भाव यह है कि जैसे सरसरागसे शहनाई बजती है वैसे ही सुन्दर झाँझ, वीणा और खँजरी बजती हैं। *'सरस राग बाजहिं'* देहलीदीपक न्यायसे दोनों ओर है। शहनाई गानेके स्थानमें है और झाँझ, वीणा तथा डिंडिमी गानके साथके बाजे हैं। (ख) *'पुरजन आवत अकनि बराता।'* इति। पूर्व जो कहा था कि *'हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥'* वही शब्द सुनकर बारातका आगमन जाना। *'मुदित सकल'* से भीतरका आनन्द कहा और *'पुलकावलि गाता'* से बाहरका, इस तरह भीतर-बाहर दोनोंका आनन्द कहा।

टिप्पणी—३ *'निज निज सुंदर सदन सँवारे।'*......' इति। (क) *'निज निज'* कहनेका भाव कि पहले अपना-अपना घर सजाया तब हाट-बाट-चौहट-पुरद्वारको सब लोगोंने मिलकर सँवारा। घर अपने-अपने हैं, इससे सदनके साथ निज-निज कहा और हाट-बाटादि सब राजाके हैं। (ख) *'सुंदर सदन सँवारे'* का भाव यह कि सबके घर तो प्रथमसे आप ही सुन्दर हैं, उनमें सजावटमात्र अर्थात् मङ्गल रचना करते हैं यथा—*'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥ तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥'* (१। २९३) (ग) *'पुर द्वारे'*—नगरके चारों ओर कोट (किला, दुर्ग) हैं, कोटके द्वार ही पुरद्वार हैं, यथा—*'पुर चहु पास कोट अति सुंदर।'* 'पुर और द्वार' यह अर्थ नहीं है, क्योंकि समस्त अवधवासियोंके घर और हाट-बाट-चौहट ये सब मिलकर ही तो 'पुर' होता है, इनसे पृथक् पुर कहाँ है; पुरद्वार पुरके बाहरके फाटक हैं, जिनसे पुरके भीतर प्रवेश करते हैं। यथा—*'अर्द्धराति पुरद्वार पुकारा।'* (४।६) (घ) ☞ यह चौपाई सूत्ररूप है, इसीकी व्याख्या आगे विस्तारसे करते हैं।

टिप्पणी—४—(क) *'गली सकल अरगजा सिंचाई'* इति। *'सकल'* कहनेका भाव कि राजमार्ग और घर-घरको जो गलियाँ गयी हैं, वे सब सिंचाई गयी हैं, केवल वही गलियाँ नहीं, जो बारातके आनेवाले मार्गकी हैं, जहाँसे बारात आनेको है, किंतु समस्त गलियाँ। [अरगजा—*'बीथीं सींची चतुरसम चौकें चारु पुराइ।'* (२९६) में *'चतुरसम'* के अर्थमें देखिये। सुगन्धित द्रव्ययुक्त जलसे गलियाँ सींची जाती थीं, यथा—*'मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥'* (१९४। ८), *'बीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई।'* (गी० १। १) *'सींचि-सुगंध रचैं चौकें गृह आँगन गली बजार।'* (गी० १। २) (ख) *'जहँ तहँ चौकें'* अर्थात् घर-घर, आँगन, गली और बाजार सभी जगह चौकें पूरी गयीं। (गी० १। २ उपर्युक्त) *'चारु'* कहकर जनाया कि चौकें मणियोंसे पूरी गयी हैं और बड़ी विचित्रताके साथ पूरी गयी हैं। यथा—*'चौकें चारु सुमित्रा पूरीं। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरीं॥'* (२। ८), *'रचहु मंजु मनि चौकें चारू।'* (२।६७) (ग) जानकीमङ्गलमें भी कहा है—*'घाट बाट पुरद्वार बजार बनावहिं। बीथी सींचि सुगंध सुमंगल गावहिं॥'* (११३), *'चौकें पूरें चारु कलस ध्वज साजहिं।'* दोहा २९६। ४ से दोहा २९६ तकसे मिलान कीजिये तो मालूम हो जायगा कि किस स्थानपर क्या सजावट है।]

बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥ ६॥
सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥ ७॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥ ८॥

दो०—बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबरपुरी निहारि॥ ३४४॥

शब्दार्थ—**पूग**=सुपारीका पेड़। **पूगफल**=सुपारी। **रोपना**=पौधेको एक स्थानसे उखाड़कर दूसरे स्थानपर लगाना। **आलबाल**=थाल्हा। **करनी**=कारीगरी, कला-कौशल।

अर्थ—बन्दनवारों, ध्वजा-पताकाओं-वितानोंसे बाजार ऐसा सजा है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ६॥ फलसहित सुपारी, केला और आम तथा मौलसिरी, कदम्ब और तमालके वृक्ष लगाये गये॥ ७॥ वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष (फलोंसे लदे होनेके कारण) पृथ्वीको छू रहे हैं। उनके थाले मणिमय हैं जो बड़ी उत्तम कारीगरी कला-कौशलके साथ बनाये गये हैं॥ ८॥ अनेक प्रकारके मङ्गल और मङ्गल-कलश घर-घर सजाकर रचे गये हैं। ब्रह्मा आदि देवता श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर श्रेष्ठ पुरीको देखकर सिहाते हैं॥ ३४४॥

टिप्पणी—१ (क) *'बना बजारु...'* इति। इससे सूचित किया कि बाजारकी शोभा सबसे अधिक है; क्योंकि बाजार बड़े भारी विस्तारसे है। बन्दनवार, ध्वजा-पताका, वितान आदि सबकी शोभा एकट्ठा देख पड़ती है। चारों ओर बन्दनवार हैं, ध्वजाके नीचे पताका है और पताकाके नीचे वितान है। *'तोरन केतु पताक बिताना'* अर्थात् इनसे पुरभर छाया हुआ है, यथा—*'ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू॥'* (२९६। ७) वितान अर्थात् चन्दोवा ताने गये हैं। (ख) *'सफल पूगफल कदलि रसाला'* इति। पुरवासियोंने सफल वृक्ष इस निमित्त लगाये कि चारों भाई-बन्धुओंसहित घर आकर इसी प्रकार फलें-फूलें। [इससे उन्होंने अपने हृदयका भाव दर्शित किया है कि हम इस शुभ कामनाके साथ आपका स्वागत करते हैं। बड़े-बड़े पेड़ फल-फूलसहित इस प्रकार तुरत-के-तुरत लगा नहीं सकते, पर यहाँ श्रीराम-प्रतापसे *'धरनी परसत'* लग गये। (प्र० सं०)] सुपारी, केला और आम ये फलवाले वृक्ष हैं, इसीसे इनको एक साथ लिखा। मौलसिरी, कदम्ब और तमाल ये फूलवाले वृक्ष हैं, अतः इनको उनसे अलग करके दूसरे चरणमें रखा। (ग) यहाँ *'रोपे'* मात्र लिखा, कहाँ इनको लगाया इसका वर्णन यहाँ नहीं किया, क्योंकि आगे अयोध्याकाण्डमें लिखेंगे, यथा—*'सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥'* (२। ६। ६) अर्थात् नगरभरमें चारों तरफ सफल वृक्ष रोपे गये।

टिप्पणी—२ (क) [*'लगे'* से जनाया कि ज्यों ही वे थालोंमें लगाये गये त्यों ही जम गये मानो यहीं उगे थे, दूसरे स्थानसे उखाड़कर नहीं लगाये गये थे। सुभग अर्थात् फूले-फले पल्लवित। (पाँ०)] पुनः, *'सुभग तरु'* का भाव कि सब वृक्ष सुन्दर हैं और *'सु+भग'* सुन्दर ऐश्वर्यसे युक्त हैं। वृक्षोंका ऐश्वर्य फल-फूल है, यथा—*'नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुररूख लजाए॥'* (२२७। ५) इसीसे पृथ्वीका स्पर्श करते हैं, अर्थात् जैसे सम्पत्ति पाकर परोपकारी पुरुष विनम्र होते हैं, वैसे ही ये फूल-फल (पल्लव) रूपी सम्पत्ति पाकर उसके भारसे नमित हो रहे हैं। यथा—*'फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहि सुसंपति पाइ॥'* (३। ४०) (ख) *'मनिमय आलबाल कल करनी'* इति। मणिमय कहकर जनाया कि जैसे ऐश्वर्ययुक्त वृक्ष हैं, वैसे ही उनके रहनेका स्थान मणिमय ऐश्वर्ययुक्त है। वृक्षकी शोभा फल-फूलसे कही और थालोंकी शोभा उसके बनावटद्वारा कही।

टिप्पणी—३ *'बिबिध भाँति मंगल······'* इति। (क) अनेक प्रकारके मङ्गल सजाये, यथा—*'कनक कलस तोरन मनिजाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥'* (२९६। ८) कलश सँवारकर रचे, यथा—*'कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहि धरे सजि निज निज द्वारे॥'* (७। ९) यहाँ यह नहीं बताया कि कलश कहाँ रखे गये, क्योंकि आगे उत्तरकाण्डमें श्रीरामजीके आगमनके समय लिखेंगे कि सबने अपने-अपने द्वारपर मङ्गल कलश रखे हैं, वैसा ही यहाँ जानो। (ख) *'सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब······'* इति। इस कथनसे जनाया कि श्रीअयोध्यापुरी ब्रह्मलोक तथा समस्त देवलोकोंसे कहीं अधिक सुन्दर है। पुरीकी सुन्दरता कहनेके लिये *'रघुबरपुरी'* कहा अर्थात् जैसे रघुवंशियोंमें श्रीरामजी श्रेष्ठ हैं वैसे ही समस्त लोकोंमें यह पुरी सर्वश्रेष्ठ है। रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीकी

पुरी है इसीसे ऐसी श्रेष्ठ है। (ग) ऊपर जो कहा था—'*निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥*' (३४४।४) उसकी व्याख्या यहाँतक हुई, अर्थात् उन सबोंके सजानेका वर्णन यहाँतक किया गया। यथा—'*गली सकल अरगजा सिंचाई*' यह '*बाट*' का वर्णन किया, '*बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥*' यह '*हाट*' का, '*सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥*' यह '*चौहट*' का और '*बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि*' यह '*निज निज सुंदर सदन सँवारे*' का वर्णन किया।

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदनु मन मोहा॥ १॥
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥ २॥
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथगृह छाए*॥ ३॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥ ४॥

अर्थ—उस समय राजाका महल (ऐसा) शोभित था (कि उसकी) रचनाको देखकर कामदेवका मन मोहित हो गया॥ १॥ मङ्गल, शकुन, मनोहरता, ऋद्धि (अन्न आदि), अष्ट सिद्धियाँ सुख और सम्पदा अर्थात् नवों निधियाँ (सभी) सुन्दर हैं॥ २॥ (ऐसा जान पड़ता है) मानो सब उत्साह स्वाभाविक ही सुन्दर शरीर धर-धर श्रीदशरथजीके घरमें छा रहे हैं॥ ३॥ श्रीराम-जानकीजीके दर्शनोंके लिये कहिये (तो भला) लालसा किसे नहीं होगी? अर्थात् सभीको होती है।

टिप्पणी—१ (क) '*तेहि अवसर*' अर्थात् जिस समय राजभवनकी रचना हुई उस समय। '*मदन मन मोहा*' कहनेका भाव कि कामदेव सबके मनको मोह लेता है सो उसके भी मनको राजभवनने मोहित कर लिया। ऊपर दिखाया कि ब्रह्मादि देवताओंके स्थानोंसे अयोध्यापुरी अधिक सुन्दर है, इसीसे ब्रह्मादि सिहाते हैं। अयोध्यापुरीसे राजभवन सुन्दर है, इससे कामदेव मोहित हुआ। [२९७। ४ में जो कहा था कि '*भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिश्व बिमोहन रचेउ बिताना॥*' वह शोभा वितानके सम्बन्धसे कही गयी थी और यहाँ रचनासे उसकी जो शोभा हो रही है उसे कहते हैं। वितान विश्वमोहन था और भूपभवनकी रचना त्रैलोक्यविजयी कामदेवके मनको मोहनेवाली है।] (ख) '*मंगल-सगुन*…' इति। '*सुहाई*' सबका विशेषण है। मङ्गलके समय मङ्गल-रचना की गयी है, इसीसे प्रथम '*मंगल*' को भी लिखा। पुनः, '*सगुन*' के पहिले '*मंगल*' को कहनेका भाव कि शकुनसे मंगल होता है, यथा—'*मंगलमूल सगुन भए नाना।*' (३३९।८) 'सो मंगल यहाँ पहलेसे ही प्राप्त है, शकुन पीछे हैं। इसी प्रकार ऋद्धि-सिद्धि सम्पदाके आनेसे मनोहरता होती है सो मनोहरता यहाँ पहलेसे ही मूर्तिमान् होकर प्राप्त है। '*संपदा सुहाई*' कहकर जनाया कि श्रीदशरथ-भवनकी सब सम्पदा न्यायसे प्राप्त की हुई है, इसीसे '*सुहाई*' है।

टिप्पणी—२ '*जनु उछाह सब सहज सुहाए।*…' इति। (क) '*सहज सुहाए*' का भाव कि सुन्दर रूप धारण कर लिया है यह बात नहीं है, किंतु वे सब स्वाभाविक ही सुन्दर हैं। (ख) '*तनु धरि धरि दसरथ गृह आए*' का भाव कि मंगल, शकुन, मनोहरता, ऋद्धि, सिद्धि, सुख और सम्पदा सभी उत्साह श्रीअवधपुरीमें तो घर-घर हैं, पर राजाके घरमें ये सब मूर्तिमान् होकर उपस्थित हैं। इस कथनके द्वारा पुरवासियोंके स्थानों-भवनोंसे राजाके स्थानकी और उनकी सम्पदासे राजाकी सम्पदाकी विशेषता दिखायी। (ख) 'यहाँ किसकी उत्प्रेक्षा की गयी है? उत्प्रेक्ष्य कौन है?' इसका उत्तर यह है कि राजाके भवनमें रचना की गयी है (जिसे देखकर मदन मोहित हो गया। यह जो कहा है उसीको यहाँ दिखाते हैं कि)। कारीगरने ऐसी रचना की है कि मंगल, शकुन आदि सभीकी मूर्तियाँ बना दी हैं। इसीसे यहाँ साक्षात्‌की उत्प्रेक्षा करते हैं कि ये मूर्तियाँ नहीं हैं, मानो मंगल आदिने साक्षात् रूप धारणकर यहाँ छावनी डाल दी है।

टिप्पणी—३ '*देखन हेतु राम बैदेही*…' इति। (क) '*जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दशरथ गृह छाए*'—इस वाक्यकी पुष्टिके लिये अब दशरथजीके भवनमें इन सबोंके तन धर-धरकर आनेका हेतु

*आए-छ०, को०रा०। छाए-१६६१ (नीचे कुछ और था ऊपर गाढ़ी स्याहीसे 'वाए' ऐसा बना है) १७२१, १७६२।

(कारण) कहते हैं। क्यों आये? वैदेहीजी और श्रीरामजीके दर्शनोंके लिये (आगेसे ही आकर जम गये हैं)। *'देखन हेतु राम बैदेही'* कहकर फिर इस वचनकी भी पुष्टिके लिये कहते हैं, *'कहहु लालसा होहि न केही।'* अर्थात् इनका जब आवाहन किया जाता है तब ये आते हैं, परंतु यहाँ बिना आवाहनके अपने लालसाके कारण स्वयं ही आये हैं। [प० प० प्र०—यहाँ **'बैदेही'** से आदिशक्ति और *'राम'* से शक्तिमान् **'रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि'** परमात्माको सूचित किया है।] (ख) यहाँतक पुरुषोंका कृत्य वर्णन किया गया, आगे स्त्रियोंका कृत्य कहते हैं।

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥ ५॥
सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती॥ ६॥
भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥ ७॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी॥ ८॥

दो०—दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥ ३४५॥

शब्दार्थ—**'बिलासिनि'**='सुन्दरी, युवा स्त्री, कामिनी, विहार करनेवाली, आनन्द देनेवाली, अत्यन्त छबियुक्त स्त्री। **भारती**=सरस्वती।

अर्थ—सुहागिनि स्त्रियाँ टोली-की-टोली मिल-मिलकर चलीं। वे अपने छबिसे मदन (कामदेव) की अत्यन्त छबीली स्त्री रतिका निरादर कर रही हैं॥ ५॥ सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों और आरतीको सजाये हुए गा रही हैं, मानो सरस्वती (ही) बहुत-से वेष धारण किये हुए गा रही हैं॥ ६॥ राजाके महलमें कोलाहल (शोर) मच रहा है। उस समय और सुख (अथवा समयके सुख) का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ७॥ श्रीकौसल्याजी आदि सब श्रीरामजीकी माताएँ प्रेमके विशेष वश हो देहकी दशा (अर्थात् सुध) भूल गयी हैं॥ ८॥ उन्होंने श्रीगणेशजी और त्रिपुरारि श्रीशिवजीका पूजन करके ब्राह्मणोंको बहुत दान दिया और परम आनन्दित हैं, मानो परम दरिद्री (अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष) चारों पदार्थ पाकर (आकस्मिक प्राप्त हो जानेसे) आनन्दित हैं॥ ३४५॥

टिप्पणी—१ (क) *'जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि'* इति। यहाँ शोभाके वर्णनका प्रकरण चल रहा है। यूथ-यूथ मिलकर चलना यह भी स्त्रियोंकी शोभा है। (स्त्रियाँ प्राय: सदा कई-कई मिलकर ही चला करती हैं। साथमें गानकी भी शोभा होती है) अत: यूथ-यूथका मिलकर चलना कहा। (*'जूथ जूथ'*—२९८। १), *'जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि'* में देखिये।) परिछन-आरतीमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही बुलायी जाती हैं, यथा—*'रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं।'* (३१७ छन्द) इसीसे सुहागिनोंका ही चलना कहा। (ख) *'निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि'* इति। विलासिनिका भाव कि कामकी स्त्री जो सबसे विशेष छबियुक्त है। यह शब्द **'लस कान्तौ'** धातुसे बना है। विलासिनी=कान्ति-(छबि) वाली स्त्री। यहाँ 'पञ्चम प्रदीप अलङ्कार' है, क्योंकि *'सुआसिनि'* उपमेयद्वारा *'मदन बिलासिनि'* उपमानका निरादर कहा गया है। [निरादर होनेके कारण ही *'मदन'* का सम्बन्ध दिया गया। भाव कि रतिका अपने छबिका मद जाता रहा। (ग) प० प० प्र०—पूर्व बारातकी तैयारीके समय कहा था कि *'बिधुबदनीं मृग सावकलोचनि। निज सरूप रति मान बिमोचनि।'* (२९७। २) अर्थात् रतिको जो अपने लावण्यका मद था उसका छूटना वहाँ कहा था और यहाँ *'निदरहिं मदन बिलासिनि'* कहकर जनाया कि इस समय अपने विलासोंद्वारा उसका निरादर करती हैं, अर्थात् मानो उससे कह रही हैं कि ऐसा विभव-विलास क्या तेरे भाग्यमें कभी भी लिखा है।]

टिप्पणी—२ (क) *'सकल सुमंगल'*, यथा—*'हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥ अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुर मंजरि तुलसि बिराजा॥'* (१। ३४६) ये सब मङ्गल हैं। (ख) *'गावहिं जनु बहु बेष भारती'* इति। गान मधुर है, अक्षर स्पष्ट और शुद्ध हैं; इस भावसे सरस्वतीके समान कहा। सुहागिनें बहुत हैं, इसीसे सरस्वतीके बहुत वेष कहे। (ग) *'भूपति भवन कोलाहलु होई'* इति। बहुत-

सी स्त्रियाँ गान कर रही हैं इसीसे कोलाहल मच रहा है। [सुवासिनियोंका मधुर गान, निशानादिका भारी शब्द जिससे अपना-पराया कुछ नहीं सुन पड़ता, इत्यादि सब शोर उत्सवके आनन्दका 'कोलाहल' है। उत्सवमें गान आदिसे आनन्द छा रहा है। (प्र० सं०) सभी आनन्दोत्साहमें भरे हैं। उसी आनन्दोत्साहका यह कोलाहल है।] (घ) *'कौसल्यादि राम महतारी'* कहनेका भाव कि सब माताएँ कौसल्याजीके समान श्रीरामको अपना पुत्र जानती हैं, इसीसे सब श्रीरामजीके प्रेमके वश हैं। (परछनके लिये प्रथम माताओंको आगे चलना चाहिये था सो वे प्रेमके विवश हैं।)

टिप्पणी—३ *'दिए दान बिप्रन्ह'''* इति। (क) गणेशजी प्रथमपूज्य हैं, इसीसे प्रथम उनका पूजन करके तब शिवजीकी पूजा की। (ख) *'प्रमुदित परम दरिद्र जनु'''* इति। परम दरिद्र दुःखकी अवधि (सीमा) है, यथा—*'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।'* (७। १२१। १३) और चारों पदार्थोंकी (आकस्मिक एक साथ) प्राप्ति सुखकी सीमा है। (ग) ब्राह्मण, गणेश और शिवजीके पूजनके पश्चात् *'प्रमुदित परम दरिद्र जनु'''* कहनेसे सूचित होता है कि सब ब्राह्मणों और देवताओंने चारों पुत्रोंको आशीर्वाद दिया, यही चारों पदार्थोंकी प्राप्ति है। जैसे दरिद्रको चारों पदार्थोंकी प्राप्तिसे सुख मिले वैसा ही सुख माताओंको देवताओंके आशीर्वादसे मिला। [देवताओंका आशीर्वाद देना अन्यत्र भी कहा गया है, यथा—*'अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥'* *'परम दरिद्र'* के सम्बन्धसे *'प्रमुदित'* कहा। दरिद्र मुदित होता, परम दरिद्र परम मुदित होता है। *'पदारथ चारि'* (३०९। २) और दोहा ३२५ देखिये।]

प० प० प्र०—उत्प्रेक्षाका भाव यह है कि जैसे परमदरिद्र कभी भरपेट अन्न न मिलनेसे शरीररक्षणार्थ वस्त्र आदि न होनेसे परम दुःखी रहता है, वैसे ही माताओंने श्रीरामवियोगमें अन्न त्याग दिया था, सुन्दर वस्त्रों-आभूषणों आदिका पहनना छोड़ दिया था, सदा चिन्तामें मग्न रहती थीं, इत्यादि परम दुःख भोग रही थीं। जैसे बुद्धिमान् परमदरिद्र धन-प्राप्तिके लिये परम तपस्याका आश्रय लेता है, यथा—**'धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्। उभावप्सु प्रवेष्टव्यौ कण्ठे बध्वा दृढां शिलाम्॥'** वैसे ही माताएँ विविध देवताओंको मनाती रहती थीं। दरिद्र तो केवल धनके लिये मनाता है, पर धर्म, काम, मोक्ष भी उसे मिल जाय तो कैसा अवर्णनीय आनन्द उसे होता है। वैसे ही माताओंको तो श्रीरामविवाहकी ही आशा थी और इस समय सुना कि चारों भाइयोंका विवाह हो गया, चारों पुत्र चारों बहुओंसहित आ रहे हैं अतः इनको अवर्णनीय सुख हुआ।

मोद* प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता॥ १॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥ २॥
बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥ ३॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥ ४॥
अक्षत अंकुर लोचन लाजा। मंजुर† मंजरि‡ तुलसि बिराजा॥ ५॥

शब्दार्थ—**अच्छत** (अक्षत)=बिना टूटा हुआ चावल (यही देवपूजनके काममें आता है, खण्डित नहीं)। **अंकुर**=अँखुआ। जौ (यव), गेहूँ, चना, मूँग आदिको फुलाते हैं जिससे अंकुर निकलते हैं, ये माङ्गलिक द्रव्य माने जाते हैं। जवारे। लोचन (गोरोचन)—पीले रंगका एक प्रकारका सुगन्धित द्रव्य जो गौके हृदयके पास पित्तसे [अथवा किसी-किसी गायके भ्रूमध्यसे-(प० प० प्र०)] निकलता है। यह अष्टगन्धके अन्तर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है। कभी-कभी यह लड़कोंकी घोटीमें भी पड़ता है और इसका तिलक लगाया जाता है।-*'चुपरि उबटि अन्हवाइ कै नयन आँजे, चिर रुचि तिलक गोरोचन कियो है।'* (गीतावली १। १०। १)। तान्त्रिक इसे मङ्गलजनक, कान्तिदायक, दरिद्रतानाशक और वशीकरण करनेवाला मानते हैं—(श० सा०)। भोजपत्रादिपर इससे यन्त्रादि बनाये और लिखे जाते हैं।

* प्रेम—को० रा०, पं० रामकुमार। मोद—१६६१, १७०४, १७२१, छ०। † मंजुल—१७२१, १७६२। को० रा० मंजुर—१६६१, १७०४। ‡—मंगल छ०।

यह बहुत हलका पर बहुत मँहगा होता है। (प० प० प्र०) कहते हैं कि स्वातिबुन्द गौके कानमें पड़कर गोलोचन हो जाता है। 'रोचन' का अर्थ 'रोरी' भी किया गया है। **लाजा** (सं०)=लावा, खील, भूनकर फुलाया हुआ धान। **मंजुर**=मंजुल, सुन्दर। ***मंजरि*** (मंजरी)—तुलसी, आम आदि कुछ विशिष्ट पौधों और वृक्षोंमें फूलों या फलोंके स्थानमें एक सींकेमें लगे हुए बहुत-से दानोंका समूह।

अर्थ—सब माताएँ मोद-प्रमोदके विशेष वश हैं। उनके शरीर शिथिल पड़ गये, चरण चलते नहीं॥ १॥ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंके लिये सब माताएँ अत्यन्त अनुरागमें भरी हुई परिछनका सब साज (सामग्री) सजने लगीं॥ २॥ अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। श्रीसुमित्राजीने आनन्दपूर्वक मङ्गल (द्रव्य) सजाये॥ ३॥ हल्दी, दूब (दूर्वादल), (गायका) दही, (आम आदिके) पल्लव (पत्ते), फूल, पान (का पत्ता) सुपारी आदि जो मङ्गलकी मूल (वस्तुएँ) हैं॥ ४॥ अक्षत, अंकुर, गोरोचन, लावा और सुन्दर (नवीन) मंजरीयुक्त तुलसीदल सुशोभित हैं अर्थात् सजाई गयी हैं॥ ५॥

नोट—१ (क) पं० रामकुमारजी ***'प्रेम प्रमोद बिबस'*** पाठ देते हैं और उसके अनुसार भाव कहते हैं कि माताएँ प्रथम प्रेमके वश हुईं, यथा—***'प्रेम बिबस तन दसा बिसारी।'*** फिर उनका प्रमुदित होना कहा, यथा—***'प्रमुदित परम दरिद्र जनु'''।'*** अब दोनोंके बस होकर चलीं। (ख) ***'मोद प्रमोद बिबस'*** इति। यहाँ मोद और प्रमोद दोनों शब्द आये हैं। दोनोंका अर्थ साधारणतया एक ही है और ये दोनों शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। पर दोनों एक साथ आये हैं, इससे एकसे दूसरेमें अधिक (प्र=प्रकर्ष) आनन्द जनाते हैं। यह पाठ पंजाबीजी, रा० प्र० ने भी दिया है। पंजाबीजीका मत है कि अन्य सम्बन्धियोंके दर्शनके लिये 'मोद' अर्थात् आनन्द है और श्रीरामदर्शनके लिये परम (महान्) आनन्द है। बाबा हरिहरप्रसादजीका मत है कि पुत्रोंसे मिलनेके लिये मोद और नयी-नयी बहुओं-दुलहिनोंको देखनेके लिये 'प्रमोद' है। दोनों आनन्दोंमें मग्न हैं। कोई-कोई 'मोद-प्रमोद' का अर्थ 'सुख और आनन्द' अथवा 'आनन्द, सुख' करते हैं। अधिकता जनानेके लिये भी दो पर्याय शब्द एक साथ बोले जाते हैं, वैसे ही यहाँ ***'मोद-प्रमोद'*** से महान् आनन्द' का अर्थ ले सकते हैं। (ग) ***'चलहिं न चरन'''*** ' भाव कि सब (मङ्गल) वस्तुए सजानेको हैं, पर चरण नहीं चलते, सब अङ्ग शिथिल हो गये हैं, इसीसे परछनका साज नहीं सजते बनता।

नोट—२ (क) ***'रामदरस हित'''*** ' इति। ***'राम दरस हित'*** कहनेका भाव कि मोद-प्रमोद-वश सब शरीर शिथिल हो गये हैं, परछनका साज सजानेमें विलम्ब हो रहा है, परंतु श्रीरामजीके दर्शनके अनुरागके बलसे सब मिलकर शीघ्रातिशीघ्र साज सजने लगीं। ***'अति अनुरागी'*** कहनेका भाव कि सब भाइयोंके दर्शनका 'अनुराग' है और श्रीरामजीके दर्शनोंका 'अति अनुराग' है। इसीसे सब मिलकर सजने लगीं। (ऊपर ***'प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि'*** कहा, उसके सम्बन्धसे यहाँ ***'अति अनुरागी'*** कहकर जनाते हैं कि माताओंको चारों पदार्थोंकी प्राप्ति भी श्रीरामदर्शनके आगे तुच्छ लगती है। पुनः जैसे पुरवासी बारातियोंको श्रीरामदर्शनके लिये निर्भर हर्ष था, वैसे ही माताओंको है। यथा—***'सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लषनु दोउ बीर॥'*** (३०० परछनका साज स्वयं ही सब रानियाँ सजने लगीं, यह अति अनुरागका धर्म है। यहाँ सबका एकट्ठा (परछन साज सजाना) कहकर आगे श्रीसुमित्राजीका और सब रानियोंका पृथक्-पृथक् सजाना कहते हैं।

(ख) ***'बिबिध बिधान बाजने बाजे'*** इति। विविध प्रकारके बाजे प्रथम लिख आये हैं, यथा—***'झाँझि बीन डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥'*** (इनके अतिरिक्त निशान, पणव, भेरी और शङ्ख भी कहे गये हैं, यथा—***'हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि'''।'*** इनके अतिरिक्त ताशा, मृदङ्ग, रबाब, पखावज आदि भी ***'बिबिध बिधान'*** में आ सकते हैं। जो भी उस समय बज रहे हों उन सबोंका ग्रहण इससे हो गया)। (ग) ***'मंगल मुदित सुमित्रा साजे'*** कहकर जनाया कि श्रीसुमित्राजी मङ्गल-द्रव्य तथा परछनसाज सजानेमें परम प्रवीणा हैं। इसीसे जब-जब मङ्गल सजानेका काम पड़ता है तब-तब इन्हींका नाम वहाँ सुना जाता है, यथा—***'चौकें चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥'*** (२। ८। ३) बैजनाथजी

लिखते हैं कि 'श्रीसुमित्राजीके सजानेका कारण यह है कि जब रावणने यह सुनकर कि कौशल्याके पुत्रसे मेरी मृत्यु है तब वह लग्न तैलादि चढ़ जानेपर, उनको हर ले गया और राघव मत्स्यको सौंप आया। जब व्याहके दिन राजा दशरथ गये तब राजाने कौशल्याका हाल कहकर अपनी छोटी कन्या सुमित्राका विवाह उनसे कर दिया। तत्पश्चात् गरुड़को भेजकर राजा दशरथने राघव मत्स्यके यहाँसे, उसको गाफिल पा, वह मंजूषा जिसमें कौशल्याजी बंद थीं मँगाया। तब कौशल्याजीसे विवाह हुआ। यद्यपि सब बड़ाईका अधिकार इन्हींको रहा तथापि इतिफाकन (अकस्मात्) प्रथम पाणिग्रहण तो सुमित्राजीका ही हुआ। इससे देवपूजन-कार्यमें अधिकार इन्हींको रहा। यह पौराणिक कथा रामरक्षाके तिलकमें पाया है।' [श्रीसुमित्राजी ही ऐसे कार्योंमें अग्रसर होती हैं, इससे उनकी सत्त्वप्रधान रजोगुणी वृत्ति ज्ञात होती है। (प० प० प्र०)] (घ)—परिछन साज सब रानियोंने सजाया और मङ्गल सुमित्राजीने सजाये, इससे जनाया कि 'परिछन' और 'मङ्गल' भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। परछनका साज आरती है, 'मङ्गलसाज' अनेक द्रव्य हैं। यथा—*'सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि। चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥'* मङ्गल द्रव्यके नाम आगे लिखते हैं। [(ङ) *'हरद दूब दधि पल्लव'* ये भिन्न-भिन्न रंगके मङ्गल द्रव्य हैं। हल्दी पीली, दूब हरी, दधि श्वेत, आम्रपल्लव नीले हैं। फूल रंग-विरंगके हैं। पान हरे तथा पीत। सुपारीका रंग भूरा-सा होता है। (च) *'तुलसि बिराजा'* का भाव कि सब मङ्गल द्रव्य राजते (शोभित) हैं और तुलसी मञ्जरी विशेष शोभित है अर्थात् सब मङ्गल द्रव्योंसे श्रेष्ठ है, क्योंकि श्रीरामजीको प्रिय है, यथा—*'रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी।'* (३१। १२)

छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन* जनु नीड़ बनाए॥ ६॥
सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥ ७॥
रची आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥ ८॥

दो०—कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिये मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात॥ ३४६॥

शब्दार्थ—**छुहे**—छुहना=रँगा जाना। **छुहे**=रँगे हुए। विवाह आदि मङ्गल कार्योंमें कलश रंग-विरंगके रँगे जाते हैं, ऐपनसे पोते जाते हैं, और उनपर गोबरसे भी खाने बनाये जाते हैं, गोठे जाते हैं, बीच-बीचमें पक्षी आदि भी बनाये जाते हैं; ये खूब चित्रित होते हैं, इन्हीं रँगे हुए चित्रित कलशोंको 'छुहे' कहते हैं। **पुरट**=सोनेके। **सकुन** (शकुन)=पक्षी। शकुन पक्षीमात्रको कहते हैं, यथा—*'सकुनाधम सब भाँति अपावन।'* (७।१२३) परंतु यहाँ घट उपमेयके सम्बन्धसे 'बया पक्षी' अर्थ अभिप्रेत है, क्योंकि इसके घोंसले बहुत सुन्दर और लंबे होते हैं तथा उनका मुँह छोटा और पेट बड़ा होता है, जैसे घटका आकार हो। **नीड़**=घोंसला, खोंता। **पल्लवित**=रोमाञ्चयुक्त। यथा—*'कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह। थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥'* (२।१५२)

अर्थ—गोंठे हुए चित्रित सोनेके घड़े स्वाभाविक ही सुन्दर हैं, मानो कामदेवरूपी बया पक्षीने (अपने रहनेके लिये) घोंसले बनाये हैं॥ ६॥ शकुन और सुगंध (जैसे कि गुलाब, केवड़ा, चन्दन, कपूर, कस्तूरी, अतर आदि सुगन्धित द्रव्य) का वर्णन नहीं हो सकता। अर्थात् वे अगणित प्रकारके हैं, इससे कहते नहीं बनता)। सब रानियाँ सब मङ्गल सजा रही हैं॥ ७॥ बहुत विधानकी आरतियाँ रची हैं और हर्षित होकर सुन्दर मधुर मङ्गल गान कर रही हैं॥ ८॥ सोनेके थाल मङ्गलोंसे भरकर माताएँ कमल-समान हाथोंमें लिये हुए आनन्दपूर्वक परिछन करने चलीं, उनके शरीर पुलकसे फूले हुए हैं॥ ३४६॥

---

* सकुच—१७०४, १७६२। सकुन—१६६१ ('च' के निचले भागपर हरताल है। सम्भवतः 'च' को 'न' बनानेके लिये उतने अंशपर हरताल दिया गया है), १७२१, छ०, को० रा०।

टिप्पणी—१ (क) *'छुहे पुरट घट'''* इति। घटकी शोभा दो प्रकारकी कहते हैं। एक तो वे *'सहज सुहाए'* हैं अर्थात् उनका बनाव सुन्दर है, दूसरे वे रंजित हैं, उनमें रचना की गयी है, इस चित्रित रचनासे भी सुन्दर हैं। (मणि, माणिक्य, मोती आदिसे उनमें चित्रकारी की गयी है। यथा—*'कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥'* (७। ९) *'बिचित्र रचना'* 'छुहे' से सूचित की। (ख) रचना सुन्दर है, इसीसे कामदेवके रहनेकी उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो कामदेवरूपी बया पक्षीने अपने रहनेके लिये झोंझ बनाये हैं कि इनमें बैठकर छिपे-छिपे श्रीरामजीका दर्शन करूँगा, संकोचवश प्रकट नहीं देख सकता (क्योंकि लोग कहेंगे कि अरे! यही कामदेव है जिसके शोभा-सौन्दर्यकी ब्रह्माण्डभरमें वाह-वाह होती रही है, यह तो कुछ भी सुन्दर नहीं है। श्रीरामजी *'काम सत कोटि सुभग तन'* हैं, इसीसे वह प्रत्यक्ष होनेमें सकुचाता है।) [(ग)—यहाँ गोबरसे छुहे हुए स्वर्णके कलशोंमें जो चौकोर खाने बने हैं वे ही उत्प्रेक्षाके विषय हैं। पक्षी रहनेके लिये घोंसला बनाते ही हैं, परंतु कामदेव पक्षी नहीं है। यहाँ प्रौढ़ोक्तिद्वारा यह कविकी कल्पनामात्र 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। सभाकी प्रतिमें *'सकुच'* पाठ है। परंतु *'सकुच'* शब्दसे उपमामें रोचकता नहीं आती और मदन पक्षी नहीं है, जिसने सकुचाकर घोंसला बनाया हो। इससे *'सकुन'* पाठ ठीक है। (वीरकविजी) (घ) पाँड़ेजीका मत है कि 'सोनेके घट ऐसे बनाये कि मानो पेट बड़ा, मुँह छोटा देख काम उनमें सकुच करके छिप बैठा है—इस डरसे कि श्रीराम-जानकीजीकी सुन्दरताके सामने उसकी सुन्दरता मंद पड़ जायगी।']

टिप्पणी—२ (क) *'मंगल सकल सजहिं सब रानी'* इति। पूर्व कह आये कि *'मंगल मुदित सुमित्रा साजे'* और यहाँ सब रानियोंका मङ्गल सजना कहते हैं। इससे जनाया कि श्रीसुमित्राजी मङ्गल सजानेमें परम प्रवीणा हैं, उन्होंने प्रथम सजाया, पीछे और सब रानियोंने भी देखकर वैसे ही सब मंगल सजाये। *'सकल'* अर्थात् जितने और जो-जो मङ्गल द्रव्य श्रीसुमित्राजीने सजाये वही सब सबने सजाये। (ख) *'रची आरती'* कहकर जनाया कि आरती बहुत सुन्दरताके साथ सजायी गयी है। (ग) *'बहुत बिधाना'* इति। बहुत प्रकारकी हैं अर्थात् पञ्चवर्त्तिका, सप्तवर्त्तिका, दशवर्त्तिका आदि। (आरती बहुत प्रकारकी होती है। एक सम-बत्तियोंवाली अर्थात् ४, ६, ८ इत्यादि बत्तियोंकी, दूसरी विषम अर्थात् ३, ५, ७ इत्यादि बत्तियोंवाली; फूलबत्ती, सीधी बत्ती आदि भी कुछ प्रकार हैं। घृत, कपूर आदिकी बत्ती। और भी बहुत विधानकी आरतियोंका उल्लेख नारद-पञ्चरात्रमें कहा जाता है।) (घ) यहाँ क्रम दिखाते हैं—प्रथम सुमित्राजीने मङ्गल साजे, फिर सब रानियोंने। मङ्गल सजनेके पश्चात् आरती सजी, जब आरती भी सज गयी तब मधुर गान करने लगीं। पूर्व जो कहा था कि *'परिछन साजु सजन सब लागीं'* उसका अर्थ यहाँ स्पष्ट किया। परिछन अर्थात् आरती सजने लगीं। (परिछनमें आरती भी सम्मिलित है, पर सब आरती परिछन नहीं हैं। परिछनमें और भी कुछ कृत्य होते हैं जो पूर्व लिखे गये हैं।)

टिप्पणी—३ *'कनक थार भरि मंगलन्हि'''* इति। (क) मङ्गल द्रव्य गिनाये, मङ्गलोंका सजाना कहा। अब यहाँ सजानेका स्वरूप कहते हैं। वह यह कि थालमें सब मङ्गल-द्रव्य भरपूर रखे। *'कमल करन्हि'* से जनाया कि हाथ कमलसमान सुन्दर हैं, हाथोंके ऊपर सुवर्णके थालोंकी शोभा है और थालोंके ऊपर मङ्गल द्रव्योंकी शोभा है। *'चलीं मुदित'''*—श्रीरामजीके दर्शनके लिये अत्यन्त अनुराग है, इसीसे मुदित हैं कि चलकर अब उनको देखेंगी, यही समझकर सर्वाङ्ग पुलकावलीसे छा गया। यथा—*'सबकें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिये नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥'* (३००) (पुरवासियोंको दो ही भाइयोंके दर्शनका उत्साह था, क्योंकि दो भाई साथ थे। और माताओंको तो चारों भाइयों और चारों बहुओंके दर्शनका उत्साह है, तब इनकी यह दशा क्यों न हो?) यहाँतक स्त्रियोंके कृत्यका वर्णन किया।

☞ मिलान कीजिये—*'मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना। भरि थार आरति सजहिं सब सारंग सावक लोचना।'* (जा० मं० ११५)

धूप धूम नभु मेचकु भयेऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयेऊ॥ १॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं॥ २॥
मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥ ३॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥ ४॥
दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥ ५॥

शब्दार्थ—'ठयेऊ'=किया, यथा—*'सोरह जोजन मुख तेइँ ठयऊ'* (सु०), *'जबते कुमति कुमत जिय ठयऊ।'* (२। १६२)। =ठहर गये=स्थित हो गये, जम गये, छा गये। **घमंडु**=घुमड़कर, उमड़कर। **बलाक**=बगुला। **पाकरिपु**=इन्द्रका नाम है। वामनपुराणमें पाक नामक असुरके इन्द्रद्वारा मारे जानेकी चर्चा है। देवासुर-संग्राममें भी इसका नाम आया है। **पाकरिपु चाप**=इन्द्रधनुष। **'पाकः'**—देवासुर-संग्राममें जम्भासुरके मारे जानेपर उसके भाई-बन्धु नमुचि, बल और पाक झटपट रणभूमिमें आ पहुँचे। पाकने अपने बाणोंसे मातलि (सारथि) और उसके एक-एक अङ्गको छेद डाला। इन्द्रकी सेना रौंद डाली। इन्द्रने अपने आठ धारवाले वज्रसे बल और पाकका सिर काट डाला। (भा० ८। ११)

अर्थ—धूपके धुएँसे आकाश ऐसा काला हो गया मानो सावनके बादल घुमड़-घुमड़कर आ ठहरे हैं॥ १॥ देवता कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएँ बरसा रहे हैं, मानो बगुलोंकी पाँति है, जो मनको खींच लेती है॥ २॥ सुन्दर मणियोंसे युक्त बन्दनवार ऐसे मालूम होते हैं मानो इन्द्रधनुष सजाये गये हैं॥ ३॥ स्त्रियाँ अटारियोंपर प्रकट होती और छिपती (ऐसी जान पड़ती) हैं मानो सुन्दर चञ्चल बिजलियाँ दमक रही हैं॥ ४॥ नगाड़ोंकी ध्वनि बादलोंका घोर गर्जन है। भिक्षुक पपीहा, मेंढक और मोर हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'धूप धूम नभु……'* इति। श्रीअयोध्यापुरीका वर्णन करके अब अयोध्यापुरीके ऊपर आकाशकी शोभा कहते हैं। यहाँ (का रूपक) कह रहे हैं। वर्षामें मेघ मुख्य हैं। इसीसे मेघोंका आगमन कहते हैं, यथा—*'बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥'* (४। १२), *'देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घन घट्टा॥'* (लं०) सावनके मेघ श्याम होते हैं, इसीसे सावनके मेघोंकी उपमा दी। *'घन घमंडु जनु ठयेऊ'*=मेघोंने मानो घमण्ड किया अर्थात् घिर आये हैं। [रा० प्र० कार लिखते हैं कि इस उपमासे जनाया कि 'सावनमें जैसे तृण भी सुखी होता है वैसे ही इस समय चराचरको सुख है। तृणका भाव कि अति दीन-दुःखी जैसे सूखे उकठे काठ भी सावनकी वर्षा पाकर हरे हो जाते हैं वैसे ही जो पूर्वानुरागी रहे अर्थात् सीताराम-दर्शनाभिलाषी वा जो अवधवासी विरही रहे, वे युगल चम्पकवरण और घनश्यामसे हरे हुए।']

टिप्पणी—२ (क) *'सुरतरु सुमन माल सुर……'* इति। सुरतरुके फूलोंकी उपमा बलाककी दी, इससे सूचित हुआ कि कल्पवृक्षके फूल श्वेत होते हैं और बड़े-बड़े भी। *'बरषहिं'* कहकर जनाया कि देवता फूल-मालाओंकी अखण्ड वृष्टि कर रहे हैं। जब देवता बहुत प्रसन्न होते हैं तब कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करते हैं, यथा—*'जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान। सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥'* (३२४) *'सुरतरु-सुमन माल……'* (यहाँ), *'भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल। सुर स्वारथी सराहि कुल बरसत सुरतरु फूल॥'* (२। ३०८) (विशेष दो० ३२४ में देखिये।) (ख) *'मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं'* इति। (फूलमालाओंकी अखण्ड वृष्टिसे उनकी एक पंक्ति बन जाती हैं और बगुले भी एक पंक्ति बाँधकर चलते हैं। ऐसा दीखता है मानो बगुलोंकी पंक्ति-की-पंक्ति मेघोंमें उड़ी हुई चली जा रही है)। भाव यह है कि फूल-मालाओंकी ऐसी सुन्दर शोभा हो रही है कि मन खिंचकर उसे देखनेमें लग जाता है।

टिप्पणी—३ (क) *'मंजुल मनिमय बंदनिवारे'* इति। *'मनिमय'* कहनेका भाव कि बंदनवार आमके पत्तोंके होते हैं, पर ये बन्दनवार मणिमय हैं। (मणियोंके ही आम्र-पल्लव बनाये गये हैं। श्रीजनकपुरमें लिख आये हैं, इसीसे यहाँ नहीं लिखा। यथा—*'सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि। हेम बौरु*

मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि॥' (२८८) वैसा ही यहाँ है। नीलमको करोंदकर पत्ते बनाये हैं, सोनेके बौर, मरकतमणिकी घौर, रेशमकी डोरीमें गुँथे—पिरोये हैं। इन्द्रधनुषमें सात रंग होते हैं—बनफशयी, नीलका-सा, नीला, हरा, नारङ्गीका-सा, पीत और लाल। इन्द्रधनुषकी उपमा देकर जनाया कि ये सब रंग बंदनवारोंमें हैं, बंदनवार अनेक रंग-बिरंगकी मणियोंसे बने हैं।) (ख) '***मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे***' इति। भाव कि धनुष शत्रुके मारनेके लिये सँवारा जाता है, (अतः यहाँ इन्द्रके लिये 'पाकरिपु' नाम दिया) बंदनवार ऐसे दीखते हैं मानो इन्द्रने पाक दैत्यके मारनेके लिये धनुष सजाये हैं। [वर्षाका यहाँ रूपक चल रहा है और वर्षाकालमें इन्द्रधनुष प्रायः दिखायी देता ही है। अतः यहाँ इन्द्रधनुष भी कहा गया। यह सात रंगोंका बना हुआ अर्द्धवृत्त सूर्यके विरुद्ध दिशामें आकाशमें देख पड़ता है। जब सूर्यकी किरणें बरसते हुए जलसे पार होती हैं तब उनकी प्रतिछायामें यह इन्द्रधनुष बनता है।] (ग) इन्द्रधनुषकी उपमा देकर सूचित किया कि श्रीअयोध्यापुरीके घर बहुत ऊँचे हैं (चौदह-सोलह मंजिल-मरातबेके हैं। सतखण्डे, अठखण्डे तो साधारण ही हैं)। इन्द्रधनुष बहुत ऊँचेपर उदय होता है और बंदनवार घरोंके दरवाजोंके ऊपरकी चौखटमें लगाये जाते हैं। (घ) यहाँ बंदनवारोंकी शोभामें तीन बातें, 'मंजुल' 'मणिमय' और 'पाकरिपुचाप', तीन भावोंसे कही गयीं। बनावटमें 'मंजुल' हैं, स्वरूपमें मणिमय हैं और उपमामें इन्द्रधनुषके समान हैं।

नोट—१ वर्षाकालमें इन्द्रधनुष भी प्रायः दिखायी देता है। पर किष्किन्धामें वर्षाके वर्णनमें श्रीरामजीने इसका नाम भी न लिया, कारण यह कि इन्द्रधनुषका देखना और दिखाना दोनोंहीका निषेध शास्त्रोंमें किया गया है और यहाँ केवल रूपक बाँधा गया है, इससे रूपकमें कह दिया गया। इसी प्रकार लङ्काकाण्डमें भी रूपकहीद्वारा कहा गया, यथा—'***जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही***' (६। १०० छंद)

टिप्पणी—४ '***प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर***''' इति। [(क) बारम्बार कोठेपर आना-जाना खिड़कियों और दरवाजोंसे दिखायी देता है। सामने दिखायी पड़ना प्रकट होना है और ओटमें पड़ जाना छिपना है। बिजली बड़ी शीघ्रताके साथ चमककर गायब हो जाती है, इसी तरह वे दिखायी दीं नहीं कि छिपीं। (प्र० सं०)] (ख) '***प्रगटहिं दुरहिं***' का भाव कि स्त्रियोंका स्वभाव चञ्चल होता है, वे स्थिर नहीं रहतीं। '***अटन्ह पर भामिनि***'—श्रीअयोध्यापुरीकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़कर बारात देखती हैं कि कहाँतक आयी है। (इनके शीघ्र-शीघ्र प्रकट होने और तुरत छिपनेकी उत्प्रेक्षा बिजलीकी दमकसे करते हैं) बिजली मेघके पास चमकती है; और मेघ आकाशमें बहुत ऊँचाईपर होते हैं। इधर श्रीअयोध्यापुरीकी अटारियाँ भी बहुत ऊँचाईपर हैं, आकाशको मानो चूम रही हैं, यथा—'***धवल धाम ऊपर नभ चुंबत।***' (७। २७) उतनी ऊँचाईपर स्त्रियाँ हैं। स्त्रियोंके आभूषण और देहकी द्युति विद्युत्के समान है, यथा—'***जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि॥***' (२९७। १) 'भामिनी' का अर्थ ही दीप्तिमती है। प्रकट होना और छिप जाना तथा चञ्चल दमक ये सब बिजलीके धर्म हैं, ये ही सब धर्म स्त्रियोंमें कहते हैं। पहले बिजलीकी चमक देख पड़ती है तब मेघोंका गर्जन सुनायी पड़ता है, यह गर्जन आगे लिखते हैं।

नोट—२ भावार्थान्तर यह है—(१) बाबू श्यामसुन्दरदास—'जैसे बिजली बार-बार चमककर फिर अँधेरा हो जाता है, इसी तरह स्त्रियाँ बार-बार झाँक-झाँककर फिर भीतर चली जाती हैं।' (२) बैजनाथजी—गौराङ्गिणी स्त्रियाँ देखनेके लिये अटारियोंपर प्रकट होती हैं और लज्जाके कारण छिप जाती हैं। (३) पीले वस्त्र बिजलीके समान चमकते हैं।

टिप्पणी—५ '***दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा***''' ।' इति। (क) मेघ और बिजली कहे। इनके समीप ही गर्जन होनी चाहिये, वही अब कहते हैं। बड़े-बड़े ऊँचे पर्वताकार हाथियोंके ऊपर नगाड़े बज रहे हैं, यही मानो घनके समीप ही आकाशमें गर्जनका होना है। पहुँची हुई बारातमें नगाड़े बहुत जोर-जोर बजाये जाते हैं, यथा—'***हने निसान पनव बर बाजे।***' इसीसे गर्जनको घोर कहा। चातक, दादुर और मोर मेघोंके स्नेही हैं। इसीसे मेघोंकी गर्जनके पीछे इनको लिखते हैं। (ख) '***जाचक चातक दादुर मोरा***'

इति। इसका ब्योरा कवि आगे स्वयं लिखते हैं, यथा—*'मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जस तिहु लोक उजागर॥'*, *'जय धुनि बिमल बेद बर बानी।'* (१।३४८) बन्दी (भाट) *'चातक'* हैं, यथा—*'चातक बंदी गुनगन बरना।'* (३।३८।८) *'बेद बर बानी'* अर्थात् वेदध्वनि करनेवाले दादुर हैं, यथा—*'दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥'* (४।१५।१) नट नाचते हैं, वे ही मोर हैं, यथा—*'नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग।'* (गी०)

नोट—३ (क) बैजनाथजी लिखते हैं कि जो केवल रामदर्शन-जलके प्यासे हैं वे पपीहा हैं; क्योंकि पपीहा सदा स्वाति-जलका प्यासा 'पी कहाँ, पी कहाँ?' रटा करता है। बन्दीजन जय-जयकार कर रहे हैं सो मेढक हैं जो वर्षा आते ही अपनी ध्वनि बाँध देते हैं और ढाढ़ी आदि जो नृत्य कर रहे हैं वे मोर हैं; क्योंकि मोर मेघोंको देखकर नाचने लगता है। (ख)—पाँड़ेजी लिखते हैं कि 'चातक इसलिये कहा कि जैसे यह बादलहीको चाहता है ऐसे ही वह याचक केवल रामसे प्रयोजन रखते हैं। दादुर जय-जयके उच्चारणसे कहा और मोर इसलिये कि वह अन्त:करणसे नृत्य करते हैं। (ग) प० प० प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि याचकोंमें तीन प्रकारके लोग हैं *'लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥'''रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।'* चातक है तो प्रेमी तथापि स्वातिजलके एक बूँदका ही क्यों न हो उसको कामना रहती है। वह बड़ा स्वाभिमानी और टेक निबाहनेवाला होता है। ऐसे अल्प-संतुष्ट स्वाभिमानी याचक चातक हैं। दादुरका अल्प जलसे समाधान नहीं होता, उसी तरह बहुत धनकी आकांक्षावाले याचक दादुर हैं। मोर केवल मेघके दर्शनसे नाचने लगता है। भगवान्‌के दर्शनकी आकांक्षासे ही प्रसन्न होकर उनका कीर्तन करते हुए नाचनेवाले याचक मोर हैं।

सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥६॥
समउ जानि गुर आयेसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥७॥
सुमिरि संभु गिरिजा गन राजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥८॥

शब्दार्थ—**ससि** (शस्य)=खेती, फसल, धान्य।

अर्थ—देवता पवित्र और सुगन्धित जलकी वर्षा करते हैं। पुर-नरनारीरूपी सब खेती सुखी है॥६॥ (पुर-प्रवेशका) समय जानकर गुरुजीने आज्ञा दी, तब रघुकुलमणि (राजा दशरथजी तथा श्रीरामजी) ने नगरमें प्रवेश किया॥७॥ भगवान् शंकर, गिरिजा और गणपतिका स्मरण करके राजा समाजसहित आनन्दित हैं॥८॥

टिप्पणी—१ जलकी वर्षा देवता करते हैं, यथा—*'देव न बरषहिं धरनि जल।'* (७।१०१) (*'देव न बरषहिं धरनी'* यह पाठ भा० दा० का है)। धूपका धुआँ जल नहीं बरसाता। इसीसे देवताओंका बरसाना नहीं लिखा। *'सुगंध सुचि'* कहनेका भाव कि पवित्र गङ्गाजलमें सुगन्ध घोलकर बरसा रहे हैं। गुलाब, केवड़ा आदि सुगन्ध हैं, शुचि नहीं हैं। जलकी वर्षासे कृषि सुखी होती है, वैसे ही सुगन्धित जलके पड़नेसे पुर-नरनारी सुखी हो रहे हैं—[देवता जो सुगन्धकी वर्षा कर रहे हैं वही मेघोंका जल है। स्त्री-पुरुषोंपर धानकी खेतीका आरोप किया गया, क्योंकि यहाँ सावनकी वर्षाका साङ्गोपाङ्ग रूपक बाँधा गया है और सावन-भादोंके ही जलसे धान हरे-भरे होते हैं। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ *'समउ जानि गुर'''* इति। (क) *'समउ जानि'* अर्थात् पुरमें प्रवेश करनेका मुहूर्त जानकर। (बैजनाथजी माघ कृ० २ बुध पुष्यनक्षत्रमें पुर-प्रवेश कहते हैं और कोई पौष कृ० २ कहते हैं)। *'गुर आयेसु दीन्हा'*—राजा गुरुजीकी आज्ञा पाकर पुरसे निकले थे, यथा—*'सुमिरि राम गुर आयेसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥'* (३०२।३) वैसे ही अब गुरुकी आज्ञा होनेपर पुरमें प्रवेश करते हैं। (यह गुरुभक्ति है। (३०२।३) उपक्रम है, उसका उपसंहार यहाँ है।) (ख) *'पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा'* इति। वर्षा कहकर तब पुरमें प्रवेश करना कहा, क्योंकि (वर्षा-ऋतुकी) वर्षा मङ्गल है, अन्य ऋतुओंमें मेघाच्छन्न होना दुर्दिन है—**'मेघाच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्'**। वर्षा-ऋतुमें मेघाच्छन्न होना दुर्दिन नहीं है। इसीसे वर्षा-ऋतुका

रूपक बाँधा। पुनः, वर्षा-ऋतुका रूपक करनेका दूसरा भाव यह है कि वर्षा-ऋतुमें राजा नगरसे बाहर नहीं जाते, इसी प्रकार श्रीचक्रवर्ती महाराज पुत्रोंसहित नगरसे बाहर न जायँ, सदा श्रीअयोध्यापुरीहीमें बने रहें, इस भावनासे वर्षाका रूपक करके तब पुरमें प्रवेशका वर्णन किया। (ग) *'रघुकुलमनि'* से श्रीदशरथजीका अर्थ किया गया [यथा—*'अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥'* (१८८। ४), इससे 'श्रीरामजी' का भी अर्थ कर सकते हैं। अर्थात् रघुकुलमणि श्रीरामजीने पुरमें प्रवेश किया। पुत्रोंका पुरमें प्रवेश देखकर राजाने श्रीशिव, गिरिजा, गणेशजीका स्मरण किया और समाजसहित प्रसन्न हुए।

टिप्पणी—३ *'सुमिरि संभु गिरिजा'''* इति। (क) स्मरण किया कि चारों पुत्रोंको मङ्गलदाता हों। इन्हींका स्मरण करके जनकपुरको प्रस्थान किया था, यथा—*'आप चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु।'* (३०१) [वैसे ही यहाँ पुरप्रवेशके समय चारोंका स्मरण कहा। *'गुर आयेसु दीन्हा'* में गुरुका स्मरण भी आ गया और शंभु, गिरिजा, गणेशका स्मरण तो स्पष्ट ही कहा।] पूजामें गणेशजी प्रथम पूज्य हैं, परंतु यहाँ पूजन नहीं है, स्मरणमात्र है। इसीसे क्रमसे पहले श्रीशिवजीको फिर गिरिजाजीको और तब गणेशजीको स्मरण किया। (ख) *'मुदित महीपति सहित समाजा'* इति। यहाँ रघुकुलमनिका अर्थ खोला कि राजा *'रघुकुलमनि'* हैं। (विशेष टि० २ (ग) में लिखा गया है) शंभु, गिरिजा और गणेशजीके स्मरणके पीछे *'मुदित'* होनेका भाव कि इनका स्मरण करते ही अनेक मङ्गल देख पड़े जैसा आगे स्पष्ट है—*'होहिं सगुन'''* इसीसे समाजसहित राजाको हर्ष हुआ। *'मुदित'* होना भीतरका शकुन है और बाहरके शकुन आगे दोहेमें कहते ही हैं। बाह्यान्तर दोनों शकुन सबको हुए, इसीसे सबका मुदित होना कहा।

दो०—होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ*।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ†॥ ३४७॥

अर्थ—शकुन हो रहे हैं, देवता नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। देवाङ्गनाएँ, अप्सराएँ प्रसन्न होकर सुन्दर मङ्गल (गीत) गा-गाकर नाच रही हैं॥ ३४७॥

टिप्पणी—१ (क) *'होहिं सगुन'*—जो शकुन बारातके प्रयाण-समय हुए थे, वे ही सब पुर-प्रवेशके समयमें हुए। सुमनकी वृष्टि, नगाड़ोंका बजाना और मङ्गलगीतोंका गान—ये सभी शकुन हैं। शकुनोंका वर्णन *'होहिं सगुन सुंदर सुभदाता।'* (३०३। १) से *'मंगलमय कल्यानमय'''।'* (३०३) तक है। (ख) *'बरषहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ'* इति। नगाड़ा बजा-बजाकर फूल बरसानेका भाव यह है कि वर्षाका रूपक ऊपरसे कहते आ रहे हैं, वही रूपक यहाँ भी चल रहा है। जैसे मेघ गरज-गरजकर बरसते हैं वैसे ही देवता नगाड़ा बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। नगाड़ोंका बजना मेघोंका गर्जन है, यथा—*'दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा।'* (ऊपर कहा है)। (ग) *'बिबुध बधू नाचहिं'* इति। *'बिबुध'* का भाव कि ये विशेष बुद्धिमानोंकी स्त्रियाँ हैं; (नृत्य-गान) विद्यामें बड़ी प्रवीणा हैं, सुन्दर नृत्य और गान कर रही हैं। (घ) *'मुदित'* का भाव कि जैसे रानियोंको श्रीरामजीके आगमनमें सुख हुआ है, वैसे ही देववधूटियोंको भी सुख हो रहा है। रानियाँ मुदित होकर मङ्गल गा रही हैं, यथा—*'रची आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥'* (३४६। ८) वैसे ही देवाङ्गनाएँ मुदित होकर मङ्गल गा रही हैं। (ङ) *'मंजुल'*—मधुर, ताल और स्वरसे युक्त होनेसे 'मंजुल' कहा।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जस तिहुँ लोकु उजागर॥ १॥
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल सानी॥ २॥
बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे॥ ३॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुख न समाहीं॥ ४॥

---

*बजाई, † गाई—१६६१।

अर्थ—चतुर मागध (वंशप्रशंसक), सूत (पौराणिक), भाट और नट (राजा दशरथजी और श्रीरामजीका त्रैलोक्यप्रसिद्ध) तीनों लोकोंमें जगमगाता हुआ निर्मल यश गा रहे हैं॥ १॥ जयध्वनि और निर्मल वेदोंकी श्रेष्ठ वाणी अर्थात् वेदध्वनि सुन्दर मङ्गलोंसे सानी हुई दसों दिशाओंमें सुनायी दे रही है॥ २॥ बहुत-से बाजे बजने लगे। आकाशमें देवता और नगरमें लोग अनुरागको प्राप्त हुए (अर्थात् प्रेममें मग्न हो गये)॥ ३॥ बाराती (ऐसे) बने-ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। मनमें महान् आनन्दित हैं, सुख मनमें नहीं समाता है॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) मागध, सूत, बंदी—(३००।५) देखिये। *'नागर'* सबका विशेषण है। *'नागर'* कहनेका भाव कि ये सब नगरके ही हैं और सब चतुर हैं, बड़ी चतुरतासे यश गाते हैं। *'गावहिं जस⋯'* किसका यश गाते हैं यह यहाँ नहीं कहा। राजाका यश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, यथा—*'तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥'* (२। २। ४), *'बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा।'* (२।१७३।८) श्रीरामजीका यश भी तीनों लोकोंमें उजागर है, यथा—*'महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥'* (२६५।५) मागधादि श्रीरामजी और श्रीदशरथजी दोनोंका यश गाते हैं; इसीसे किसीका नाम नहीं लिखा। *'तिहुँ लोग उजागर'* कहनेका भाव कि इनका यश कुछ बढ़ाकर नहीं कह रहे हैं, इनका यश तो आप ही बढ़ा हुआ है, तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उसीको गाते हैं।

(ख) *'जय धुनि⋯'* इति। पुरमें प्रवेश करते समय बहुत लोगोंने जय-जयकार किया, ब्राह्मण शान्तिपाठ पढ़ने लगे। *'बिमल'* ब्राह्मणोंकी वाणी निर्मल अर्थात् अठारह दोषोंसे रहित है और बर (श्रेष्ठ) है अर्थात् गम्भीर है। वेदवाणी भी सबसे श्रेष्ठ वाणी है और विमल अर्थात् सत्य है। *'सुमंगल सानी'* कहनेका भाव कि जयध्वनि और वेदध्वनि सुनते ही मङ्गलकी प्राप्ति होती है। *'दस दिसि सुनिय'* से सूचित हुआ कि चारों दिशाओं और चारों उपदिशाओंमें ऊपर सिद्ध, मुनि, देवता और नीचे ब्राह्मण, मागध, सूत आदि सर्वत्र जयध्वनि और वेदध्वनि कर रहे हैं। [वाग्दोष, यथा—(**'इति वाक्यगुणानाञ्च) वाग्दोषान्द्विनव शृणु। अपेतार्थमभिन्नार्थमपवृत्तं तथाधिकम्॥६९॥ अश्लक्षणं चापि संदिग्धं पदान्ते गुरु चाक्षरम्। पराङ्मुखमुखं यच्च अनृतं चाप्यसंस्कृतम्॥७०॥ विरुद्धं यत्त्रिवर्गेण न्यूनकष्टादिशब्दकम्। व्युत्क्रमाभिहतं यच्च सशेषां चाप्यहेतुकम्॥७१॥ निष्कारणं च वाग्दोषान् बुद्धिजाञ्छृणु त्वं च यान्॥'** (स्कन्दपु० माहेश्वरखण्ड कुमारिकाखण्ड अ० ४५)। अर्थात् वाणीके अठारह दोष सुनो। अपेतार्थ (जिसके उच्चारण करनेपर भी अर्थका भान न हो), अभिन्नार्थ (जिससे अर्थभेदकी स्पष्ट प्रतीति न हो), अपवृत्त (जो व्यवहारमें कम आता हो), अधिक (जिसके न होनेपर भी अर्थका बोध हो जाता है), अश्लक्षण (अस्पष्ट वा अपरिमार्जित), संदिग्ध, पदान्त अक्षरका गुरु उच्चारण, पराङ्मुख (वक्ताके अभीष्ट अर्थके विपरीत अर्थसूचक), अनृत, असंस्कृत (व्याकरणसे अशुद्ध), त्रिवर्गविरुद्ध (अर्थ, धर्म, कामके विपरीत विचार होना), न्यून (अर्थबोधके लिये पर्याप्त शब्दका न होना), कष्टशब्द (क्लिष्ट उच्चारणवाले), अतिशब्द (अतिशयोक्तिपूर्ण), व्युत्क्रमाभिहत (क्रमका उल्लङ्घन जिसमें हो), सशेष (जहाँ वाक्य पूरा होनेपर भी बात पूरी न हो), अहेतुक (उचित तर्क या युक्तिका अभाव) और निष्कारण ये वाणीके अठारह दोष हैं।]

टिप्पणी—२ (क) *'बिपुल बाजने'* इनके नाम पूर्व लिख चुके हैं, यथा—*'हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि⋯'* *'झाँझि बीन डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥'* (१। ३४४) इसीसे यहाँ नाम नहीं लिखे। इसी तरह पूर्व भी कहा था—*'बिबिध बिधान बाजने बाजे।'* (३४६।३)

(ख) *'बने बराती बरनि न जाहीं,* यह बाहरकी शोभा कही और *'महामुदित मन सुख न समाहीं'* यह भीतरकी शोभा है। यहाँ 'अधिक' अलङ्कार है। मन भारी आधार है और सुख आधेय है सो मनमें नहीं समाता, यही आधारसे आधेयकी अधिकता है। सुख बहुत हैं, इसीसे *'समाहीं'* बहुवचन क्रिया दी। चारों भाइयोंको पुरमें प्रवेश करते देख सुख हुआ, फिर शकुन देखकर सुख हुआ। परस्पर बारातकी शोभा

देखकर सुख हुआ, जयध्वनि, वेदध्वनि सुनकर, पुरीकी शोभा और पुरवासियोंका अनुराग देखकर सुख हुआ, इसीसे मनमें सुख नहीं समाते और इसीसे महामुदित हैं।

☞ श्रीसियरघुवीर विवाह कराके बारातका श्रीअयोध्यामें पुनरागमन प्रसङ्ग समाप्त हुआ।

पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहि भये सुखारे॥ ५॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥ ६॥
आरति करहिं मुदित पुरनारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥ ७॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥ ८॥

दो०—येहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥ ३४८॥

अर्थ—तब पुरवासियोंने राजाको प्रणाम किया और रामचन्द्रजीको देखते ही सुखी हुए॥ ५॥ मणिगण और वस्त्र निछावर करते हैं। नेत्रोंमें जल है और शरीर पुलकित है॥ ६॥ पुरकी स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक आरती कर रही हैं। सुन्दर चारों कुमारोंको देखकर प्रसन्न हो रही हैं। सुन्दर पालकीके सुन्दर परदे खोल-खोलकर दुलहिनोंको देख-देख सुखी होती हैं॥ ८॥ इस प्रकार सभीको सुख देते हुए राजकुमार बहुओंसहित राजद्वारपर आये, माताएँ आनन्दपूर्वक उनका परिछन करने लगीं॥ ३४८॥

टिप्पणी—१ (क) *'तब'* अर्थात् जब रघुकुलमणिने पुरमें प्रवेश किया तब। राजाको प्रणाम करना और श्रीरामजीको देख सुखी होना कहनेसे सूचित किया कि चारों भाई राजाके समीप ही हैं। जैसे बाराती श्रीरामजीको देखकर सुखी हुए थे, यथा—*'रामहि देखि बरात जुड़ानी।'* (३०९। १) वैसे ही ये पुरवासी (जो बारातमें नहीं गये थे) श्रीरामजीको देखकर सुखी हुए। (ख) *'करहिं निछावरि''''* इति। इस समय पुरुषोंको आरती न करनी चाहिये। यदि आरतीके पीछे पुरुष निछावर करते तो वह परछनका भाव हो जाता, इसीसे पुरुषोंने प्रथम ही निछावरें दीं। इसी तरह इस समय स्त्रियोंको निछावर न देनी चाहिये, क्योंकि यदि वे आरती करके निछावरें दें तो भी उसमें परछनका भाव आ जाता है। इसीसे पुरुषोंने प्रथम ही निछावरें दीं और स्त्रियोंने पीछे आरती की। (ग) यहाँ निछावर लेनेवालोंका नाम नहीं दिया, क्योंकि इनको प्रथम ही लिख आये हैं, *'मागध सूत बंदि नट नागर।'* ये ही निछावर लेते हैं और परछनके समय पालकी उठानेवाले कहार निछावर पाते हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'आरति करहिं मुदित''''* इति। पुरवासिनी स्त्रियाँ केवल कुमारोंकी आरती करती हैं, इसीसे उसे आरती कहते हैं, माताएँ बहुओंसमेत कुमारोंकी आरती करती हैं, इससे उनकी आरतीको 'परिछन' कहा है, *'मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार।'* लौटी हुई बारातमें प्रथम माता ही वर-दुलहिनकी आरती करती है जिसे परछन कहते हैं, इसीसे पुरनारियोंने बहुओंसमेत कुमारोंकी आरती नहीं की। (ख) *'हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी'* इति। चारों कुमारोंकी आरती की, क्योंकि चारों कुमार ब्याह करके घर आये हैं। *'बर'* का भाव कि अद्भुत रूप है, अद्भुत शृङ्गार है। अथवा *'बर'* अर्थात् दूलहरूप है। दूलहरूप देखकर हर्षित होती हैं। रूपके दर्शनसे हर्ष उत्पन्न होता है, यथा—*'रूपसिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु॥'* (३३४)

टिप्पणी—३ *'सिबिका सुभग ओहार उघारी।''''* इति। *'सुभग'* देहलीदीपक है। पालकी और ओहार दोनों सुन्दर हैं। *'सुभग'* शब्द देनेमें भाव यह है कि पालकी और ओहार सुन्दर हैं और सुन्दर ऐश्वर्यसे युक्त हैं अर्थात् अनेक रंगकी मणिमुक्ताओंसे युक्त हैं। प्रथम सुन्दर वरोंको देखकर तब दुलहिनोंको देखने लगीं कि वर तो बहुत सुन्दर हैं, देखें दुलहिनें कैसी हैं। *'देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी'*—भाव कि देखा कि जैसे वर सुन्दर हैं वैसे ही दुलहिनें भी सुन्दर हैं, अतः सुखी हुईं।

टिप्पणी—४ (क) *'येहि बिधि'* अर्थात् द्वार-द्वारपर निछावर और आरती होती है। (इससे जनाते हैं कि राजाकी सवारी धीरे-धीरे चल रही है, सब स्त्रियाँ अपने-अपने घरोंमें आरती लिये खड़ी हैं, जैसे-जैसे उनके द्वारसे निकलते हैं, वहाँ रुक जाते हैं, पुरुष निछावर कर लेते हैं और स्त्रियाँ आरती उतार लेती हैं, तब आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार सबके द्वार-द्वारपर रुकते हुए सबको सुख देते चल रहे हैं। राजद्वारपर पहुँचनेपर माताएँ परछन करती हैं।) (ख) *'मुदित मातु परिछनि करहिं''''''* ' इति। *'चलीं मुदित परिछनि करन''''।'* (३४६) पर प्रसङ्ग छोड़ा था, अब वहींसे पुनः कहते हैं *'मुदित मातु परिछन करहिं'*। (ग) श्रीरामजीके पुरमें प्रवेश करनेपर सबका मुदित होना लिखा। यथा—*'मुदित महीपति सहित समाजा', 'बिबुधबधू नाचहिं मुदित', 'बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुख न समाही॥', 'पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहिं भये सुखारे॥', 'आरति करहिं मुदित पुरनारी'* और *'मुदित मातु परिछन करहिं'*। आदिमें पिताका और अन्तमें माताका मुदित होना लिखकर जनाया कि माता-पिता हर्षकी सीमा है। परिछनमें दूलह-दुलहिन दोनोंकी आरती होती है, इसीसे *'बधुन्ह समेत कुमार'* कहा। इससे सूचित करते हैं कि जब एक-एक पालकीमें एक-एक दूलह-दुलहिन बैठे तब *'बधुन्ह समेत'* कुमारोंकी आरती हुई। [मयङ्ककार लिखते हैं कि श्रीरामजी और श्रीजानकीजी भिन्न-भिन्न पालकियोंपर सवार थे, परंतु राजद्वारके निकट वर-दुलहिन दोनों एक ही पालकीमें सवार हो गये।]

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥१॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥२॥
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥३॥
पुनि पुनि सीय-राम-छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥४॥
सखी सीयमुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥५॥

अर्थ—(माताएँ) बारंबार आरती कर रही हैं। (उस) प्रेम और आनन्दको कौन कह सकता है॥१॥ अनेक जातिके और अगणित प्रकारके आभूषण, रत्न और वस्त्र अगणित प्रकारके निछावर करती हैं॥२॥ बहुओंसमेत चारों पुत्रोंको देखकर माताएँ परमानन्दमें मग्न हैं॥३॥ बारंबार श्रीसीता-रामजीकी छबिको देखकर जगत्‌में अपने जीवनको सफल समझकर सुखी हैं॥४॥ सखियाँ बारंबार श्रीसीता-रामजीका मुख देखकर अपने पुण्योंकी सराहना कर-करके गान कर रही हैं॥५॥

टिप्पणी—१ (क) *'करहिं आरती बारहिं बारा'* इति। अत्यन्त प्रेम और हर्षसे भरी हैं, इसीसे *'बार बार'* आरती करती हैं, यथा—*'सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी॥'* (७।१२) पुनः भाव कि पूर्व लिख आये हैं कि *'रची आरती बहुत बिधाना'*। जितने प्रकारकी आरतियाँ रची गयी हैं उतने बार (प्रत्येक बार एक-एक विधिकी) आरती करती हैं, अतः *'बारहि बार'* कहा। (ख) *'प्रेम प्रमोदु कहै को पारा'* इति। जब श्रीरामजीका आगमन सुना तब प्रेम-प्रमोदके वश हो गयी थीं, सब अङ्ग शिथिल हो गये थे, यथा—*'प्रेम बिबस तन दसा बिसारी।'* (३४५।८) *'मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता॥'* (३४६।१) अब जब श्रीरामजी आ गये और ये आरती करने ही लगीं तबके प्रेम-प्रमोदका पार कौन पा सके। [उस समय प्रेमविवशताका कुछ वर्णन *'चलहिं न चरन'* इत्यादि रीतिसे हो भी सका था किंतु इस समय चारों नवपरिणीत दम्पतियोंके प्रत्यक्ष दर्शनसे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन असम्भव है। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ (क) *'नाना जाती', 'अगनित भाँती'* इति। कड़ा, छड़ा, लच्छा, बिजायठ, गोफ, गुंज, कंठश्री, गुलूबंद, बेसर, कटिसूत्र इत्यादि अनेक 'जाति' के आभूषण हैं। एक-एक आभूषण अगणित प्रकारके हैं, बनावमें भेद है, जैसे *'छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥'* (३२९।५) वैसे ही यहाँ बहुत जातिके आभूषण हैं और प्रत्येक जातिके अनेक प्रकारके हैं। (ख) *'बधुन्ह समेत

देखि सुत चारी' इति। इससे जनाया कि माताएँ आरती करके पुत्रों और बहुओंको देखने लगीं। पुरनारियोंने केवल चारों कुमारोंकी आरती की, इसीसे वे चारों भाइयोंको देखती हैं—*'आरति करहिं मुदित पुरनारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥'* और माताओंने बहुओंसमेत चारों भाइयोंकी आरती की, इससे ये बहुओंसमेत चारों भाइयोंको देखती हैं। (ग) *'परमानंद मगन महतारी'* इति। भाव कि पुत्रोंको देखकर आनन्द होता ही था, उनको बहुओंसमेत देखनेसे परमानन्द हुआ। अथवा पुरनारियोंको आनन्द हुआ, यथा—*'देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी', 'हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी'* और माताएँ परमानन्दमें मग्न हुईं। अथवा *'प्रेम प्रमोदु कहै को पारा'* अर्थात् प्रकर्ष—मोद है, यही परमानन्द है। प्रमोद और परमानन्द एक ही हैं। [मिलान कीजिये—*'बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं। बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं॥ करहिं निछावरि छिनु-छिनु मंगल मुदभरीं। दूलह-दुलहिनिन्ह देखि प्रेम पयनिधि परीं॥'* (श्रीजानकीमङ्गल ११६)]

टिप्पणी—३ *'पुनि पुनि सीयराम छबि देखी'''* इति। चारों जोड़ियोंको देखकर तब श्रीसीता-रामजीकी जोड़ी पृथक् पुनः-पुनः देखती हैं क्योंकि सब जोड़ियोंमें यह जोड़ी अधिक सुन्दर है, यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥'* (१९८। ६) *'पुनि पुनि'* देखनेका भाव कि इस जोड़ीकी छबिके दर्शनोंसे तृप्ति नहीं होती, नेत्र अघाते नहीं। निरन्तर एकटक नहीं देखती हैं कि कहीं नजर न लग जाय, इसीसे पुनः-पुनः देखती हैं, यथा—*'स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी॥'* (१९८। ५) *'मुदित सफल जग जीवन लेखी'*, यथा—*'नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं।'* (जानकीमङ्गल ११७)।

टिप्पणी—४ *'सखी सीयमुख पुनि पुनि चाही।'''* इति। (क) यहाँ उत्तरोत्तर शोभाकी अधिकता दिखायी है। प्रथम चारों जोड़ियोंकी शोभा कही, फिर चारोंमें श्रीराम-जानकीजीकी शोभा अधिक कही और अब श्रीरामजीसे भी अधिक श्रीजानकीजीके मुखकी शोभा कहते हैं। (ख) *'गान करहिं'* इति। यहाँ सखियोंका गान करना कहते हैं। भाव यह है कि जबतक रानियाँ महलके भीतर रहीं, तबतक तो वे स्वयं गाती रहीं, यथा—*'रची आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥'* (३४६।८) अब परछन करनेको बाहर द्वारपर हैं, इसीसे अब वे नहीं गातीं, सखियाँ गाती हैं। (ग) *'निज सुकृत सराही'*—अपने पुण्योंको सराहती हैं, अर्थात् कहती हैं कि हमारे बड़े सुकृत उदय हुए हैं कि हमें सदा इनके समीप ही रहनेको मिला, सदा इनके मुखारविन्दका हमको दर्शन होता रहेगा, हमारे महान् भाग्य हैं।

बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥ ६॥
देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढँढोरी॥ ७॥
देत न बनहिं निपट लघु लागी। एकटक रही रूप अनुरागी॥ ८॥
दो०—निगम-नीति कुलरीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥ ३४९॥

अर्थ—देवता क्षण-क्षणपर फूल बरसाते, नाचते, गाते, अपनी सेवा लगाते हैं॥ ६॥ चारों मनहरण जोड़ियोंको देखकर सरस्वतीने सब जगह एवं सभी उपमाएँ खोज डालीं, पर कोई उपमा देते नहीं बन पड़ती, सभी निपट तुच्छ जान पड़ीं (तब हारकर) रूपको एकटक अनुराग-पूर्वक देखती रह गयीं॥ ७-८॥ वेदका विधान और कुलकी रीति करके अर्घ-पाँवड़े देती हुई सब माताएँ बहुओंसमेत पुत्रोंका परछन करके सबको घरमें लिवा ले चलीं॥ ३४९॥

टिप्पणी—१ (क) *'बरषहिं सुमन छनहिं छन'''* इति। यह क्षण-क्षणपर फूल बरसानेका समय है, इसीसे क्षण-क्षणपर बरसाते हैं, यथा—*'समय समय सुर बरषहिं फूला'*। श्रीरामजीके पुरप्रवेशके समय फूल बरसाये, यथा—*'होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ।'* (३४७) फिर जब पुरनारियोंने आरती की

तब बरसाये। इसी तरह जब श्रीरामजी राजद्वारपर आये तब तथा परछनके समय और फिर जब श्रीरामजी महलमें गये तब, इति *'छन-छन'* पर बरसाये। (*'नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा'* से जनाया कि फूल बरसाना, नाचना, गाना यह सब सेवा-भावसे करते हैं)। (ख) *'देखि मनोहर चारिउ जोरी'* कहनेका भाव कि सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित बारातके साथ जनकपुरको छोड़कर अयोध्याजीमें चले आये हैं, इसीसे सरस्वतीका देखना कहते हैं। *'उपमा सकल ढँढोरी'* इति। छूछे पात्रमें खोजनेको 'ढँढोरना' कहते हैं। चारों जोड़ियोंकी उपमा तीनों लोकोंमें नहीं है, यथा—*'मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥'* (३११। ८)' जहाँ है ही नहीं वहाँ खोजती हैं, इसीसे *'ढँढोरी'* कहा।

(ग) *'देत न बनहि'* कहनेका भाव कि उपमा देनेसे अपयश होगा, मूर्खता प्रकट होगी। *'निपट लघु लागी'* अर्थात् जैसे सूर्यके लिये कोई खद्योतकी उपमा दे तो जैसे वह नितान्त लघु लगती, वैसे ही कोई भी उपमा इन जोड़ियोंकी नितान्त लघु होगी। यथा—*'जिमि कोटिसत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै।'* (७। ९२) वैसे ही ये जोड़ियाँ निरुपम हैं; इनकी उपमा है ही नहीं। [*'एकटक रही रूप अनुरागी'* इति।—भाव यह कि उसने सोचा कि ढूँढ़नेमें समय नष्ट न करें इनको भरनेत्र देख लें। वा, जब हार गयी तब एकटक इसी रूपको देखती रह गयी कि इनके समान तो ये ही हैं। *'एकटक रही'* अर्थात् पलभरका भी विक्षेप नहीं होने देती, एकतार—बराबर रूप देख रही है। यही रूपमें अनुराग है।]

टिप्पणी—२ *'निगम-नीति' कुलरीति''''* इति। (क) *'नीति'* अर्थात् जैसा वेद कहते हैं। वेदविधि गुरुजीने और लोकरीति कुलवृद्धाओंने जैसी कही वैसा करके। *'अरघ पाँवड़े देत'* से सूचित किया कि चारों भाइयोंको अलग-अलग अर्घ्य और पाँवड़े दिये गये। क्योंकि एक ही पाँवड़ेपर सब नहीं चल सकते। सबका स्पर्श होना अनुचित है, इससे सेवकभाव बिगड़ता है। जिस पाँवड़ेपर श्रीसीतारामजी चलते हैं, उसपर छोटे भाई पैर नहीं रख सकते। यथा—*'सीयराम पद अंक बराए। लखन चलहिं मगु दाहिन लाए॥'* (२। १२३। ६), *'हरषहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायउ रंका॥ रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥'* (२। २३८) (श्रीभरतजी और श्रीलक्ष्मणजीका यह भाव है और शत्रुघ्नजी तो इन दोनोंसे भी छोटे हैं। जब ये उस पाँवड़ेको प्रभुका रूप ही मानेंगे तब उसपर चरण कैसे रख सकते हैं?) (ख) *'बधुन्ह सहित सुत परिछि सब'* इति। इससे सूचित हुआ कि पहले सवारीमें बैठी हुई चारों जोड़ियोंका परछन किया। अब सवारीसे सब उतरे, तब पुनः परछन किया। अथवा, ऊपर *'मुदित मातु परिछनि करहिं''''करहिं निछावर अगनित भाँती'* में परछन कहा, बीचमें माताओंका सुख, देवताओंका सुख और सेवा कहने लगे थे। अतः यहाँ *'बधुन्ह सहित सुत परिछि'* कहकर पूर्वप्रसंगसे सम्बन्धमात्र मिलाया है।] *'पाँवड़े देत'* से सूचित किया कि यहाँसे सब पैदल चले। आगे श्रीराम-जानकीजी हैं, उनके पीछे श्रीभरत-माण्डवीजी फिर श्रीलक्ष्मण-उर्मिलाजी और सबसे पीछे श्रीशत्रुघ्नजी-श्रुतिकीर्तिजी हैं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए॥ १॥
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥ २॥
धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि॥ ३॥
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं॥ ४॥
बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं॥ ५॥

अर्थ—मानो कामदेवने अपने ही हाथोंसे बनाये हैं ऐसे चार सहज ही सुन्दर सिंहासनोंपर कुमार और कुमारियोंको बिठाया और आदरपूर्वक उनके पवित्र चरण धोये॥ १-२॥ वेदरीतिके अनुसार मङ्गलके निधान दूलह-दुलहिनोंको धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादिसे पूजा की॥ ३॥ बारंबार आरती कर रही हैं। सिरपर सुंदर पंखे, चँवर डुलाये जा रहे हैं॥ ४॥ अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही हैं, सभी माताएँ बड़े आनन्दमें भरी सुशोभित हो रही हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'सिंघासन सहज सुहाए।'''* इति। चारों जोड़ियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं, उनके योग्य सुन्दर सिंहासन चाहिये, इसीसे सिंहासनकी सुन्दरता कही। *'सहज सुहाए'* अर्थात् बनावटमें सुन्दर हैं, रचना या सजावटद्वारा सुन्दर हो गये हों यह बात नहीं है (जैसे *'चारिउ भाइ सुभाय सुहाए'* हैं वैसे ही उनके सिंहासन भी *'सहज सुहाए'* हैं। यथायोग्यका संग है। श्रीसीताजी भी *'सहज सुहावनि'* (दो० ३२२) हैं और श्रीमाण्डवीजी, श्रीउर्मिलाजी तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजी क्रमशः *'शोभामई', 'सकल सुन्दरि शिरोमणि'* और *'रूप उजागरी'* हैं। चारों जोड़ियाँ अनुपम हैं—*'सारद उपमा सकल ढँढोरी।'* वैसे ही सिंहासन भी अनुपम हैं)। बनावट सुन्दर है इसीसे मनोजके निज हाथसे बनानेकी उत्प्रेक्षा करते हैं। जहाँ-जहाँ अत्यन्त सुन्दरताका प्रयोजन होता है वहाँ-वहाँ कामदेवका बनाना कहते हैं। यथा—*'छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए।'* (३४६।६) इत्यादि।

(ख) *'तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे'* इति। भाव कि एक तो सिंहासन ही अत्यन्त सुन्दर हैं, फिर उनपर चारों मनोहर जोड़ियाँ बैठी हैं; अतएव शोभा अपार है, कौन कह सकता है?

(ग) *'सादर पाय पुनीत पखारे'* इति। 'आदरसहित' यह कि मणियोंकी परातोंमें अलग-अलग सबके चरण धीरे-धीरे धोये, फिर उत्तम वस्त्रसे पोंछे। 'सादर पखारना' भक्ति है। *'पाय पुनीत'* का भाव कि पवित्रताके लिये नहीं धोये, चरण तो आप ही पवित्र हैं। [पुनः भाव कि त्रैलोक्य-पावनी गङ्गाजी इन्हीं चरणोंसे निकली हैं, इन्हीं चरणोंके मकरन्दको शिवजी सिरपर धारण किये हैं, इन्हीं चरणोंमें मुनिजन अपने मनको भौंरा बनाये रहते हैं, इन्हींकी धूलिके स्पर्शसे अहल्या तुरंत शापमुक्त हो गयी, इन्हींके चरणोदकको सिरपर धारणकर ब्रह्माजी सृष्टिचक्रके प्रवर्तक हुए और बलि इन्द्र-पदको प्राप्त हुए, इत्यादि भावनासे चरण धोये। यथा—*'पाय पुनीत पखारन लागे॥''''जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।'* से लेकर *'ते पद पखारत भाग्यभाजन''''।'* (१।३२४) तक **'त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः। बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाभूद्दिविजाधिपः। त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः। सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता॥'** (अ० रा० १।६।७२—७४)]

टिप्पणी—२ (क) *'धूप दीप नैबेद बेद बिधि।'''* इति। *'बेद बिधि'* कहकर सूचित किया कि वेदसूक्तकी रीतिसे षोडशोपचार पूजन किया। क्योंकि वर-दुलहिनकी पूजा श्रीलक्ष्मी-नारायण-भावसे होती है। पूजाके कुछ अङ्ग पूर्व कह आये हैं। *'अरघ पाँवड़े देत'* यह अर्घ्य है। *'चलीं लवाइ निकेत'* यह आवाहन है। *'तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे'* यह आसन है। *'सादर पाय पुनीत पखारे'* यह स्नानके स्थानमें है। अब धूप, दीप और नैवेद्य कहते हैं। (ये सब सात अङ्ग हुए। निधियाँ नौ हैं। इस प्रकार 'मङ्गलनिधि' शब्दसे नौ अङ्ग शेष भी जना दिये।) (ख) *'मंगलनिधि'* का भाव कि अन्य धर्मोंसे जो मङ्गल होते हैं उनकी इति है और ये वर-दुलहिन मङ्गलके समुद्र हैं, उनके पूजनसे अमित मङ्गल होते हैं। [पुनः भाव कि धूप, दीप, नैवेद्यादि जितने मङ्गलके समूह हैं उनसे मङ्गलके लिये 'मङ्गलनिधि' की पूजा की। (प्र० सं०)। वा वर-दुलहिनको मङ्गलनिधिकी प्राप्ति मानकर पूजा। (वै०)]

टिप्पणी—३ *'बारहिं बार आरती करहीं।'''* इति। (क) यह आरती षोडशोपचार पूजनकी है। इसीसे यहाँ केवल 'आरती' कहते हैं; परछन नहीं कहते। धूप, दीप और नैवेद्य कह चुके, उसके पश्चात् आरती होती है, यही 'नीराजन' है। यह कपूरकी आरती है। (ख) बिना तिलक (राज्याभिषेक) हुए सिंहासनपर बैठनेपर चँवर नहीं हो सकता। सिंहासनपर राजाको ही चँवर डुलाया जाता है। परंतु यहाँ लक्ष्मीनारायणभावसे वर-दुलहिनका पूजन हुआ है, इसीसे सिरपर चँवरका ढलना कहा। पंखा और चँवर राजाओंकी शोभा हैं। ढरना=ढलना, लहरना, लहर खाकर इधर-से-उधर हिलना। (ग) पंखा झलनेका दूसरा भाव यह सूचित होता है कि अगहन शु० ५ को विवाह हुआ। पौष खरवाँस है (पौष और चैतमें सूर्य धन और मीनका होता है, इससे इनमें माङ्गलिक कार्य करना बर्जित है। यही 'खरवाँस' का भाव है)। बहुओंकी विदा है, इससे राजाने महीनाभर विदा न माँगी। माघ-फागुन विदा माँगते-माँगते बीत गये—*'बहुत दिवस बीते एहि भाँती।'* फिर चैत खरवाँस लग गया, विदा माँगनेका समय न रह गया। वैशाखमें बारात बिदा हुई,

इसीसे पंखा होना लिखा। [परंतु बैजनाथजीका मत है कि माघ कृ० २ को बारात लौट आयी। और यही ठीक जान पड़ता है। प० प० प्र० जीका भी मत है कि राजोपचारपूजामें व्यजन आदिका उपयोग बारहों मास होता है। वैशाख मास माननेसे *'सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई॥'* से विरोध होगा। श्रीअवधमें पौष कृ० २ को गौना माना जाता है।]

टिप्पणी—४ (क) *'बस्तु अनेक निछावरि होहीं'* इति। आरतीके पीछे निछावर होती है। प्रथम परछन करके निछावरें दीं, यथा—*'करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेम प्रमोदु कहै को पारा॥ भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥'* (१। ३४९) अब पूजाकी आरती करके निछावरें देती हैं। पूर्व निछावरकी वस्तुओंके नाम दिये थे, इससे यहाँ *'वस्तु अनेक'* कहकर वही अब निछावरें यहाँ भी सूचित कीं। (ख) *'भरी प्रमोद मातु सब सोहीं'* इति। अर्थात् प्रमोदके भरनेसे देह प्रफुल्लित हो गयी है, इसीसे शोभा हो रही है। *'प्रमोद भरी'* कहा क्योंकि बारम्बार प्रमोद भरता गया है, यथा—*'मोद प्रमोद बिबस सब माता'* (परछन साज सजनेके समय), *'प्रेम प्रमोदु कहै को पारा'* (परछनकी आरती करते समय) और यहाँ पूजाकी आरतीमें भी *'भरी प्रमोद''''*।

पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगी॥ ६॥
जनम-रंकु जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥ ७॥
मूक बदन जनु* सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई॥ ८॥

दो०—एहि सुख ते सतकोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुल-चंदु॥
लोकरीति जननीं करहिं बरदुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं॥ ३५०॥

अर्थ—मानो योगीने परम तत्त्व पाया, (वा) मानो जन्मके रोगीको अमृत मिल गया॥ ६॥ वा, मानो जन्मके दरिद्रीने पारस पाया, वा अन्धेको सुन्दर नेत्रोंका लाभ हुआ॥ ७॥ मानो गूँगेके मुखमें (जिह्वापर) सरस्वती आ बसी हों अथवा मानो लड़ाईमें शूरवीरने जय पायी हो॥ ८॥ इन सुखोंसे सौ करोड़ (अगणित) गुणा सुख माताएँ पा रही हैं। रघुकुलके चन्द्र श्रीरामजी भाइयोंसहित ब्याह करके घर आये। माताएँ लौकिक रीति करती हैं और दूलह-दुलहिनें सकुचाते हैं। इस महान् आनन्द-विनोदको देखकर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन मुस्कुराते हैं॥ ३५०॥

टिप्पणी—१ *'पावा परम तत्व जनु जोगी''''* इति। (क) परम तत्त्वसे अधिक लाभ और कुछ नहीं है, इसीसे प्रथम परम तत्त्वका पाना कहा। पुनः, परम तत्त्वकी प्राप्ति परमार्थ है, स्वार्थसे परमार्थ श्रेष्ठ है, इससे *'पावा परम तत्व''''* प्रथम कहा तब *'अमृत लहेउ''''* आदि कहे गये। (ख) योगीको योगके साधनमें क्लेश हुआ, क्लेशके पश्चात् उसे परम तत्त्वकी प्राप्ति हुई। इसी तरह रोगी रोगसे व्याकुल है, संतत रोगीको बहुत बड़ा क्लेश रहता है, उसे अमृत मिल गया। इन दोनों उत्प्रेक्षाओंसे सूचित किया कि क्लेशके पीछे सुख मिला। यहाँ (माताओंके) सुखकी अधिकता कहनी अभिप्रेत है और बड़े क्लेशके पीछे सुख मिलनेसे बड़ा सुख होता ही है, यथा—*'जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥'* (७। ६९) इसीसे यहाँ प्रथम कष्ट कहकर तब सुखका मिलना कहा। (ग) *'परम तत्व'*—परमात्माका अनुभव परमतत्त्वकी प्राप्ति है, यथा—*'जोगिन्ह परम तत्व मय भासा। शांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥'* (२४२। ४) *'संतत रोगी'* अर्थात् जो मरणको प्राप्त होने ही चाहता है (पर मरता नहीं, कष्ट

* जस—को० रा०। जनु०—१६६१, १७०४, १७२१, १७६२, छ०।

झेल रहा है), यथा—*'मरनसील जिमि पाव पिऊषा।'* (परमतत्त्वके अनुभवसे माताओंका सुख अधिक है, क्योंकि जिस परमतत्त्वका योगियोंको भासमात्र होता है, वह यहाँ प्रत्यक्ष ही नहीं किंतु उसके साथ आनन्द-विनोदका भी सुख हो रहा है।) रोगीको अमृत मिला, अमृतसे श्रीरामजी अधिक हैं, क्योंकि अमृत मिलनेपर भी कल्पान्तमें नाश अवश्य होता है और श्रीरामजीके मिलनेपर फिर नाश कभी नहीं होता, जैसा भगवान्‌ने गीतामें कहा है—**'न मे भक्तः प्रणश्यति।'** रोगीको 'राम' नहीं मिले। अतः उसके अमृत-प्राप्तिके सुखसे माताओंका सुख अधिक है। यथा—*'सुक से मुनि सारद से बकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने। ऐसे भए जो कहा तुलसी जो पै राजिवलोचन राम न जाने॥'* (क० ७। ४३)

श्रीनंगे परमहंसजी—'श्रीकौसल्यादि माताएँ मानो श्रीराम-लक्ष्मणके वियोगमें दुःखी रहती थीं। उन दुःखोंकी निवृत्तिको ग्रन्थकारने श्रीरामजीके पुनः आनेपर छः दृष्टान्तोंसे छः प्रकारके सुख-वर्णनद्वारा प्रकट किया है। योगी परमतत्त्वकी प्राप्तिहेतु दुःखके चिन्तवनमें रहते हैं, परमतत्त्वकी प्राप्तिसे सुखी होते हैं। इसी तरह माताएँ श्रीरामप्राप्तिहेतु दुःखसे चिन्तवनमें सदा रहती थीं। श्रीरामजीकी प्राप्तिसे योगीके सुखसे शतकोटिगुना सुख प्राप्त हुआ। बहुत दिनोंका रोगी रोगसे दुःखी वैसे ही माताएँ मानसरोग अर्थात् मोहसे दुःखी रहती थीं, खाना-पीना अच्छा नहीं लगता था। अमृत मिलनेसे रोगीका रोग गया, वह सुखी हुआ। इसी तरह माताओंको सुधासमुद्र रामकी प्राप्तिसे समस्त व्याधियोंके मूल मोहसे जायमान दुःख जाता रहा और शतकोटिगुना सुख हुआ।

प० प० प्र०—परमतत्त्वप्राप्ति—अपरोक्षब्रह्मसाक्षात्कार। परमतत्त्वप्राप्तिसे लाभ है—दोष (त्रिविध संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण पाप), दुःख, दारिद्र्य (मोह जो समस्त मानसरोगोंका मूल है) और त्रितापका नाश। यथा—*'करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा।'* (२। २३९। ३) *'नाथ आजु'* (रामदर्शनसे) *'मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥'* (२। १०२। ५) इससे सूचित हुआ कि परमतत्त्वप्राप्तिके पूर्व दोष-दुःखादि रहते ही हैं। योगीको इसकी प्राप्तिके लिये यम-नियमादि जटिल साधना करनी पड़ती है। इस उत्प्रेक्षासे सिद्ध हुआ कि जबसे मुनिके साथ दोनों भाई गये थे तबसे माताएँ उनके ध्यानमें यम-नियमादिका पालन करती और उदासीन रहती थीं। पर योगी तो परिमित आहार-निद्रादिका सेवन करते ही हैं और माताओंने वह भी छोड़ दिया, यह बतानेके लिये *'अमृत लहेउ जनु संतत रोगी'* यह उत्प्रेक्षा की। सतत रोगी प्रयत्न करता है फिर भी उसे न नींद आवे, न भूख लगे, शरीर विवर्ण और निस्तेज हो जाता है, इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है, इत्यादि। वैसे ही माताएँ व्रतादि करतीं, देवादिको मनातीं, पुत्रोंकी कुशलकी चिन्तामें विवर्ण हो रही थीं। जैसे सतत् रोगीको अमृत मिलनेसे वह सर्वरोगमुक्त होनेपर उत्सवादि करता, व्रत-मानता इत्यादिकी सांगताके लिये देवादिको पूजता, वैसे ही माताओंने *'देव पितर पूजे बिधि नीकी'।* अमृतलाभसे शारीरिक सुख हुआ तथापि धन न होनेपर दुःख सतावेगा ही, इससे तीसरी उत्प्रेक्षा करते हैं।

टिप्पणी—२ *'जनम-रंकु जनु पारस'''* इति। (क) जन्मके दरिद्रको जैसे पारस पानेसे सुख हो। पारसकी प्राप्तिमें बड़ा सुख होता है, इसीसे श्रीरामजीके चरणचिह्नकी उपमा-(उत्प्रेक्षा-) में इसको लिखते हैं, यथा—*'हरषहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायउ रंका॥'* (२। २३८) श्रीरामानुरागी पारसको हाथसे नहीं छूते, यथा—*'रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥'* (२। ३२४) पारस रमाका विलास है। श्रीरामजीकी प्राप्तिके आगे पारस कुछ भी नहीं है। वैसे ही माताओंका सुख जन्म-दरिद्रके पारसकी प्राप्तिके सुखसे कहीं अधिक है। पारस तो श्रीरामजीके चरणकी धूलिकी उपमा है, श्रीरामजीसे इतना कम है (तब वह माताओंके सुखकी उपमा कैसे हो सकता है) (ख) *'अंधहि लोचन लाभु सुहावा'*—अन्धेको नेत्र मिले और कौसल्यादि माताओंको तो जो नेत्रोंके होनेका फल है वह मिला। नेत्रोंका फल श्रीरामजी हैं, यथा—*'देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥'* अन्धेको नेत्रकी प्राप्ति हुई पर उनका जो लाभ है, श्रीरामदर्शन, वह न मिला। (ग) *'सुहावा'* का भाव कि अच्छे नेत्र और अच्छी दृष्टि मिली, सामान्य नहीं।

श्रीनंगे परमहंसजी—माताओंको दरिद्रकी समता देकर जनाया कि जैसे दरिद्री द्रव्यहीन खाने-पहननेसे

दु:खी, वैसे ही माताओंके वियोगमें (खाना-पहनना) अच्छा नहीं लगता था, गरीबोंकी-सी दशा बनी रहती थी। जैसे अन्धा नेत्र-विहीन होनेसे दु:खी, वैसे ही माताएँ वियोगसे दु:खी होकर बैठी रहती थीं, कोई बात भी बुद्धिसे नहीं सूझती थी कि क्या करूँ। रामरूपी नेत्र पाकर सुखी हुईं। श्रीरामको नेत्रकी समता दी गयी है, यथा—*'निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिष चाहति चीखा॥'* (प्रज्ञानानन्द स्वामीजीने प्राय: यही भाव इन शब्दोंमें लिखा है—'जन्मदरिद्रको सम्पत्तिजनक उपभोगोंका अभाव होता है, उसकी दशा दीन होती है। वैसे ही माताओंने जान-बूझकर रमा-विलासका त्याग कर दिया था, दीन हो रही थीं। इससे ऐहिक ऐश्वर्य और तज्जनित सुखकी प्राप्ति बतायी। *'अंधहि लोचन लाभ'* से जनाया कि माताओंने अपने नेत्र बंद-से कर रखे थे कि नेत्रोंकी सफलता जिनके दर्शनसे होती है, जब वे ही यहाँ नहीं हैं तब किसे देखूँ।)

टिप्पणी—३ *'मूक बदन जनु सारद छाई'''।'* इति। (क) शारदाका मुखमें निवास कर लेना बड़ा सुख है, यथा—*'मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगहि गिरा प्रसादू॥'* शारदाकी प्राप्तिसे श्रीरामजीकी प्राप्ति अनन्तगुण अधिक है। गूँगेको शारदाकी प्राप्ति हुई और कौसल्यादि माताओंको श्रीरामजीकी प्राप्ति हुई। श्रीरामजी शारदासे अमितकोटिगुण अधिक हैं, यथा—*'सारद कोटि अमित चतुराई।'* (७।९२) (अत: माताओंका सुख गूँगेके सुखसे अमित-कोटिगुण अधिक है) (ख) *'मानहु समर सूर जय पाई'*—सूरने जय पायी और कौसल्याजीने रामजीको पाया। जयसे श्रीरामजी अनन्तगुण अधिक हैं, क्योंकि जय पाकर लोग भवसागरसे पार नहीं होते और श्रीरामजीको पाकर जीव तर जाते हैं। यथा—*'जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धरमनिरत पंडित बिज्ञानी॥ तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥'* (७। १२४) (ग) समरमें जय पाना सुखकी अवधि (सीमा) है, इसीसे इसे अन्तमें लिखा और इससे भक्तिकी उपमा दी, यथा—*'बिरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि। जय पाइय सो हरिभगति देखु खगेस बिचारि॥'* (७। १२०) (घ) *'मूक बदन जनु सारद छाई'* यह ब्राह्मणका सुख है, *'मानहु समर सूर जय पाई'* यह क्षत्रियका सुख है और *'जनम रंक जनु पारस पावा'*। यह वैश्यका सुख है। धनवान् होना, अतिथि-सेवा करना यह वैश्यका धर्म है, यथा—*'सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥'* (२।१७२)

श्रीनंगे परमहंसजी—गूँगेकी समता देनेका भाव कि जैसे गूँगा वाणी बिना दु:ख सहता है (क्योंकि वह अपने दिलकी बात किसीसे कह नहीं सकता) वैसी ही दशा माताओंकी हो गयी थी। उनको किसी दूसरेसे बोलना अच्छा नहीं लगता था, चुपचाप बैठी रहती थीं। गूँगेको वाणी मिलनेसे जो सुख होता है उसके शतकोटिगुण सुख माताओंको श्रीरामप्राप्तिसे हुआ (क्योंकि श्रीरामजी शारदासे अनन्तगुण अधिक हैं, यथा—*'शारद कोटि अमित चतुराई'*)। जैसे वीर समरमें प्रथम प्राण अर्पण कर देता है, पीछे जय पाता है। वैसे ही माताओंने प्रथम अपने प्राणरूप श्रीराम-लक्ष्मणजीको ताड़का-सुबाहु आदिके वधके लिये मुनिको अर्पण किया। जैसे वीरोंको युद्धमें प्राणोंसहित विजय प्राप्त होनेसे सुख होता है, वैसे ही माताओंको प्राणरूप श्रीरामजीके साथ त्रिभुवन-विजयरूपा श्रीजानकीजीकी प्राप्ति होनेसे शतकोटिगुण सुख प्राप्त हुआ।

प० प० प्र०—*'मूक बदन'''जय पाई।'* मूककी उत्प्रेक्षासे जनाया कि जिनके नाम-रूप-लीला आदिके कीर्तनका अभ्यास माताओंको पड़ा हुआ था, उनके दृष्टिसे बाहर चले जानेपर उन्होंने बोलना ही बंद कर दिया था, इससे कर्मेन्द्रियकी तृप्ति बतायी। *'सूर जय पाई'* से जनाया कि जैसे जयसे कीर्ति, नूतन ऐश्वर्य आदिकी प्राप्ति होती है, वैसे ही राम-माता होनेसे इनकी कीर्ति, पुत्र-वधुओं और आनन्दोत्सव आदिकी प्राप्ति हुई। [हमने विस्तार अनावश्यक समझकर सारांश लिख दिया है। मा० सं०]

टिप्पणी—४ *'एहि सुख ते सतकोटि गुन पावहिं मातु अनंदु'''।'* इति। (क) परमतत्त्वसे शतकोटि-गुण माताओंको आनन्द है। भाव यह कि योगियोंको परमतत्त्व भासित होता है और माताएँ चारों भाइयोंको बहुओंसहित आँखोंसे देख रही हैं, ब्रह्मसुखकी अपेक्षा श्रीरामजीका प्रत्यक्ष दर्शन बहुत अधिक है, यथा—*'इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा॥'* (२१६। ५) इसी तरह उपर्युक्त सब सुखोंसे श्रीरामजीकी प्राप्तिका गुण अनन्तगुण अधिक है। (ख) *'भाइन्ह सहित बिबाहि घर आये'''''''* इति। *'घर*

आए' का भाव कि जबसे श्रीविश्वामित्रजी श्रीराम-लक्ष्मणजीको राक्षसोंसे युद्ध करनेको लिवा ले गये तबसे माताओंको बड़ा शोच रहा है कि न जाने हमारे पुत्र कुशलसे हैं (या क्या हाल है) कभी पुनः घर लौटकर आयँगे।

नोट—१ जितना ही क्लेश अधिक होता है उतना ही उसकी निवृत्तिसे अधिक सुख होता है। माताएँ कितनी अधिक चिन्तातुर थीं यह गीतावली बालकाण्डके निम्न पदोंसे कुछ अनुभवमें आ जायगा, यथा—(पद ९७) *'मेरे बालक कैसे धौं मग निबहेंगे। भूख पियास सीत श्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे॥ १॥ को भोरहीं उबटि अन्हवैहै काढ़ि कलेऊ दैहैं। को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन सुख लहिहैं॥ २॥ नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी। ते पठए रिषि साथ निसाचर मारन मख रखवारी॥ ३॥ सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छधर दोऊ। तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि होइहै दिन सोऊ॥ ४॥'* (पद ९८) यथा—*'रिषि नृपसीस ठगौरी-सी डारी। कुलगुरु सचिव निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी॥ १॥ सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी। पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी॥ २॥ अति सनेह कातरि माता कहै सुनि सखि बचन दुखारी। बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी॥ ३॥ जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी॥ ४॥'* (पद ९९) यथा—*'जब तें लै मुनि संग सिधाए। रामलषन के समाचार सखि तब तें कछुअ न पाए॥ १॥ बिन पानहीं गमन फल भोजन भूमि सयन तरु छाहीं। सर सरिता जलपान सिसुन के संग सुसेवक नाहीं॥ २॥ कौसिक परम कृपालु परम हित समरथ सुखद सुचाली। बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली॥ ३॥ बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह बस रानी'''।'* ऐसी सोच-चिन्तारत थीं, इससे श्रीरामदर्शन और फिर बहुओंसहित चारों भाइयोंके दर्शनसे निस्सीम सुख हुआ ही चाहे।

नोट—२ बैजनाथजीका मत है कि 'मुख्य माताएँ तीन हैं। यहाँ छः प्रकारके सुखोंका उल्लेख किया गया है। तीनों माताओंमेंसे प्रत्येकके लिये यहाँ दो-दो प्रकारके लाभ और सुख दिखाते हैं। वेदोंमें ज्ञान, उपासना और क्रिया—ये तीन शक्तियाँ हैं। दशरथजी वेदके अवतार हैं और तीनों रानियाँ क्रमसे तीनों शक्तियाँ हैं, यथा—शिवसंहितायाम्—**'ज्ञेयो दशरथो वेदःसाध्यसाधनदर्शनः। क्रिया ज्ञानं तथोपास्तिरिति शक्तित्रयी सताम्॥ तासां क्रियां तु कैकेयीं सुमित्रोपासनात्मिकाम्। ज्ञानशक्तिं च कौसल्यां वेदो दशरथो नृपः॥'** (क) ज्ञानशक्ति कौसल्याजी हैं। ज्ञानके साधनदेशमें जीवके भवरोग हैं। जब साधन करके स्वरूपका ज्ञानरूप अमृत पाया तब जीव आत्मारूप अमर हुआ। वैसे ही यथा जन्मरोगीने अमृत पाया, वैसा आनन्द श्रीकौसल्याजीको हुआ। पुनः सिद्धदेशमें परमात्मरूपकी प्राप्तिमें अचल आनन्द तथा *'पावा परम तत्व जनु जोगी'* ऐसा आनन्द हुआ। (ख) सुमित्राजी उपासना हैं। उपासनाके साधनदेशमें जीव रंक है। नवधादि साधनसे भक्तिरूप पारस पा संतोषी हुआ। सिद्धदेशमें जो जीव अन्धा रहा उसे रामरूपदर्शन नेत्रोंका लाभ हुआ। (ग) कैकेयीजी क्रिया हैं। साधनदेशमें जीव मूक रहा। विद्याध्ययन—पूजा-पाठकर विद्वान् हुआ पुनः सिद्धदेशमें पुरश्चरण आदि कर कार्य-सिद्धिरूप जय पायी। कर्मकर्तव्यता समर है, कर्त्ता शूर है, कार्य-सिद्धि जय है। तथा कैकेयीजीको आनन्द हुआ।'

इसपर नंगे परमहंसजी लिखते हैं कि 'यहाँ सब उपमाएँ माताओंके लिये हैं। उपमा यथार्थ वस्तुकी होती है। उपमामें अन्धा है, मूक है, योगी है, रङ्क है, शूर है और उपमान माताएँ हैं। जो-जो धर्म उपमामें हैं, वही धर्म उपमानमें लगाया जायगा तब उपमेयका स्वरूप होगा। यहाँ जीवका भाव लेना अयोग्य है।'

नोट—३ पाँड़ेजी लिखते हैं कि 'पिछली चौपाइयोंमें दशरथका वर्णन है कि मनु-शतरूपा-शरीरमें इन्द्रियोंको जीत योग किया, उसका फल यह पाया कि चारों पुत्र उत्पन्न हुए और सदैवसे जो यह पुत्र-वासनाके रोगी थे उनको मानो अमृत प्राप्त हुआ। वंश बिना जो-जो दरिद्री जन्मके थे सो पारसस्थानमें पुत्रोंको पाया और उपाय न सूझनेसे अन्धे हो रहे थे सो पुत्र पाके मानो लोचनके लाभको प्राप्त हुए।

और समरमें जयरूपा जानकी प्राप्त हुई। सो इन बातोंसे जैसा आनन्द उन्हें हुआ उससे सौ कोटि गुना आनन्द माताओंको उस समय हुआ जब रघुकुलचन्द विवाह करके घर आये।'

टिप्पणी—५ *'रघुकुल-चंदु'* का भाव कि चन्द्रमा सुखदाता है, यथा—*'प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिश्व सुखद खल कमल तुसारू॥'* (१६। ५) *'प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥'* (२३७। ८) *'रघुकुलचंद'* को देखकर माताओंको सुख मिला, इसीसे *'रघुकुलचंदु'* कहा।

टिप्पणी—६ *'लोकरीति जननीं करहिं''''* इति। (क) यहाँ केवल लोकरीति करना कहा, क्योंकि कुलरीति और वेदरीति ये दो रीतियाँ कर चुकी हैं, यथा—*'निगम नीति कुलरीति करि अरघ पाँवड़े देत।'* (३४९) रही लोकरीति, वह माताएँ अब करती हैं। लोकरीति अर्थात् कोहबरमें ले जाकर वर और दुलहिनको आपसमें जुआ खेलाती हैं। [निज कुलदेव श्रीरङ्गजीके मन्दिरमें चौक पूरकर उसपर सदीप धान्य-पल्लव कलश स्थापित किया हुआ है। वर-दुलहिनकी गाँठ जोड़कर वहाँ ले जाकर प्रथम गणेश-गौरीका पूजन कराके फिर ग्रामदेव आदिका पूजन कराके सबको प्रणाम कराया। तत्पश्चात् श्रीरङ्गदेवजीको प्रणाम कराया। लहकौरकी रसम-रीति की, फिर थालमें भूषण डालकर जूआ खिलाती हैं—(वै०)। यह न तो वेदरीति है और न कुलरीति। (ख) *'बर दुलहिनि सकुचाहिं'* इति। आपसमें जूआ खेलनेमें माताओंको सकुचाते हैं। [बैजनाथजीका मत है कि श्रीभरतादि भाई अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ जूआ खेलनेमें श्रीरामजीको सकुचाते हैं, तीनों दुलहिनें अपने जेठों-(पतिके बड़े भाइयों-) को सकुचाती हैं। फिर हार-जीत देखकर सखियाँ गाली गाती हैं, जो हारता है वह सकुचाता है। मयङ्ककारजी लिखते हैं कि 'सकुचानेका भाव यह है कि—जनकपुरमें छबीली सखियोंके साथ शृङ्गाररसवश हास होता था। अतएव वहाँ सकुच नहीं मालूम होता था, परंतु यहाँ वात्सल्यरसपूरित माताओंके सम्मुख लोकरीति होनेसे सकुचाते हैं।'] (ग) *'मोदु बिनोदु बिलोकि बड़'* इति। *'बिनोद'* शब्द कहकर लोकरीतिको स्पष्ट कर दिया कि विनोद अर्थात् क्रीड़ा करते हैं अर्थात् जूआ खेलते हैं। (घ) *'रामु मनहि मुसुकाहिं'* इति। भाव कि श्रीरामजी इतना सकुचाते हैं कि प्रकट नहीं हँसते। *'मुसुकाने'* का भाव कि कभी बहुएँ हार जाती हैं और कभी जीत जाती हैं, तब मनमें मुसकाते हैं। जनकपुरमें क्रीड़ा (जूआ-खेल) कराके सब स्त्रियाँ हँसती थीं; यथा—*'रनिवास हास बिलास रस बस जन्म को फल सब लहैं॥'* (३२७ छंद) क्योंकि जनकपुरकी स्त्रियोंका हँसी करना उचित है। यहाँ माताओंका हँसी करना उचित नहीं है, इसीसे माताएँ क्रीड़ा कराती हैं, पर हँसती नहीं हैं।

नोट—४ मयङ्ककार लिखते हैं कि 'श्रीरामचन्द्रजी कोहबरमें मोद-विनोदको देखकर मन-ही-मन मुसकाते हैं, इसका भाव यह है कि रामचन्द्रजी यह विचार कर मुसकाते हैं कि *(अति सर्वत्र वर्जयेत्)* अत्यन्त आनन्द भी वर्जनीय है, अत्यन्त आनन्दमें मिथिलावासी मग्न थे तो अन्ततः उनको उस सुखका अनुभव होनेसे दुःख भी भोगना पड़ा, इसी प्रकार अवधवासी भी बारह वर्षके उपरान्त वैसे ही दुःख भोगेंगे यह जानकर मुसुकाते हैं।' बैजनाथजी लिखते हैं कि *'बिनोद'* अर्थात् लौकिक लीलाका बड़ा भारी आनन्द देखकर श्रीरघुनाथजी मनमें मुसुकाते हैं कि जो योगियोंको ध्यानमें भी अगम हैं वे ही हम लौकिक रीतिमें बाँधे हुए फिरते हैं, सब देवता हमसे पैर पुजाते हैं। अथवा यह आनन्द ही ऐसा है, जीव बेचारा इसमें कैसे न भूल जाय, यह सोचकर मुस्कराते हैं। अथवा यह सुख साकेतमें नहीं था, इसी सुखके लिये तो हमें पुत्र करके माँगा है, यह सोचकर मन-ही-मन हँसते हैं।' प्रज्ञानानन्द स्वामीजीका मत है कि प्रभु जब मुस्कराते हैं तब मायाका आकर्षण करके ऐश्वर्यभावको निगूढ़ करते हैं। मुस्काते हैं जिसमें माताओंके हृदयमें माधुर्यभात्र ही रह जाय, ऐश्वर्यभाव न प्रकट होने पाये।

नोट—५ यहाँ छः दृष्टान्त दिये गये। इस विषयमें कुछ महानुभावोंके ये मत हैं कि जीवके छः शत्रु हैं, वा विकार छः हैं, अतः छः दृष्टान्त दिये। अथवा आनन्दको विचारकर दृष्टान्त देते गये किसीसे जी नहीं भरा। अन्तमें छः उपमाएँ देकर फिर उपमा देना छोड़ दिया।

देव पितर पूजे बिधि नीकीं। पूजी सकल बासना जी कीं॥ १॥
सबहि बंदि माँगहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥ २॥

अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥ ३॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥ ४॥
आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गये सब निज निज धामहि॥ ५॥

शब्दार्थ—**पूजना**=पूरा होना। (यह सं० पूर्यते। प्रा० पुजतिसे बना है)। **अंतरहित** (अन्तर्हित)=अदृश्यरूपसे, गुप्त, छिपे हुए।

अर्थ—मनकी सब कामनाएँ पूरी हुईं (अतः माताओंने) देवता और पितरोंकी बहुत अच्छी तरह (विधिपूर्वक) पूजा की॥ १॥ सबकी वन्दना करके (वे) यही वरदान माँगती हैं कि भाइयोंसहित श्रीरामजीका कल्याण हो॥ २॥ देवता छिपे हुए ही 'आशीर्वाद दे रहे हैं' और माताएँ प्रसन्न होकर (आशीर्वादोंको) अंचल (पसारकर) भर-भरकर लेती हैं॥ ३॥ राजा श्रीदशरथजीने बारातियोंको बुलवा लिया (और उनको) सवारियाँ, वस्त्र, रत्न और आभूषण दिये॥ ४॥ आज्ञा पाकर श्रीरामजीको हृदयमें रखकर वे सब आनन्दित हो अपने-अपने घरोंको गये॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'पूजे बिधि नीकीं'* इति। भाव कि वासनाएँ बहुत ही अच्छी प्रकारसे और खूब पूर्ण हुईं, इसीसे बहुत अच्छी प्रकारसे पूजा की। इससे जनाया कि माताओंने मानता मानी थी कि 'यदि हमारे पुत्र यज्ञरक्षा करके मारीचादि राक्षसोंपर विजय पाकर कुशलपूर्वक घर लौट आवें तो हम बहुत भलीभाँतिसे आपकी पूजा करेंगी।' वे जानती हैं कि विश्वामित्रजी लड़कोंको राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये ले गये हैं, यथा—*'असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाँचन आयउँ नृप तोही॥ अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचरबध मैं होब सनाथा॥'* (१। २०७) इसीसे उनके मनमें शोच रहा है। (जानकीमंगलमें भी कहा है—*'पुरबासी नृप रानिन्ह संग दिये मन। बेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनंदन।* १७। *ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु। न्हात खसै जनि बार गहरु जनि लावहु।'*) (ख) *'पूजी सकल बासना जी कीं'* इति।—राक्षसोंपर विजय हो, मुनिके यज्ञकी रक्षा हो, कुशलपूर्वक घर लौटें, पुत्रोंके योग्य बहुएँ मिलें, यश प्राप्त हो। इत्यादि समस्त वासनाएँ हैं। [शंकरजीने आगमीरूपसे आकर *'जनम प्रसंग कहेउ कौसिक मिस, सीय स्वयंबर गायो। राम भरत रिपुदवन लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥'* तब *'तुलसिदास रनिवास रहसबस भयो सबको मन भायो।'* (गीतावली १। १४) इससे विवाहकी भी वासना सिद्ध होती है। विशेष पूर्व लिखा जा चुका है। (२०८। ८, दो० २०८) देखिये]। सब पुत्र बहुओंसहित कुशलपूर्वक विजय और यश पाकर लौट आये, इससे माताओंके आनन्दका पार नहीं।

टिप्पणी—२ *'सबहि बंदि माँगहिं बरदाना।'''*' इति। प्रथम पूजाकी मन्नत मानी, तब चारों भाई ब्याह करके घर आये। अब वर माँगती हैं कि आपकी कृपासे चारों भाई बहुओंसमेत कुशल रहें। *'भाइन्ह सहित राम कल्याना'* कहनेका भाव कि जब सब भाइयोंका कल्याण हो तब श्रीरामजीका कल्याण है। (इससे जनाया कि श्रीरामजी अपने भाइयोंके सुखसे सुखी होते हैं; बिना भाइयोंके सुख भी भोगना नहीं चाहते। यथा—*'जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥ करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥ बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥ प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।'* (२। १०) यह भी सूचित किया कि माताओंको चारों भाई प्रिय हैं)।

टिप्पणी—३ *'अंतरहित सुर आसिष देहीं।'''*' इति। (क) देवताओंके गुप्त रहनेका भाव यह है कि देवता मन्त्रद्वारा प्रकट होते हैं। विवाहमें जब ब्राह्मणोंने मन्त्र पढ़कर उनका आवाहन किया तब सब देवता प्रकट हुए। जब रानियोंने देव और पितृका पूजन किया तब वे गुप्त रहे। इसीसे उन्होंने गुप्त आशीर्वाद दिया। माताने सबका कल्याण माँगा और देवताओंने कल्याण होनेका आशीर्वाद दिया। [*'अंतरहित'* अर्थात् देख नहीं पड़ते; केवल उनकी वाणी सुनायी देती है। मूर्त्तिका बोलना अमङ्गल माना जाता है, परंतु यहाँ मूर्ति नहीं बोल रही है, देवता स्वयं अदृश्यरूपसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

पंजाबीजी कहते हैं कि *'अंतरहित'* में यह भाव है कि 'वह आशीर्वाद 'अन्त-रहित है वा अन्त:करणसे हितपूर्वक' है। प्रीतिके वास्ते आशीर्वाद देते हैं। वा, अन्त-रहित अविनाशी होनेका वर देते हैं। वा, अन्तरहित अमर जो देवता वे आशीर्वाद देते हैं।' 'पंजाबीजी कहते हैं कि अवधमें तो सदा देवता प्रकट होते हैं, यहाँ छिपकर वरदान देनेका कोई हेतु नहीं जान पड़ता, अत: वे ऐसे अर्थ करते हैं। स्वामी प्रज्ञानानन्दजीका मत है कि देवता श्रीरामजीका मर्म जानते थे कि वे कौन हैं इससे श्रीसीतारामजीको आशीर्वाद देना उनको लज्जास्पद था, तथापि माताओंके आन्तरिक प्रेमके कारण उनको आशीर्वाद दिया जिसमें उनका समाधान हो जाय।] (ख) *'अंचल भरि लेहीं'*—यह स्त्रियोंकी रीति है, नहीं तो आशीर्वाद अञ्चलमें कैसे लिया ज़ा सकता है, वह कोई स्थूल पदार्थ तो है नहीं। (ग) यहाँतक रानियोंका कृत्य कहकर आगे राजाका कृत्य कहते हैं।'

टिप्पणी—४ (क) *'भूपति बोलि बराती लीन्हें'* इति। जब रानियाँ चारों भाइयोंको बहुओंसहित भीतर ले गयीं, तब राजाने बारातियोंको बुलाकर विदा किया। *'बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुख न समाहीं॥'* (३४८। ४) पर बारातियोंका प्रसंग छोड़ा था, अब वहींसे पुन: कहते हैं—*'भूपति बोलि····'*। *'जान'* (यान) रथ, हाथी, घोड़ा, पालकी, नालकी आदि सभी सवारियोंका वाचक है, यथा—*'मागध सूत बंदि गुननायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥'* (३००। ५) *'बसन'*—ऊनी, रेशमी, कार्पासी, कौशेय आदि सभी प्रकारके वस्त्रका ग्रहण इस शब्दसे हो गया। इसी तरह *'मणि'* से सब प्रकारके रत्न और भूषणसे सब प्रकारके भूषण जना दिये। (ख) *'आयेसु पाइ राखि उर रामहि।····'* इति। राजाने बारातियोंको बुलाकर उनका सत्कार किया और बाराती राजाकी आज्ञासे आ गये; यह दोनों ओर परस्पर अन्योन्य भाव दिखाया। राजाने बारातियोंमें भाव किया वैसे ही बारातियोंने राजामें किया। श्रीरामजी महलके भीतर हैं, यह पूर्व कह चुके हैं—*'बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत।'* (३४९) इसीसे बाराती श्रीरामजीका ध्यान करके, उनको हृदयमें रखकर चले। *'मुदित गये सब····'* का भाव कि यान, वसन, मणि और आभूषणोंके पानेसे बाराती मुदित न हुए, जब श्रीरामजीको हृदयमें रखा तब मुदित हुए। इससे जनाया कि श्रीअयोध्यावासियोंकी प्रीति श्रीरामजीमें है, पदार्थोंमें नहीं है।

पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥६॥
जाचक जन जाचहिं जोइ जोई*। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई*॥७॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किये दान सनमाना॥८॥
दो०—देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुनगन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ॥३५१॥

अर्थ—(बारातियोंको विदा करके राजाने) श्रीअयोध्याजीके सब स्त्री-पुरुषोंको (भूषण-वस्त्र) पहनाये। घर-घर बधावे बजने लगे॥६॥ याचक लोग जो-जो माँगते हैं राजा अत्यन्त आनन्दित हो वही-वही देते हैं॥७॥ सभी (नाऊ, बारी, कहार आदि) सेवकों और सभी अनेक बाजा बजानेवालोंको (राजाने) दान-सम्मानसे पूर्ण (भरपूर प्रसन्न वा संतुष्ट) कर दिया॥८॥ सब प्रणाम कर-करके आसिष देते और गुणगणोंकी कथा गाते हैं। (इतना कृत्य करके) तब राजाने गुरु और ब्राह्मणोंसहित गृह-प्रवेश किया (घरमें गये)॥३५१॥

टिप्पणी—१ (क) *'पुर नर नारि सकल पहिराए।'* इति। 'पहिरावन' अर्थात् पहननेकी वस्तुओंके नाम आगे कवि स्वयं लिखते हैं, यथा—*'बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं॥'* (३५३। ४) *'पुर नर नारि'* कहकर जनाया कि नगरमें कोई न बचा, प्रत्येक घरमें जितने स्त्री और पुरुष हैं सबोंको

* जोइ सोइ १६६१।

सब पहरावन (अर्थात् सिरसे पैरतकके पाँचों कपड़े) और नखसे शिखतक जितने आभूषण पहने जाते हैं, वे सब आभूषण पहनाये। (ख) *'घर घर बाजन लगे बधाए'*—जब घर-घर पहरावन पहुँचा तब घर-घर बधाई होने लगी। सुखके अवसरपर बाजोंका बजना *'बधाई'* कहलाता है। यथा—*'गये जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा।'* (१७२।५) जब श्रीरामजीका समाचार मिला तब बधाई बजी, जब वे ब्याह करके घर आये तब बजी, यथा—*'समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥'* (२९६। २) *'घर घर बाजन लगे बधाए।'* (ग) *'जाचक जन जाचहिं.........'* इति। याचक हैं, इसीसे याचना करना कहते हैं। *'प्रमुदित'* कहनेका भाव कि याचना करना अशोभन है, पर याचकोंका याचना करना शोभन है, (यथा नाम तथा गुण), इसीसे याचकोंका माँगना सुनकर राजा प्रसन्न होते हैं, यह राजाकी उदारता है। पुनः भाव कि एक याचक अनेक वस्तुओंको माँगता है तो भी रुष्ट नहीं होते किन्तु विशेष प्रसन्न होकर देते हैं। पुनः भाव कि एक वस्तु माँगता है तब मुदित होते हैं और जब अनेक वस्तुएँ माँगता है तब *'प्रमुदित'* होते हैं (ज्यों-ज्यों माँगते हैं त्यों-त्यों अधिक आनन्द होता है)।

टिप्पणी—२ (क) *'सेवक सकल.....'* इति। ये सेवक भीतर जानेवाले नहीं हैं, इसीसे इन्हें द्वारपर ही विदा किया। सब सेवकों और बाजेवालोंका 'दान-सनमान' से पूर्ण करना कहते हैं। इसपर शंका होती है कि 'दान तो वही कहलाता है जो ब्राह्मणोंको दिया जाय, तब यहाँ सेवक और बाजेवालोंको 'दान' से पूर्ण करना कैसे कहा?' इसका समाधान यह है कि यहाँ 'धर्मवाला दान' अर्थ नहीं है। किसी वस्तुके देनेको भी दान कहते हैं, यथा—*'साम दाम अरु दंड बिभेदा'* में *'दाम'* (इसमें 'शत्रुको कार्यसिद्धिके लिये कुछ देना' दान (नीति) कहा गया।) (ख) *'पूरन किये'* कहनेका भाव कि (सेवक वेतन पाते हैं और बाजेवाले अपनी मेहनत-मजूरी पाते हैं परंतु) उनको उनके वेतन, मेहनत-मजूरीसे अधिक दिया। (ग) *'दान सनमाना'* इति। पुरके स्त्री-पुरुषों, सुहागिनों और ब्राह्मणियोंको जो दिया जाता है वह *'पहरावन'* कहलाता है, इसीसे उनके सम्बन्धमें *'पहिराए'* वा पहिरावन शब्दोंका प्रयोग किया गया। यथा—*'पुर नर नारि सकल पहिराए'* *'बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं।'* (२५२। ४) *'बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्ही। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्ही।'* (२५२। ५) सेवकों और बाजेवालोंको देना पहरावन नहीं है, वह तो उनकी मेहनत है, इसीसे उनके देनेमें यह शब्द नहीं दिया—

टिप्पणी—३ *'देहिं असीस जोहारि सब...'* इति। (क) सबको दान-सम्मानसे पूर्ण किया, इसीसे अब आशिष देते हैं। *'जोहारि'* (अर्थात् प्रणाम करके) कहनेका भाव कि राजासे विदा होकर चलना चाहते हैं, इसीसे प्रणाम किया। यहाँतक बाहरका जितना काम था वह पूरा हुआ। तब राजा घरको चले। (ख) *'गवनु कीन्ह नरनाथ'* इति। *'नरनाथ'* का भाव कि सब पुरुषोंपर ममत्व रखते हैं, ये सब हमारे हैं यह भाव रखते हैं, इसीसे सबको सम्मान करके—सुखी करके तब भीतर गये। गुरु और ब्राह्मणोंको साथ ले जानेका तात्पर्य आगे लिखते हैं—

जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥ १॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥ २॥
पाय पखारि सकल अन्हवाये। पूजि भली बिधि भूप जेंवाए॥ ३॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले* मन तोषे॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीने जो आज्ञा दी उसे लोक और वेद-विधिके अनुसार राजाने आदरपूर्वक किया॥ १॥ ब्राह्मणोंकी भीड़ देखकर अपना बड़ा भारी भाग्य जानकर सब रानियाँ आदरपूर्वक उठीं॥ २॥ चरण धोकर

* सकल—१७२१, १७६२, छ०। चले—१६६१, १७०४, को० रा०।

उन्होंने सबको स्नान कराया और भली प्रकार पूजा करके राजाने उनको भोजन कराया॥ ३॥ आदर, दान और प्रेमसे परिपुष्ट हुए वे मनसे संतुष्ट होकर आशीर्वाद देते हुए चले॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'जो बसिष्ठ अनुसासन'''* इति। जब चारों भाई भवनमें आये तब रानियोंने वेदरीति और कुलरीति की *'निगम नीति कुलरीति करि अरघ पाँवड़े देत।'* अब राजाने भवनमें प्रवेश किया, तब राजा वसिष्ठजीकी आज्ञासे लोक-वेद-विधि करते हैं। वसिष्ठजी पुरोहित हैं और यह काम पुरोहितका है, इसीसे उनकी आज्ञासे किया। *'सादर'* शब्दसे जनाया कि लोक-वेदविधि करनेमें राजाको बड़ी श्रद्धा है। गुरुजीको सङ्गमें लाये, उनका काम कह चुके। आगे गुरुजीकी पूजा होगी। ब्राह्मणोंको साथमें लाये हैं, उनका काम आगे कहते हैं। (ख) *'भूसुर भीर देखि'''* इति। गुरुको देखकर उठना न कहा क्योंकि उसमें ब्राह्मणोंका निरादर होता। *'भूसुर भीर'* देखकर उठीं, इस कथनसे गुरुजीका अनादर न हुआ, क्योंकि वसिष्ठजी भी तो ब्राह्मण हैं। (*'भूसुर'* शब्द देकर जनाया कि देव-भावसे उनको देखकर उठीं) पतिको भी देखकर उठना न कहा, क्योंकि भूसुरको देखकर उठनेसे पतिका निरादर नहीं हुआ, किंतु वे भी यह ब्राह्मणभक्ति देखकर प्रसन्न हैं, (फिर वे सबके साथ हैं ही। अभिवादन सबका ही हो गया) (ग) *'सादर उठीं भाग्य बड़ जानी'* इति। देखकर शीघ्र ही उठना, किंचित् विलम्ब न करना *'सादर उठना'* है। देरसे उठतीं तो अनादर होता। *'सब रानी'* सबका उठना कहनेसे पाया गया कि ब्राह्मणोंमें सबको प्रेम है। दूसरे ब्राह्मण बहुत हैं, सबका पूजन करना है, इससे भी सब उठीं। तीसरे सभी उनका पूजन करनेके लिये उठीं। *'भाग्य बड़ जानी'* भाव कि विप्रोंका समाज बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है, यथा—*'बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग बड़ राउ अनंदे॥'* *'बड़े भाग्य'* जाननेका भाव कि एक ही ब्राह्मणके आगमनसे भाग्यका उदय हो आता है और हमारे यहाँ तो ब्राह्मणोंकी भीड़ आ गयी है, तब हमारे भाग्यका क्या कहना! [केवल एक ब्राह्मण विश्वामित्रजीके आनेसे कितना सुख प्राप्त हुआ और अब तो बहुत-से एक साथ ही आये हैं, तब हमें न जाने क्या मङ्गल मोद प्राप्त हो जाय। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ (क) *'पाय पखारि सकल अन्हवाये'* इति। स्नान करनेका भाव यह है कि ब्राह्मण बारातसे आये हैं, सबका स्पर्श हुआ है, बिना स्नान किये वे भोजन नहीं कर सकते, अतः स्नान कराया। दूसरे षोडशोपचार पूजनमें स्नान भी है। राजा ब्राह्मणोंको लिवा लाये हैं, यह आवाहन है। रानीने उनको चौकीपर बिठाया, यह आसन है। चरण धोये, यह पाद्य है। कुल्ली करनेको जल दिया, यह आचमन है। ब्राह्मणोंके आगे जल छोड़ा, यह अर्घ्य है। नहलाया, यह स्नान है।— यहाँतक रानियोंका कृत्य हुआ, आगे राजाका कृत्य कहते हैं। रानियोंने स्नान कराया, और राजाने भली प्रकार पूजा करके उनको भोजन कराया। रानियोंने स्नान कराया, इसका कारण यह है कि गुरुजीने राजाको लोक-वेद-विधि करनेकी आज्ञा दी थी, राजा लोक-वेद-विधि करने लगे। जितनी देर उन्हें लोक-वेद-विधिके करनेमें लगी उतनी ही देरमें इधर रानियोंने ब्राह्मणोंको स्नान करा दिया। यदि राजाको लोक-वेद-विधि कृत्य न करना रहा होता तो स्नान आदि सब काम स्वयं राजा ही करते-कराते। (ख) *'पूजि भली बिधि'* 'भली विधि' देहलीदीपक है। भली विधिसे (अर्थात् षोडशोपचार) पूजन किया और अच्छी प्रकार भोजन कराया।

टिप्पणी—३ *'आदर दान प्रेम परिपोषे।'''* इति। (क) ब्राह्मण मानकी इच्छा रखते हैं, इसीसे उनका आदर किया। ब्राह्मण दानके अधिकारी हैं, इसीसे उनको दान दिया। प्रेमके बिना भक्ति अपूर्ण रहती है इसीसे प्रेम किया। आदर-दान-प्रेमसे ब्राह्मणोंके शरीर पुष्ट अर्थात् प्रफुल्लित हुए। (ख) तन-मन-वचन तीनोंसे ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता दिखायी। तनसे प्रफुल्लित हुए, मनसे संतुष्ट हुए और वचनसे प्रसन्नताके कारण आशीर्वाद दिया। (ग) *'चले मन तोषे'* अभिप्रायसे सूचित होता है कि राजाने वचनसे आदर किया, तनसे दान दिया और मनसे प्रेम किया, इसीसे ब्राह्मण तन-मन-वचनसे प्रसन्न हुए।

बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा॥ ५॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी॥ ६॥

भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृपु रनिवासू॥ ७॥
पूजे गुर-पद-कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥ ८॥
दो०—बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु॥ ३५२॥

शब्दार्थ—**धन्य**=पुण्यवान्, सुकृती, भाग्यवान्। जोगवना=मनकी इच्छाको यत्नपूर्वक जोहते, देखकर पूर्ण करते रहना।

अर्थ—गाधिमहाराजके पुत्र विश्वामित्रजीकी बहुत विधिसे पूजा की (और बोले) हे नाथ! मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है॥ ५॥ राजाने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और रानियोंसहित उनके चरणोंकी धूलि ली अर्थात् शिरोधार्य की॥ ६॥ महलके भीतर (उनको ठहरनेके लिये) उत्तम स्थान दिया जिसमें राजा और रनवास उनका मन जोहते रहें॥ ७॥ फिर उन्होंने श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी पूजा और विनती की। उनके हृदयमें थोड़ी प्रीति नहीं है (अर्थात् यह सब उन्होंने बड़े ही प्रेमसे किया)॥ ८॥ बहुओंसमेत सब चारों राजकुमारों और सब रानियोंसहित राजा बारम्बार श्रीगुरुजीके चरणोंकी वन्दना करते हैं और मुनिराज आशीर्वाद दे रहे हैं॥ ३५२॥

टिप्पणी—१ *'बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा।'''* इति। (क) राजाके साथ विश्वामित्रजीका भीतर आना नहीं लिखा गया, परंतु यहाँ पूजा करनेमें भीतर लिख रहे हैं। इससे सूचित होता है कि *'गुर'* शब्दमें श्रीवसिष्ठजी और श्रीविश्वामित्रजी दोनोंका ग्रहण है (पूर्व कहा है कि *'तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ।'* (३५१) राजाके गुरु वसिष्ठजी ही हैं। इससे राजाके साथ जानेमें *'गुर'* शब्दसे श्रीवसिष्ठजीको लेना उचित जान पड़ता है।*'भूसुर'* में श्रीविश्वामित्र भी आ गये। *'बिप्र'* शब्दका प्रयोग इनके लिये हुआ भी है, यथा—*'बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।'* (२०८। २) *'अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं'''''''आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि।'*) (३३०) (ख)—*'बहु बिधि'* अर्थात् षोडश प्रकारसे। *'कीन्हि गाधिसुत पूजा'*—*'गाधिसुत'* कहकर जनाया कि पूजा करते समय राजाके मनमें यह भाव रहा कि ये पहलेके राजपुत्र हैं, अपने घोर तपसे ये ब्रह्मर्षि हुए, ये बड़े भारी तपस्वी मुनि हैं और इसी भावको रखे हुए उन्होंने पूजा की। (ग) *'नाथ मोहि सम धन्य न दूजा'* इति। विप्रपदपूजाके समान दूसरा पुण्य नहीं है, यथा—*'पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥'* (७। ४५। ७) मैंने आज यह (विप्रपदपूजारूपी) अद्वितीय पुण्य किया, इसीसे अद्वितीय पुण्यवाला हुआ। पुनः भाव कि जैसा ही भारी महात्मा मिलता है वैसा ही जीव भारी धन्य होता है। आपकी बराबरीका कोई महात्मा नहीं है (तपस्वी मुनीश्वरोंमें आपकी प्रथम गणना है, यथा—*'आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि।'* (३३०) *'सुनु मुनीस बर दरसन तोरे। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे।'*) (३४३। ३), इसीसे हमारे समान धन्य कोई नहीं है।

टिप्पणी—२ *'कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी'''।'* इति। (क) पूजा करके स्तुति करनी चाहिये, अतः प्रशंसा अर्थात् स्तुति की। 'भूरि' (बहुत) प्रशंसा करनेका भाव कि विश्वामित्रजीका पुरुषार्थ भारी है, यथा—*'मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी।'* (३५९। ६) दूसरे, विश्वामित्रजीके द्वारा राजाका बड़ा उपकार हुआ (विश्वामित्रजीने पूर्व ही कहा था—*'देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अज्ञान। धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान।'* (२०७) वह सब हुआ। राजा-रानियोंके मनोरथ भली प्रकार पूर्ण हुए। *'पूजी सकल बासना जी की'*)। उस उपकारको मानकर कृतज्ञता सूचित करनेके लिये बहुत स्तुति की। (ख) *'रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी'* इति। *'रानिन्ह सहित'* कहनेका भाव कि जैसा राजा विप्रसेवी हैं वैसे ही सब रानियाँ विप्रसेवी हैं, यथा—*'तुम्ह गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥'* (२९४। ४) इससे सब रानियाँ ब्राह्मणोंकी पूजामें सम्मिलित रहीं—*'पाय पखारि सकल अन्हवाए।*

पूजि भली बिधि भूप जेंवाए॥' श्रीविश्वामित्रजीकी पूजामें भी साथ रहीं—***'रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी।'*** और आगे गुरुपूजामें भी सम्मिलित होंगी—***'बधुन्ह समेत'''।'*** (ग) पदकी धूलि लेनेका भाव कि राजाको विभव चाहिये सो गुरुचरणरजसे सब विभव वशमें करते हैं। यथा—***'जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जन सकल बिभव बस करहीं।'*** (२।३)

प० प० प्र०—जिन दशरथजीने वचनबद्ध होकर भी कहा था कि ***'राम देत नहिं बनै गोसाईं'*** वही आज यह प्रशंसा कर रहे हैं, इससे दो सिद्धान्त चरितार्थ हुए—***'जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥ प्रीति बिना नहि भगति दृढ़ाई।'*** और ***'जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥'***

टिप्पणी—३ ***'भीतर भवन दीन्ह बर बासू।'''*** इति। (क) महलके भीतर वास देनेका भाव यह है कि यह सब सम्पदा आपकी है, मैं स्त्री-पुत्रोंसहित आपका सेवक हूँ। यथा—***'नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥'*** (३६०।६) इसीसे न तो बाहर वास दिया और न सेवकोंसे सेवा करायी। पुनः भाव कि राजा विश्वामित्रजीको पिता कह चुके हैं, यथा—***'तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।'*** (२०८।१०) इसीसे महलके भीतर वास दिया। आशय यह कि सब स्थान मुनिका समझकर मुनिको वहाँ ठहराया। (ख) ***'बर बासू'*** अर्थात् जो देखनेमें बहुत सुन्दर है और सब कालोंमें सुखद है, यथा—***'सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला।'*** (२१७।७) (ग) ***'मन जोगवत रह'*** अर्थात् मुनिके मनको देखा करते हैं, मुखसे कहना नहीं पड़ता। यथा—***'दासी दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हें।'*** (२।२१४।६)

टिप्पणी—४ ***'पूजे गुर-पद-कमल बहोरी।'''*** इति। (क) राजाने गुरुचरणोंमें तन-मन-वचनसे भक्ति की। तनसे श्रीगुरुपदकमलकी पूजा की, मनसे प्रीति की और वचनसे विनती की। तात्पर्य कि गुरुकी सब भाँतिसे सेवा करनी चाहिये, यथा—***'तुम्ह तें अधिक गुरहि जिय जानी। सकल भाँय सेवहिं सनमानी।'*** (२।१२९) वैसे ही राजाने की। ***'गुर-पद-कमल'*** कहकर जनाया कि गुरुपदकमलकी पूजा तीसरी भक्ति है, यथा—***'गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।'*** (३।३५) गुरुपदपूजा करके जनाया कि भगवान्‌की तीसरी भक्ति की। (ख) श्रीजनकजीने प्रथम वसिष्ठजीकी पूजा की, तब विश्वामित्रजीकी और उनके पीछे ब्राह्मणोंकी, यथा—***'कुलइष्ट सरिस <u>बसिष्ठ</u> पूजे बिनय करि आसिष लही। <u>कौसिकहि</u> पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥ <u>बामदेव आदिक</u> रिषय पूजे मुदित महीस।'*** (३२०) और राजा दशरथजीने प्रथम ब्राह्मणोंकी, फिर विश्वामित्रजीकी और तब वसिष्ठजीकी पूजा की। इससे सूचित किया कि प्रधानका पूजन चाहे आदिमें करे चाहे अन्तमें दोनों विधान हैं। श्रीवसिष्ठजी प्रधान हैं, इसीसे श्रीजनकजीने इनकी पूजा प्रथम की और श्रीदशरथजीने अन्तमें की। (ग) ***'कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी'*** इति। गुरु, देवता और ब्राह्मण आदिकी विनय प्रेमसे करनी चाहिये, यथा—***'सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥'*** (२।१२९) अतः प्रीतिसे विनय की। (प० प० प्र० का मत है कि ***'बहोरी'*** का अर्थ यहाँ 'फिरसे' 'दूसरी बार' करना चाहिये। प्रथम ब्राह्मणोंके साथ सामान्य पूजन किया, अब विशेष पूजन करते हैं)।

टिप्पणी—५ ***'बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह'''*** इति। (क) ***'बधुन्ह समेत कुमार सब'*** से जनाया कि चारों भाई सिंहासनोंसे उतरकर स्त्रियोंसहित आकर गुरुजीकी सेवामें सम्मिलित हुए। गुरु-सेवा भारी यज्ञके समान है। यज्ञ स्त्रीसहित किया जाता है। इसीसे चारों भाई स्त्रियोंसहित सेवा करते हैं, राजा भी रानियोंसहित सेवामें तत्पर हैं। (ख) ***'पुनि पुनि बंदत गुरुचरन'***—इससे पाया गया कि प्रेममें मग्न हैं, इसीसे बार-बार प्रणाम करते हैं, यथा—***'प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥'*** (३।३४।९) इत्यादि। ऊपर चौपाईमें गुरुजीकी पूजा और विनय करना लिख चुके, अब यहाँ वन्दन अर्थात् प्रणाम करना लिखते हैं। (ग) ***'देत असीस'*** कहकर सूचित करते हैं कि गुरुजी सबको पृथक्-पृथक् आसिष दे रहे हैं। (घ) वन्दनमें अभिवादन और स्तुति दोनों आ जाते हैं—**'वदि अभिवादनस्तुत्योः।'**

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत संपदा राखि सब आगे॥ १॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥ २॥
उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥ ३॥
बिप्र बधू सब भूप बोलाई। चैल* चारु भूषन पहिराई॥ ४॥

शब्दार्थ—नेग=विवाह आदि शुभ अवसरोंपर कार्य वा कृत्यमें योग देनेवालोंको जो वस्तु या धन उनकी प्रसन्नताके लिये दिया जाता है।=बँधा हुआ दस्तूर वा हक; देने-पानेका हक वा दस्तूर। **चैल** (सं०)=पहननेके योग्य बना हुआ कपड़ा, वस्त्र।

अर्थ—अब पुत्रों और सब सम्पत्तिको (गुरुजीके) आगे रखकर हृदयमें अत्यन्त अनुरागसे भरे हुए (राजाने) विनती की॥ १॥ मुनिराजने अपना नेग माँग लिया और बहुत प्रकारसे आशीर्वाद दिया॥ २॥ श्रीसीताजीसहित श्रीरामजीको हृदयमें धारण करके गुरु हर्षपूर्वक घरको गये॥ ३॥ राजाने सब ब्राह्मणियोंको बुलाया और सबको सुन्दर वस्त्र और सुन्दर भूषण पहनाये॥ ४॥

टिप्पणी—१ ***'बिनय कीन्हि'''' '*** इति। (क) ऊपर विनय करना एक बार कह चुके हैं—***'कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी।'*** अब फिर विनय कैसी? प्रथम जो विनय की थी वह पूजाका अङ्ग है, यह विनय पूजाके पीछेकी स्तुति है। पूजाके अन्तमें विनय करनी चाहिये, वह की थी और अब जो विनय है वह सुत-सम्पदा लेने-(स्वीकार करने-) के लिये है, इसीलिये सुत-सम्पदाको गुरुजीके सामने रखकर विनय करना कहते हैं। (ख) ***'अति अनुरागे'*** का भाव कि सुत-सम्पदामें अनुराग है और गुरुमें 'अति अनुराग' है, इसीसे सुत-सम्पदा सब उनको अर्पण कर रहे हैं। (ग) ***'सुत संपदा राखि सब आगे'*** इति। भाव कि 'नाथ! यह सब आपके हैं, यथा—***'नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥'*** 'आगे रखने' का भाव कि कोई यह न समझे कि कहते भर हैं, करेंगे नहीं, इसीसे सबको पहले आगे रखकर तब विनती करते हैं कि इसे ग्रहण कीजिये। (घ) राजाके साथ रानियाँ, पुत्र और पुत्रवधू सभी हैं, सबने साथ-साथ सेवा की; परंतु इनमेंसे केवल पुत्रों और सम्पदाको आगे रखा, इसमें राजाकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। वे वसिष्ठजीसे यह नहीं कहते कि हम सब रानियाँ और सब बहुएँ आपको देते हैं, आप इन्हें ग्रहण करें; क्योंकि ऐसा कहना अनुचित है; सुत-सम्पदाका देना उचित है; अतः उसीको कहा।

टिप्पणी—२ ***'नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा''''।'*** इति। (क) ***'नेगु'*** माँग लिया। अर्थात् जो 'पद' है वह माँगकर ले लिया, जो 'पद' नहीं है वह देनेपर भी न लिया। (पुराणोंमें दानके लिये पदत्राण, छाते, कपड़े, कमण्डलु, आसन, बरतन, मुद्रिका और भोजनका समूह जो दिया जाना कहा गया है उसे 'पद' कहते हैं। सम्भवतः पण्डितजीका कुछ ऐसा ही अभिप्राय है 'नेग' से तात्पर्य है कि जो विवाहके इस अवसर-पर पुरोहितको मिलनेका दस्तूर है, जो उनका हक है वही लिया; इससे उनकी कर्तव्यपरायणता और निःस्पृहता प्रकट होती है।) (ख) ***'मुनिनायक'*** इति। जो सम्पदा कुबेरके पास भी नहीं है, जिसे देखकर इन्द्र भी ललचाते हैं, यथा—***'अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥'*** (२। ३२४) ऐसी सम्पदा राजाने वसिष्ठजीको अर्पण की, तब भी वसिष्ठजीने न लिया। क्योंकि ***'मुनिनायक'*** हैं, ऐसी सम्पदा तो इनके कृपा-कटाक्षमात्रसे प्राप्त हो जाती है (इनके लिये यह कौन बड़ी नामत है। इससे उनका वैराग्य भी दिखाया कि ऐसे ऐश्वर्यसे भी मोहित न हुए। (ग) ***'आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा'*** इति। बहुत प्रकारका आशीर्वाद यह कि बहुओं और रानियोंको सावित्री होनेका आशीर्वाद दिया, पुत्रोंको चिरंजीवी होने और राजाको पुत्रवान्, सम्पदावान् होनेका आशीर्वाद दिया, क्योंकि राजाने सुत-सम्पदा मुनिके आगे रखी थी (राजाओंको प्रायः विजयी, वैभववान् होने और स्त्री-पुत्रादिकी चाह होती है)।

---

* चीर—छ०, को० रा०। चैल—१६६१, १७०४, १७२१, १७६२।

टिप्पणी—३ '*उर धरि रामहि सीय समेता*'''।' इति। (क) श्रीसीताजीसहित श्रीरामजी आगे विद्यमान हैं, इसीसे श्रीसीतासहित श्रीरामजीको हृदयमें धारण किया। (दूलहरूप बड़ा सुन्दर है। अभी श्रीरामजी दूलहरूपमें ही हैं, कोहबरसे आये हैं, अभी कंकन छोड़े नहीं गये हैं। 'श्रीसीताजी' अद्वैतवादियोंवाली 'माया' नहीं हैं। 'मायाको परम विज्ञानी मुनीश्वर हृदयमें न धारण करते।) (ख) राजाने सुत और सम्पदा अर्पण की, मुनीश्वरने उसे नहीं लिया। श्रीसीतारामजीको हृदयमें धारण करके चले। इस प्रकार (केवल भावसे) उन्होंने सुत-सम्पदाको लिया। (सम्पदा सब श्रीसीताजीका कटाक्षमात्र है, यथा—'*जाकी कृपाकटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ।*') (ग) '*हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता*' इति। मुनीश्वर राजाकी सेवासे तृप्त हुए हैं, इसीसे हर्षपूर्वक गये। पुनः भाव कि राजा सुत-सम्पदा देते थे, उससे उन्हें हर्ष न हुआ। हर्ष हुआ तो '*रामहिं सीय समेता*' सीतासहित श्रीरामजीको हृदयमें धारण करनेसे। (इससे जनाया कि श्रीसीतारामजी ही उनको अत्यन्त प्रिय हैं, शरीरसे अलग हो रहे हैं, अतः हृदयमें बसाकर चले।)

टिप्पणी—४ '*बिप्र बधू सब भूप बोलाईं*'''।' इति। (क) राजाने प्रथम सब ब्राह्मणोंका सत्कार किया तब ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको बुलाकर उनका सम्मान किया। (ख) '*चैल चारु भूषन पहिराईं*' इति। राजाने सुहागिनियों और नेगियोंको रुचिके अनुसार दिया है जैसा आगे कहते हैं—'*रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं*', '*रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं;* परंतु ब्राह्मणियोंको देनेमें '*रुचि अनुरूप*' देना नहीं कहते। इस भेदसे यह सूचित करते हैं कि उनको रुचिसे बहुत अधिक दिया है। '*चारु*' शब्द देकर जनाया कि ऐसे सुन्दर, दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये कि जितनी रुचि न थी। वे परम संतुष्ट हो गयीं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको इतना दिया था कि वे सब मनसे संतुष्ट हो गये थे, यथा—'*आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस सकल मन तोषे॥*' (३५२।४)

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं॥ ५॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं॥ ६॥
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति* भली भाँति सनमाने॥ ७॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरसि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥ ८॥
दो०—चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परस्पर रामजसु प्रेम न हृदय समाइ॥ ३५३॥

अर्थ—फिर सुहागिनी स्त्रियोंको बुलवा लिया। उनकी रुचिको (मनमें) समझ-विचारकर उनको पहरावनी दी॥ ५॥ (नाई, बारी आदि) सब नेगी (अपना-अपना) नेगचारा लेते हैं और राजशिरोमणि दशरथजी उनकी रुचिके अनुसार देते हैं॥ ६॥ प्रिय पाहुनोंमें जिनको राजाने पूज्य जाना उनका बहुत अच्छी प्रकार सम्मान किया॥ ७॥ देवता श्रीरघुवीर-(रामजी-) का विवाह देखकर फूल बरसाकर और उत्सवकी प्रशंसा करके॥ ८॥ निशान बजाकर और सुख पाकर अपने-अपने लोकोंको चले। वे आपसमें श्रीरामजीका यश कह रहे हैं, (उनके) हृदयमें प्रेम नहीं समाता॥ ३५३॥

टिप्पणी—१ (क) '*बहुरि बोलाइ सुआसिनि*''''''''' इति। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको पहरावन देकर तब अपने वंशकी सौभाग्यवती स्त्रियोंको बुलाया। (बहिनें, बेटियाँ, भतीजियाँ तथा इनकी कन्याएँ जितनी रघुवंशियोंकी थीं वे सब इनमें आ गयीं।) (ख) '*रुचि बिचारि*''''' इति। अर्थात् उनसे यह नहीं पूछते कि क्या लोगी, जो इच्छा हो बताओ वही दें, क्योंकि रुचि पूछनेसे वे लज्जित होंगी। (ये रघुवंशकी वे कन्याएँ तथा उनकी संतानें हैं जो दूसरी जगह ब्याही हैं। सब अच्छे कुलीन घरोंमें ब्याही हैं और सावित्री हैं। रुचि पूछने तथा

* तं सब—पं० रा०, व० श०।

रुचि कहने दोनोंहीमें संकोच होनेकी बात है) अतएव राजा स्वयं अपने मनसे विचारकर कि उनकी रुचि क्या-क्या हो सकती है, उनको वैसी ही पहरावन देते हैं। पुरुषोंसे रुचि पूछते हैं, यथा—'*कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥*' (१। ३३१। ६) स्त्रियोंसे रुचि नहीं पूछते (सावित्री सती स्त्रियाँ प्राय: वही लेना चाहेंगी जिसमें उनके पतिको सुख मिले। क्योंकि वे अपने पतिकी प्रसन्नता और सुखमें ही प्रसन्न और सुखी होती हैं। इसीसे रुचि कहनेमें संकोच होगा। अत: स्त्रियोंसे रुचि नहीं पूछते)।

टिप्पणी—२ (क) '*नेगी नेग जोग सब लेहीं*'''''''*।*' इति। (नाई, बारी, माली, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, कहार, पटवा, बरई, दरजी आदि सब विवाहादि मङ्गल-कार्योंमें नेग पानेके अधिकारी हैं, इसीसे इनको 'नेगी' कहते हैं। पं० रामकुमारजी '*नेग जोग*' का अर्थ 'नेगके योग्य' लिखते हैं। 'नेगयोग' एक शब्द है, इसीको 'नेगचार' भी कहते हैं। काम करनेवालों तथा सम्बन्धियोंको जो विवाहादि अवसरोंपर उनकी प्रसन्नताके लिये देनेकी रीति है उसीको 'नेगजोग', 'नेगचार' कहते हैं।) राजा पूछते हैं कि तुम अपने नेगके योग्य क्या वस्तु चाहते हो, जो नेगी कहते हैं वही राजा देते हैं, इसीसे 'भूपमणि' कहा। (ख) '*प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने*''''' इति। पाहुन तो सभी प्रिय हैं, उनमें भी जो ससुरालके हैं जैसे साले, सालोंके लड़के इत्यादि भी प्रिय पाहुन हैं। [राजाके तीन सौ साठ रानियाँ वाल्मीकिजीके मतानुसार, सात सौ गीतावलीके अनुसार हैं और मानसके अनुसार तीन पटरानियाँ मुख्य हैं और उनके अतिरिक्त और भी हैं, इन सबोंके भाई-भतीजे आये हैं, इसी तरह और भी रघुवंशियोंके साले आदि आये हैं। ये सब प्रिय पाहुने हैं। '*पूज्य जे जाने*' कहकर जनाया कि पाहुने अपूज्य भी होते हैं। उपर्युक्त सब पाहुन अपूज्य हैं अर्थात् राजा इनको पूज नहीं सकते। और रघुवंशियोंकी कन्याएँ जहाँ ब्याही हैं, अर्थात् जहाँ बहनें, पुत्रियाँ, फूफू आदि ब्याही हैं वे सब भी प्रिय पाहुन हैं और राजाद्वारा पूज्य हैं, ये सब 'मान्य' कहलाते हैं।] (ग) पहले सुवासिनोंका सम्मान करके अब उनके पति, देवर, पुत्र आदिका सम्मान करते हैं, ये पूज्य प्रिय पाहुन कन्याओंके ससुरालके हैं, एवं उनके पति आदि हैं। पहले सुवासिनियोंका सम्मान किया, तब उनके पति आदिका, क्योंकि पिताके घरमें कन्याकी प्रधानता है। [पंजाबीजी लिखते हैं कि पाहुन शब्दसे विदेशी और मान्ययोग्य सूचित किया। भाव यह कि जो कौसल्यादिके भाई-बन्धु आदिक हैं जो कुछ ले नहीं सकते, उनका बहुत भाँतिसे सम्मान किया।]

टिप्पणी—३ '*देव देखि रघुबीर बिबाहू*''''' इति। '*रघुबीर बिबाहू*' का भाव कि (यह शुल्कस्वयंवर विवाह था। इसमें धनुष तोड़नेपर विवाह होनेका संकल्प था। यह काम वीरताका था) श्रीरामजीने वीरतासे धनुष तोड़कर श्रीसीताजीको ब्याहा, अत: 'रघुवीर-विवाह' कहा। '*देव देखि*''''' 'से सूचित किया कि देवताओंने धनुर्यज्ञसे लेकर विवाहतक देखा है, क्योंकि धनुषको तोड़ना भी विवाह ही है, यथा—'*टूटत ही धनु भयेउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू।*' (२८६।८) देवताओंने धनुषका तोड़ना और भाँवरीका पड़ना दोनों तरहका विवाह देखा। '*प्रसंसि उछाहू*' कहनेका भाव कि इस ब्याहमें ऐसा भारी उत्सव हुआ कि देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

टिप्पणी—४ '*चले निसान बजाइ*''''' इति। (क) फूल बरसाना, निशान बजाना देवताओंकी सेवा है। जब श्रीरामजानकीजी रंगभूमिमें आये तब उन्होंने फूल बरसाये और नगाड़े बजाये, यथा—'*हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई।*' (२४८। ५)—यह 'उछाह' (उत्सव) का आदि है। इसी प्रकार धनुष टूटनेपर, परशुरामजीकी पराजयपर, श्रीअयोध्याजीसे बारातके प्रस्थानपर, विवाह होनेपर, सब अवसरोंपर उन्होंने फूलोंकी वर्षा की और नगाड़े बजाये।—यह उत्सवका मध्य है। बारात श्रीअयोध्याजीमें लौटकर आयी, अवधवासियोंने उत्सव मनाया और राजाने सबका सम्मान किया, यह देखकर फूल बरसाये और नगाड़े बजाये। यह उत्सवका अन्त है। इस प्रकार देवताओंने उत्सवके आदिसे अन्ततक सेवा की। (ख) '*सुख पाइ*''—मानस-प्रकरणमें श्रीरामजीके विवाहोत्सवको कीर्ति-नदीका सुखद शुभ उमग कहा है, यथा—'*सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू।*' (४१। ५) यह सबको सुखदाता है। अत: इसे देखकर देवताओंका भी सुख पाना कहा। (ग) '*कहत रामजसु प्रेम*''''' इति। श्रीरामयश कहते हैं इसीसे प्रेम हृदयमें नहीं समाता।

मानसप्रकरणमें कहा था कि जो इसे कहते-सुनते हर्षित होते हैं वे ही सुकृती लोग हैं जो इस नदीकी शुभ उमगमें मुदित मनसे स्नान करते हैं, यथा—*'कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं।'* (४१। ६) (यहाँ उसको चरितार्थ करते हैं) श्रीराम-विवाहोत्सवरूपी कीर्तिनदीकी बाढ़में देवता स्नान कर रहे हैं। देवताओंकी तन-मन-वचनसे भक्ति दिखायी। 'तन' से *'चले निसान बजाइ'* (नगाड़ा बजाना शरीरका कर्म है), वचनसे *'कहत परसपर रामजसु'* और मनमें प्रेम नहीं समाता (यह मनकी भक्ति है)।

सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू॥ १॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बहूटिन्ह* कुँअर निहारे॥ २॥
लिये गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भएउ सुखु जेता॥ ३॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हिय हरषि दुलारीं॥ ४॥
देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब के उर अनंदु कियो बासू॥ ५॥

शब्दार्थ—**समदि**=भलीभाँति आदर-सत्कार इत्यादिसे वशमें अर्थात् सब प्रकार सबको प्रसन्न करके। =सम्मान करके।

अर्थ—सबको सब प्रकार भलीभाँति आदर-सत्कारसे प्रसन्न करनेपर राजाका हृदय पूर्ण उत्साहसे भर गया॥ १॥ जहाँ रनवास था वे वहाँ पधारे और बहुओंसहित कुमारोंको देखा॥ २॥ और आनन्दसहित (चारों पुत्रोंको) गोदमें ले लिया। उन्हें जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है?॥ ३॥ (फिर) प्रेमसहित बहुओंको गोदमें बैठाया और बारंबार हृदयमें हर्षित होकर उनका दुलार (लाड़-प्यार) किया॥ ४॥ यह समारोह देखकर रनवास आनन्दित हुआ। सबके हृदयमें आनन्दने निवास किया॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) सबका सम्मान कहकर तब प्रसंग छोड़ा था, यथा—*'प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने।'* (३५३। ८) बीचमें देवताओंका स्वर्गगमन स्वर्गयात्रा कहने लगे थे, अब पुनः जहाँ प्रसंग छोड़ा था वहींसे उठाते हैं, सबके सम्मानकी बात कहते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि *'समदि'* का अर्थ 'सम्मान करके' है। उत्सवका आनन्द हृदयमें भरा है, वही उमगकर मुखसे निकलेगा; आगे कहते हैं—*'कहेउ भूप जिमि भयेउ बिबाहू। सुनि सुनि हरष होइ सब काहू॥'* (ख)—*'जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे'* इति। इससे सूचित हुआ कि राजभवनसे रनिवास पृथक् है। पहले राजद्वारपर जितना कृत्य था वह करके राजा भवनमें आये थे। भवनमें जितना काम था वह करके अब रनवासमें आये। *'सहित बहूटिन्ह कुँअर निहारे'* इस कथनसे जनाया कि जब राजा गुरुपूजा कर चुके और गुरु सबको आशीर्वाद देकर घर चले गये, तब रानियाँ बहुओंसमेत राजकुमारोंको लेकर रनवासमें चली आयीं। गुरुजीकी बिदाई राजभवनमें ही हुई थी, उस समय सब वहीं थे। (मण्डप और कोहबर रनवाससे पृथक् राजभवनमें था।) यहाँ शंका होती है कि बहुओंसहित चारों भाई तो राजभवनमें भी थे, तब वहाँ राजाने क्यों न देखा। इसका समाधान यह है कि उस समय गुरु-ब्राह्मणकी सेवामें प्रेम था। गुरु-ब्राह्मणके प्रेमके आगे अपने लड़कोंमें प्रेम नहीं किया (करते तो गुरु-महिसुर-भक्तिमें बट्टा लगता। दूसरे, उस समय राजाको बहुत काम और भी थे। विप्रवधुओं, सुआसिनों, नेगियों, प्रियपूज्य पाहुनोंको भी देना-दिलाना सम्मान करना था। उनका सम्मान करना प्रथम कर्तव्य था। उसे करके अब सब कामोंसे छुट्टी पाकर तब यह सुख लेने चले। अब निश्चिन्ततासे बैठकर आनन्द लेंगे)। (ग) *'बहूटिन्ह'* से बहुओंकी सुन्दरता कही और *'कुअँर'* से चारों भाइयोंकी।

टिप्पणी—२ (क)—*'लिये गोद करि'''* ' इति। बहुओंको गोदमें बिठाना आगे कहते हैं, यहाँ केवल पुत्रोंको गोदमें बिठाना कहते हैं। *'को कहि सकै'* अर्थात् अत्यन्त आनन्द है, कोई उसे कह नहीं सकता। (ख) *'बधू सप्रेम गोद बैठारीं।'''* ' इति। पुत्रोंको गोदमें बैठानेसे हर्ष हुआ—*'मोद समेता'* (मोद हर्षका वाचक

* बधूटिन्ह—प्रायः सबोंमें। बहूटिन्ह—१६६१।

है); वैसे ही बहुओंको गोदमें बैठानेसे हर्ष हुआ। (दोनोंमें समान भाव दिखाया।) *'बार बार हिय हरषि'* से जनाया कि श्रीसीताजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीउर्मिलाजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी चार बहुएँ हैं, चारोंको देख-देख हर्षित होते हैं, इसीसे 'बार-बार' कहा। (ग) *'देखि समाजु मुदित रनिवासू'*—राजाका आनन्द कहकर अब रानियोंका आनन्द कहते हैं और *'सबके उर अनंदु कियो बासू'* से सब सखियों, दासियों आदिका आनन्द कहा। *'समाजु'* का अर्थ प्रथम कह चुके—*'सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे।'* ('समाजु' से बहुओं और राजकुमारोंका गोदमें बैठाना, सारे रनवासका आनन्द लेना, सखियों आदिका आनन्द लेना यह सब समारोह दरसाया है।)

कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥ ६॥
जनकराज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥ ७॥
बहु बिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥ ८॥

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति।
भोजन कीन्हि अनेक बिधि घरी पंच* गइ राति॥ ३५४॥

अर्थ—राजाने जिस प्रकार विवाह हुआ था (वह सब) कहा। सुन-सुनकर सब किसीको हर्ष हो रहा है॥ ६॥ राजा-(दशरथजी-) ने भाटकी तरह जनकमहाराजके गुण, शील, बड़ाई और सुन्दर प्रीति, रीति और सम्पत्तिका वर्णन किया। श्रीजनकजीकी करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं॥ ७-८॥ पुत्रोंसहित स्नान करके राजाने ब्राह्मणों, गुरु और जाति-बिरादरीके लोगोंको बुलाकर अनेक प्रकारके भोजन किये। (यह सब कृत्य करते-करते) पाँच घड़ी रात्रि बीत गयी॥ ३५४॥

टिप्पणी—१ (क) *'कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू……'* इति। राजा बहुओंका दुलार करते हैं और उनके विवाहका वर्णन करते हैं। चारों भाइयोंका विवाह अलग-अलग हुआ, सबके विवाहकी कथा अलग-अलग कही, इसीसे *'सुनि सुनि होत हरष'* कहा। *'हरष सब काहू'* कहकर मानस-प्रकरणके *'सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुख उमग सुखद सब काहू॥'* (४१। ५) को चरितार्थ किया। नदीकी उमगमें स्नान भी कहते हैं, हर्षित होना स्नान है, यथा—*'कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥'* (ख) *'जनकराज गुन सील……'* इति। (ये जो शील आदि सब गुण श्रीजनकजीके कहे वह वे हैं जो दशरथजीने अपने साथमें उन्हें बर्तते हुए देखे हैं।) शील, यथा—*'धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥'* (३२८। ४) 'बड़ाई' यथा—*'संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भये। येहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लये॥'* (३२६ छंद २)—यह नम्रताकी बड़ाई है। 'प्रीति' यथा—*'मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती॥'* (३२०। १) *'बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं॥'* (३४०। ४) 'रीति', यथा—*'बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥'* (३२१। १)—इस रीतिसे पूजन किया। *'संपदा'*, यथा—*'कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥……लोकपाल अवलोकि सिहाने।'* (३२६। २—६) *'निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥'* (३०७। १) [*'जो अवलोकत लोकपति लोक-संपदा थोरि।'* (३३३)—(प्र० सं०) परंतु यह दहेज राजाको बिना जनाये अयोध्याजी सीधे भेज दिया गया था। इससे यह उदाहरण विशेष संगत नहीं है।]

टिप्पणी—२—*'बहु बिधि भूप भाट जिमि……'* इति। (क) *'बहु बिधि'* कहनेका भाव कि प्रथम श्रीजनकजीके सब (शील, प्रीति, रीति आदि) अपने सम्बन्धमें दिखाये, फिर पृथक्-पृथक् और सबोंके सम्बन्धमें कहे। अर्थात् कहा कि हमको सम्पत्ति दी और सब ब्राह्मणों और बारातियोंको दी, हमारे साथ जैसे शील, प्रेम आदि बरते वैसे ही सबके साथ बरते। अलग-अलग सब कहा, इसीसे *'बहु बिधि'* का

* पाँच—वंदनपाठक, पं० रा०, व० श०।

वर्णन हुआ। (ख) *'भाट जिमि बरनी'* इति। भाव कि जैसे भाट प्रसन्न होनेपर बहुत बड़ाई कहते हैं, वैसे ही राजा दशरथजी जनकजीके गुणोंसे बहुत प्रसन्न हुए हैं, इसीसे अपने मुखसे बार-बार उनके गुणोंको कहते हैं। [पुनः भाव कि जैसे भाट कहनेमें थकते नहीं वैसे ही ये बराबर कहते जाते हैं, थकते नहीं किंतु कहनेमें उत्साह बढ़ता ही जाता है। (रा० प्र०) जिन राजा दशरथके गुणगण ब्रह्मादि देवता वर्णन करते हैं, यथा—*'बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुनगाथा॥'* (२। १७३) वे ही श्रीजनकजीके गुणोंका वर्णन करते हैं; यह श्रीजनकमहाराजके गुणोंकी बड़ाई है। (ग) *'रानी सब प्रमुदित सुनि करनी'* इति। *'प्रमुदित'* का भाव कि रानियाँ पहले *'मुदित'* थीं, यथा—*'देखि समाजु मुदित रनिवासू'*, अब श्रीजनकजीकी करनी सुनकर *'प्रमुदित'* हुईं। [रानियोंको इसके सुननेकी बड़ी लालसा थी, राजा बिना पूछे ही कहकर सुनाने लगे, अतः बहुत हर्ष हुआ। पंजाबीजीका मत है कि रानियोंके प्रमुदित होनेका कारण यह है कि वे अपने बड़े भाग्य समझती हैं कि ऐसे समधी मिले, उनकी कन्याएँ भी अवश्य परम श्रेष्ठ और घरकी मर्यादा होंगी, ये भी वैसे ही शील, प्रेम आदि गुणोंसे युक्त होंगी। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३—*'सुतन्ह समेत नहाइ'''* इति। (क) इससे जनाया कि स्नान करके भोजन करना चाहिये। गुरु-ब्राह्मण ज्ञातिवर्ग अपने-अपने घरसे स्नान करके आये, इससे उनका स्नान न कहा। (अथवा, जबसे बारात आयी है, अर्थात् सबेरेहीसे बराबर काममें लगे रहे, स्नानका अवकाश न मिला, इससे इस समय स्नान किया। इसी प्रकार भूसुरवृन्द बारातके साथ आये थे, मार्गके चले हुए थे, इसीसे उन्होंने भी स्नान किया तब पूजन किया गया, यथा—*'पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेंवाए॥'*) (ख) *'बोलि बिप्र गुर ज्ञाति'* इति। यह बारातकी लौटतीका भोजन है। बारातके लौटनेपर जाति-बिरादरीके लोगोंको भोजन करानेकी रीति है। इसीसे ज्ञातिके लोगोंको बुलवाना कहा, नहीं तो राजा वैसे ही नित्य ब्राह्मण, गुरु, ज्ञातिसहित भोजन करते ही हैं। (ग) *'भोजन कीन्हि अनेक बिधि'* अर्थात् सब प्रकारके सब रसोंके भोजन किये। (घ) *'घरी पंच गइ राति'* कहनेका प्रयोजन यह है कि आगे श्रीरामजीका शयन वर्णन करना चाहते हैं, इसीसे पहले शयनका समय कह दिया। जैसे राजकुमारोंका जनकनगरदर्शन कहनेके पूर्व नगर-दर्शन करनेका समय कहा था, यथा—*'रिषय संग रघुबंसमनि करि भोजनु बिश्रामु। बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥'* (२१७) पहरभर दिन रहे नगर देखने गये। वैसे ही यहाँ शयनका समय कहा।

नोट—१ पंजाबीजी कहते हैं कि पाँच घड़ी रातका भाव यह है कि 'भोजन करना प्रथम पहरहीमें प्रमाण है। भाव यह कि राजा ऐसे व्यवहारमें भी समयसे नहीं चूकते हैं।' रामायणपरिचर्याकार लिखते हैं कि *'सवा पहरमें निशिभोजन है, आगे असुर अहार।'* प० प० प्र० जी लिखते हैं कि सूर्यास्तके अनन्तरकी तीन घड़ियाँ संध्याकाल होनेसे उसमें भोजनादि दैहिक कार्य करना निषिद्ध है। धर्मसिंधु आदि धर्मग्रन्थोंमें बताया है कि सूर्यास्तके पश्चात् डेढ़ पहरके भीतर ही भोजन करके सो जाना चाहिये। यहाँ केवल पाँच घड़ी होते ही भोजनविधि समाप्त हो गयी, यह कहकर जनाया कि दिनभर इतना भारी काम करनेपर भी शास्त्रीय भोजनकालका उल्लङ्घन नहीं हुआ, रात्रिके भोजनके लिये जो उचित समय है उसीमें भोजन हुआ। पुरुषोंके बाद स्त्रियों और फिर सेवकों, रसोइयों आदिका भोजन भी निषिद्ध कालमें न हो इसके लिये भी पर्याप्त समय बच रहे, इसलिये इतनी शीघ्रता आवश्यक थी, सो भी बरती गयी।

मंगल गान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥ १॥
अचै पान सब काहू पाए। स्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥ २॥
रामहि देखि रजायेसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥ ३॥

अर्थ—सुन्दर श्रेष्ठ स्त्रियाँ मङ्गल गान कर रही हैं। रात्रि सुखकी मूल (उपजानेवाली) और मनोहारिणी हो गयी॥ १॥ सबोंने आचमन (हाथ-मुँह धो कुल्ली) करके पान पाये। फूलोंकी माला और (चन्दन, अतर आदि) सुगन्धित द्रव्योंसे भूषित होकर शोभासे छा गये॥ २॥ श्रीरामजीको देखकर और राजाकी आज्ञा पाकर सब लोग प्रणाम कर-करके अपने-अपने घरको चले॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'मंगल गान'* इति। यह मङ्गल-गान भोजन-समयका है, क्योंकि आगे कहते हैं कि *'अचै पान सब काहू पाए।'* भोजन और आचमनके बीचमें मङ्गल गान है। *'मंगल गान'* कहनेका भाव कि यह गाली-गान नहीं है। जनकपुरमें भोजनके समय जो गान हुआ वह गाली-गान था, क्योंकि ससुरालमें गाली गायी जाती है। यहाँ घरके भोजनमें गाली नहीं गायी जाती, इसीसे *'मंगल गान'* कहा। (ख) *'बर भामिनि'* कहकर जनाया कि ये गान स्वर, अवस्था और स्वरूप सभीमें श्रेष्ठ हैं, यथा—*'जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवसस सकल दुति दामिनि॥ बिधुबदनीं मृगसावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि॥ गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥'* (२९७।१—३) (ग) *'भै सुखमूल मनोहर जामिनि'* इति। रात्रिको सुखमूल और मनोहारिणी कहनेका भाव कि रात्रिमें दो अवगुण हैं—दोष और दुःख। यथा—*'मिटहिं दोष दुख भवरजनी के।'* (१। १। ७) *'सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥'* (१। २४। ५) यह रात्रि दोनों दोषोंसे रहित है। रात्रिमें दुःख है पर यह रात्रि सुखमूल है, रात्रि अशोभित होती है, यह मनोहारिणी है। इस रात्रिमें सुख पैदा हुआ, इसे *'सुखमूल'* कहा। अथवा आजकी यह रात्रि सुखकी प्रथम रात्रि है, इससे सुखमूल कहा। (आगे माताओंने कहा ही है—*'आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा॥ जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहि लेखें॥'* (३५७।८) [अन्धकार दोष है, उसके सम्बन्धसे *'मनोहर'* कहा। *'मनोहर'* विशेषणसे पूर्णिमाकी रात्रि भी सूचित होती है, क्योंकि इसमें अन्धकार बिलकुल नहीं होता। (प्र० सं०) आजकी रात मनोहर और सुखकी मूल हुई—यह बहुओंके आनेसे। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—२ (क) *'अचै पान सब काहू पाए।'''* इति। भोजनके अन्तमें आचमन करनेपर पान (बीड़ी) अवश्य चाहिये, इसीसे सर्वत्र भोजनके पश्चात् पानका दिया जाना लिखा है। यथा—*'अचवाइ दीन्हें पान गवनें बास जहँ जाको रह्यो।'* (९९ छंद) *'देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।'* (३२९) तथा यहाँ *'अचै पान'''* लिखा। प्रथम पान दिये फिर फूल-माला पहनायी तब चन्दन, अतर सुगन्धित द्रव्य लगाये—यह क्रम सूचित किया। सुगन्ध चन्दन है, यथा—*'स्त्रक चंदन बनितादिक भोगा।'* (२। २१५)

(ख) *'रामहिं देखि'''* इति। श्रीरामजीको देखकर अर्थात् हृदयमें रखकर चले। यथा—*'आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गये सब निज निज धामहि॥'* (३५१। ५) *'उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥'* (३५३। ३) इत्यादि। *'रजायेसु पाई'*—अर्थात् राजाकी आज्ञा पाकर। बड़ेकी आज्ञाको *'रजायसु'* कहते हैं। (*'रजायसु'* शब्द 'राजा और 'आयसु' से मिलकर बना है। अर्थात् राजाकी आज्ञा। बड़ोंकी आज्ञाके लिये भी इसका प्रयोग होता है।) बड़ेके आगे छोटेकी आज्ञा माँगकर चलें यह शोभा नहीं देता, क्योंकि यह नीतिके विरुद्ध है। (ग) *'निज निज भवन चले'* इति। बारातसे लौटे हुए थके-माँदे हैं, फिर अब भोजन किया है और पाँच घड़ी रात्रि बीत गयी है, अब विश्रामका समय है। अतः *'निज निज भवन'* को गये। (घ)—*'सिर नाई'* इति। राजाने विप्र, गुरु और जाति-बिरादरीके लोगोंको भोजन कराया, विप्र और गुरु राजाको सिर कैसे नवायेंगे? इसका समाधान यह है कि यहाँ सिर नवाना परस्पर सब लोगोंका है। सब लोग आपसमें एक-दूसरेको प्रणाम करके गये। यह प्रणाम राजाको नहीं है। बारातियोंके सम्बन्धमें भी श्रीरामजीको देखकर राजाकी आज्ञा पाकर जाना कहा है, वहाँ भी राजाको प्रणाम करना नहीं कहा गया है, यथा—*'भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥ आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गये सब निज निज धामहि॥'* (१। ३५१) वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये। अथवा, अर्थ प्रसङ्गके अनुकूल लगा लेना चाहिये। वह इस तरह कि जातिवर्गने राजाको प्रणाम किया, गुरु और ब्राह्मणोंने नहीं। ब्राह्मणोंने परस्पर एक-दूसरेको प्रणाम किया, (*'सिर नवाया'* सबने परंतु किसको सिर नवाया, यह कविने नहीं लिखा। प्रसङ्गके अनुकूल लगा लेना चाहिये। जैसे *'हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥'* (२३७। १) में यदि अर्थ करें कि 'दोनों भाई हृदयमें सीताजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए गये', तो यह अनर्थ होगा, अर्थ नहीं, क्योंकि प्रसङ्गके विरुद्ध है। वहाँ श्रीरामजीका ही हृदयमें सराहना अर्थ किया

जायगा, पर गुरु-समीप दोनों भाइयोंका जाना कहा जायगा। वैसे ही यहाँ श्रीरामजीको हृदयमें रखकर राजाकी आज्ञा पाकर घर जाना तो सबका कहा गया। राजाको प्रणाम केवल ज्ञातिवर्गका कहा गया।) ब्राह्मणोंके परस्पर प्रणामके वर्णनका प्रयोजन यह है कि जैसा वहाँ व्यवहार हुआ वैसा कविने लिखा।

प्रेमु प्रमोदु बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥ ४॥
कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥ ५॥
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमिनागु सिर धरै कि धरनी॥ ६॥

शब्दार्थ—भूमिनागु=केंचुआ।

अर्थ—(उस) प्रेम, परम आनन्द, विनोद, बड़ाई, समय, समाज और मनोहरताको॥ ४॥ सैकड़ों शारदा, शेष, वेद, ब्रह्मा, महेश और गणेशजी (भी) नहीं कह सकते॥ ५॥ (तब भला) मैं किस प्रकारसे बखानकर कहूँ? क्या केंचुआ अथवा पृथ्वीका सर्प (भी कभी) पृथ्वीको सिरपर धारण कर सकता है? (कदापि नहीं)॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) प्रेम-प्रमोदका वर्णन, यथा—'*करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेम प्रमोदु कहै को पारा॥*' (३४९। १) विनोद अर्थात् हास्यका वर्णन, यथा—'*लोकरीति जननी करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं। मोदु बिनोदु बिलोकि बर रामु मनहिं मुसुकाहिं॥*' (३५०) बड़ाईका वर्णन, यथा—'*भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि। लगे सराहन सहस-मुख जानि जनम निज बादि॥*' (३१३) समय-वर्णन, यथा—'*समय जानि गुर आयेसु दीन्हा। पुर प्रबेस रघुकुलमनि कीन्हा॥*' (३४७। ७) '*मंगल गान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥*' (३५५। १) इत्यादि। समाज-वर्णन, यथा—'*देखि समाजु मुदित रनिवासू। सबके उर अनंदु कियो बासू।*' (३५४। ५) इत्यादि। '*मनोहरताई*' अर्थात् शोभाका वर्णन, यथा—'*अचै पान सब काहू पाए। स्त्रक सुगंध भूषित छबि छाए॥*' (३५५। २) इत्यादि। (ख)—यहाँ प्रेम-प्रमोदादि सात बातें कहीं। भाव यह कि पृथ्वी सप्तद्वीपवती है, इससे सात ही कहीं। ये सब पृथ्वीरूप हैं। इन बातोंका कहना पृथ्वीका धारण करना है।

टिप्पणी—२ '*कहि न सकहिं सत सारद सेसू*''' इति। '*सत*' का अन्वय सबके साथ है। पृथ्वी धारण करनेवाले छः हैं—प्रभुकी सत्ता, कूर्म, कोल, शेष, दिग्गज और पर्वत (पर्वत भी भूको धारण करते हैं, इसीसे पर्वतका नाम भूधर है), इसीसे कहनेवाले भी छः गिनाये, पृथ्वीको धारण करनेवालोंमें मुख्य शेष हैं पर यहाँ साक्षात् पृथ्वी नहीं है और न साक्षात् धारण करना है, यहाँ तो पृथ्वीका रूपक-मात्र है, यहाँ कथन करना ही धारण करना है, इसीसे यहाँ सरस्वतीको प्रथम कहा तब शेषको, क्योंकि कहनेमें सरस्वतीजी ही मुख्य हैं। (यथा—'*होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥*' (३४२। २) '*सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥*' (१। १२) '*बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस।*' (७। १२) इत्यादि कथनके सम्बन्धमें प्रायः शारदाकी ही प्रथम गणना है।)

टिप्पणी—३ '*सो मैं कहौं कवन बिधि*' इति। भाव कि वे सब देवता हैं, मैं मनुष्य हूँ, वे सौ-सौ हैं, मैं अकेला हूँ, उनके अनेक मुख हैं (वे बहुमुख हैं) मेरे एक ही मुख है। (इतना सामर्थ्य होनेपर भी जब वे नहीं कह सकते तब सब प्रकारसे बलहीन मैं कैसे कह सकता हूँ?) इस कथनसे अपने कहनेमें बड़ी अगमता दिखायी। इसी तरह अगमतासूचक दृष्टान्त देते हैं। (ग) '*भूमिनागु सिर*''' '*भूमिनागु*' अर्थात् जो सर्प पृथ्वीके ऊपर रहते हैं, वे धरणीको सिरपर नहीं धारण कर सकते। '*धरनी*' का भाव कि समुद्र तथा पर्वत आदि सभीका भार धारण किये हुए है, उसे भूमिनाग क्योंकर धारण कर सकता है? ('भूमिनाग' का अर्थ कोशमें केंचुआ मिलता है। यही अर्थ हमने पूर्व संस्करणमें भी दिया था और नितान्त असमर्थता सूचित करनेके लिये यह अर्थ उत्तम भी है। हाँ, उनके सिर वैसे नहीं हैं जैसे सर्पोंके। सिरके विचारसे 'पृथ्वीका सर्प' अर्थ भी अच्छा घट जाता है। वे सब दिव्य लोकोंके रहनेवाले हैं, मैं पृथ्वीका रहनेवाला हूँ। मुं० रोशनलालने भी 'केंचुआ' अर्थ लिखा है।)

नोट—प्रेम, प्रमोद आदि सात बातें कहीं। क्योंकि प्रधान समुद्र भी सात ही कहे गये हैं। अगाधता, अपारता आदि दरसानेमें समुद्रका उदाहरण दिया जाता है। जैसे सात बातें कहीं वैसे ही इधर सात वक्ता भी गिनाये गये—शारदा, शेष, वेद, ब्रह्मा, महेश, गणेश और 'मैं' (तुलसीदास)। (प्र० सं०) शत शारदा, शेष आदि पृथ्वीके धारण करनेवाले उपर्युक्त छः समर्थ लोग हैं और मैं (तुलसीदास) केंचुओंके समान हूँ।

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाई रानी॥७॥
बधू लरिकनी पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥८॥
दो०—लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृह रामचरन चितु लाइ॥३५५॥

अर्थ—राजाने सब तरह सबका आदर-सत्कारकर कोमल वचन कह रानीको बुलाया॥७॥ बहुएँ—लड़कियाँ पराये घर आयी हैं, इन्हें नेत्र और पलकके सदृश रखना॥८॥ लड़के थके हुए नींदके वश हैं, इन्हें जाकर सुलाओ—ऐसा कहकर राजा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें चित्तको लगाकर विश्रामगृह (आरामगाह, शयनागार) में गये॥३५५॥

टिप्पणी—१ (क) *'नृप सब भाँति सबहि सनमानी'* इति। *'अचै पान सब काहू पाए। स्रग-सुगंध भूषित छबि छाए॥'* (चौ० २) पर प्रसंग छोड़ा था, अब वहींसे प्रसङ्ग फिर उठाते हैं। भोजन कराया, पानकी बीड़ी सबको दी, फूल-माला पहनायी, चन्दन-अतर लगाया, यह सब सम्मान राजाने किया। *'बोलाई रानी'* इस कथनसे पाया गया कि जब राजा इधर सबके सम्मानमें लगे तब रानियाँ सब भीतर चली गयी थीं, इसीसे उनको बुलाना पड़ा। (ख) [पंजाबीजी *'कहि मृदु बचन'* का भाव यह लिखते हैं कि उत्तम पुरुषोंकी रीति ही है 'मृदु बोलना' अथवा राजा इस समय बड़े ही आनन्दको प्राप्त हैं, अतः मृदु बोले, जिसमें वे सब अधिक प्रसन्न हों अथवा ये सब ऐसे रत्न (रूप) पुत्रोंकी जननी हैं, अतः मृदु वचन कहे अथवा पुत्रोंको शिक्षा हो कि वे भी अपनी-अपनी स्त्रियोंसे मृदु बोलें, इस विचारसे कोमल बोले अथवा रानियोंको शिक्षा देनेके लिये कि वे सब दुलहिनोंसे इसी तरह मृदु बोला करें।]

टिप्पणी—२ *'बधू लरिकनी पर घर आईं।…'* इति। (क) यहाँ बहुओंके सकुचानेके कारण प्रथम ही कहते हैं कि एक तो वे बधू हैं, नववधू ससुरालमें पहले-पहल आती है तब अत्यन्त सकुचाती है, फिर वे अभी बहुत छोटी हैं, किसीको पहचानती नहीं हैं, बच्चे अनचीन्हे-से बहुत सकुचाते हैं, उसपर भी वे पराये घरमें आयी हैं, दूसरेके घरमें विशेष संकोच होता ही है, कुछ कह नहीं सकतीं। यह समझाकर तब कहते हैं कि *'राखेहु नयन पलक की नाईं।'* अर्थात् जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम इनकी रक्षा करना, (इनको कोई कष्ट न होने पावे।) (ख) *'राखेहु नयन पलक की नाईं'* यह वचन अयोध्याकाण्डमें चरितार्थ किया है, यथा—*'नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई॥'* (२। ५९) सोतेमें पलकें नेत्रोंको छिपा लेती हैं, वैसे ही सोते समय माताएँ (रानियाँ) बहुओंको गोदमें छिपा लेती हैं। ☞ यथा—*'सुंदर बधू सासु लै सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई॥'* (३५८। ४) इस प्रकार राजाने जो आज्ञा रानियोंको दी उसका उन्होंने पूर्णरूपेण पालन किया।

टिप्पणी—३ *'लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु…'* इति। (क) *'श्रमित'* हैं अर्थात् सवारीपर बैठे-बैठे बहुत समय बीता है, इससे थक गये हैं। *'उनीद बस'* अर्थात् मार्गमें बिलकुल निद्रा नहीं हुई अथवा ठीकसे सो न सके, इससे निद्रा लगी है। (*'सयन करावहु जाइ'* से जनाया कि शयनागार दूसरी जगह है, रनवासमें जहाँ सोनेका स्थान है वहाँ जाकर सुलाओ। *'जाइ'* से जनाया कि केवल रानियाँ ही यहाँ आयी थीं, बहुएँ और चारों भाई साथमें नहीं हैं, नहीं तो कहते कि इनको ले जाकर शयन कराओ।) पुनः *'करावहु जाइ'* से सूचित किया कि तुम स्वयं जाकर शयन कराओ, यह काम दास-दासियोंपर न छोड़ देना। (ख) *'अस कहि गे बिश्रामगृह'*

ऐसा रानियोंसे कहकर विश्रामघरमें गये। इस कथनका आशय यह है कि यदि ऐसा कहकर न जाते तो राजाको विश्रामघरमें भी विश्राम न मिलता। लड़कोंमें बराबर चित्त लगा रहता, चिन्ता लगी रहती कि हमने सबको विश्राम करानेके लिये कहा नहीं, न जाने अभी सोये हों या न सोये हों। (ग) *'रामचरन चितु लाइ'* इति। श्रीरामजीके चरणोंमें चित्त लगाना 'ऐश्वर्य-भाव' है और *'लरिका श्रमित उनीद बस'* यह कथन माधुर्यमें है। ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों इकट्ठे कैसे हुए? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि मनु-शरीरमें राजाने वरदान माँगा था कि ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों इकट्ठे रहें, यथा—*'सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥'* (१५१। ५) *'एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ।'* सुत-भावसे प्रीति होना माधुर्य है और चरणमें रति होना ऐश्वर्य है, यही माधुर्य-ऐश्वर्यका इकट्ठे होना है। [उस वरदानके अनुसार ही यहाँ प्रथम *'लरिका श्रमित'''जाइ'* यह सुतभावका प्रेम माधुर्यमें दिखाया और *'राम चरन चितु लाइ'* यह चरण-रति ऐश्वर्य भावमें है। कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि राजा दिनमें तो माधुर्यरसमें भीगे रहते हैं और सोते समय हृदयमें चरणोंका ध्यान धारण करते हैं। बाबा हरिहरप्रसादजी कहते हैं कि यह पद जनाता है कि यद्यपि राजा वात्सल्यरसमें डूबे हैं तथापि शान्तरस लिये हैं। स्वामी प्रज्ञानानन्दजीका मत है कि इसमें भी माधुर्य भक्ति भावना ही है। जो कोई ऐश्वर्यभावसे चिन्तन-ध्यान करेगा उसको कोई सज्जन मूढ़ नहीं कह सकता। हाँ, जो पुत्रका, धनका, स्त्रीका ध्यान करता है, वही सज्जनोंकी दृष्टिमें मूढ़ है। दशरथजीके हृदयमें श्रीरामजीके विषयमें ऐश्वर्यभाव तो क्षणभङ्गुररूपसे ही एक-दो बार पैदा हो गया है।]

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥ १॥
सुभग सुरभि पयफेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना॥ २॥
उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनि मंदिर माहीं॥ ३॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनै जान जेहि जोवा॥ ४॥

अर्थ—राजाके स्वभाविक ही सुन्दर वचन सुनकर रानियोंने मणिजटित स्वर्णके पलंग बिछाये॥ १॥ सुन्दर गऊके दूधके फेनके समान अनेक कोमल सुन्दर बढ़िया सफेद चादरें (तोशकें अर्थात् गुद्‌गुदे बिछौने और उनके ऊपर चादरें) बिछायीं॥ २॥ तकिये बहुत बढ़ियाँ हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। मणिके महलमें फूलोंकी मालाएँ (टँगी हुई हैं) और (अनेक प्रकारके) सुगन्धित द्रव्य हैं (अर्थात् सजाये हुए रखे हैं, भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही है)। रत्नोंके दीपक और अत्यन्त सुन्दर चँदोवे हैं। कहते नहीं बनता, जिसने देखा है वही जानता है (पर कह वह भी नहीं सकता)॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'भूप बचन सुनि सहज सुहाए'''''''* इति। (क) *'सहज सुहाए'* कहनेका भाव कि राजाके वचन स्वाभाविक ही मधुर हैं, उसपर भी मधुर वचनोंमें बातें भी सुन्दर कही गयीं कि *'बधू लरिकनी'''सयन करावहु जाइ।'* बहुओंसमेत चारों भाइयोंको आराम (विश्राम एवं सुख) देनेकी बात इन वचनोंमें कही गयी; अतः वचनोंको *'सहज सुहाए'* कहा। (ख) *'सहज सुहाए'* देहलीदीपकन्यायसे *'बचन'* और *'पलंग'* दोनोंका विशेषण है। *'सुहाए'* बहुवचन है, यथा—*'कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥'* (३। ३८), *'नाना तरु फल फूल सुहाए', 'कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥'* (४। १३), *'बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥'* (४। १३), *'एक बार चुनि कुसुम सुहाए।'* (३। १) *'सुहावा'* एकवचन है, यथा—*'प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा।'* (२३७। ७), *'सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा।'* (१००। ३), *'यह प्रभुचरित पवित्र सुहावा।'* (७। ५५। १), *'देखहु तात बसंत सुहावा।'* (३। ३७) इत्यादि। बहुवचन विशेषण देकर जनाया कि चारों भाइयोंके अलग-अलग चार पलँग बिछाये। (ग) *'कनक जरित मनि'* अर्थात् सोनेका पलँग है, उसपर मणि जड़े हुए हैं। सोनेपर मणिकी पच्चीकारी होती है, यथा—*'जातरूप मनि रचित अटारीं।'* (७। २७), *'कनक

कोट बिचित्र मनिकृत सुंदरायतना घना।' (५। ३) (घ) वचन सुनकर पलँग बिछाये अर्थात् पतिके वचनका प्रतिपालन किया। (ङ) [*'डसाए'* दीप-देहरी-न्यायसे अगली अर्धालीके साथ भी है।]

टिप्पणी—२ *'सुभग सुरभि पयफेन समाना।'''* इति। (क) *'सुरभि पयफेन'* सुरभीके दूधके फेनमें सुगन्ध है। सुगन्ध कहनेके लिये गऊको *'सुरभि'* कहा। और *'सुरभि'* सुगन्धको भी कहते हैं, यथा—*'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।'* (१। ३२८) देखिये। सुरभीका पयफेन सुगन्धयुक्त, सुन्दर, कोमल और शुक्ल वर्ण है, वैसे ही *'सुपेती'* भी सर्वगुण युक्त हैं' [भा० ७। ४। १० में भी इन्द्रभवनमें शय्याको पयफेनके सदृश कहा है, यथा—**'पयःफेननिभाः शय्याः।'** और ओढ़नेके वस्त्रोंमें मोतियोंकी लड़ियाँ लगी हुई कही गयी हैं **'मुक्तादामपरिच्छदाः।'** *'सुपेती'* में ओढ़नेकी भी चादरें आ जाती हैं। और *'सुभग'* में मुक्तादामयुक्तका भाव आ जाता है। *'सुरभि'* से ऐश्वर्ययुक्त अर्थात् बहुमूल्य भी जनाया] (ख) *'नाना'*=बहुत। *'सुपेती'* बिछौनेको अत्यन्त कोमल बनानेके लिये बिछायी गयीं।

टिप्पणी—३ *'उपबरहन बर'''* इति। (क) तकिये श्रेष्ठ हैं। जैसे *'सुपेती'* दूधके फेनके समान कोमल, सुन्दर और उज्ज्वल हैं, वैसे ही सब तकिये हैं, यथा—*'बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेनु मृदु बिसद सुहाई॥'* (२। ९१) (ख) *'स्त्रग सुगंध'''* इति। यहाँ 'सुगंध' से अतर, गुलाब, केवड़ा आदि सब सुगन्धित द्रव्योंका वहाँ रखे होना सूचित किया, क्योंकि यहाँ किसीके अङ्गमें लगाना नहीं है। (कमरा इन सुगन्धोंसे महक रहा है। भीनी-भीनी, मन और मस्तिष्कको सुख देने, प्रसन्न करनेवाली सुगन्ध कमरेमें फैली हुई है)। *'अचै पान सब काहू पाए। स्त्रग सुगन्ध भूषित छबि छाए॥'* (३५५। २) में सुगन्धसे 'चन्दन' का ग्रहण है, क्योंकि ब्राह्मण (आदि) के अङ्गमें लगानेको है। भोजनके अन्तमे चन्दन लगाकर फूल माला पहनानेकी विधि है। बहुत अतर-तेल है, ब्राह्मण लोग तेलका स्पर्श नहीं करते। (समयानुकूल खस, गुलाब, हिना, केवड़ा आदिका अतर लगाया जाता है। इसलिये मैंने वहाँपर 'अतर' अर्थ भी दिया है और ठीक समझता भी हूँ)।

टिप्पणी—४ *'रतन दीप सुठि चारु चँदोवा'''।'* इति। (क) *'रतन दीप'* कहनेसे सूचित होता है कि जिन मणियोंसे मन्दिर बना है उनसे *'रत्न दीप'* वाली मणि बहुत विशेष है, क्योंकि यदि ये विशेष न होतीं तो मणियोंके मन्दिरमें मणियोंके दीपक रखनेका काम ही क्या था। (ख) *'सुठि चारु'* का भाव कि सुन्दर तो सभी वस्तुएँ हैं पर चँदोवा अत्यन्त सुन्दर है। *'कहत न बनै'* इस अपने कथनको ग्रन्थकारने सिद्ध रखा, इसीसे चँदोवेका रङ्ग, बनाव, लम्बाई-चौड़ाई कुछ भी न कही, न यही कहा कि किस वस्तुका या किस वस्त्रका बना है, उसमें कैसे मणि-माणिक्य लगे हैं। (ग) *'जान जेहि जोवा'* इति। भाव कि वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनीश्वरोंने देखा है, महादेवजी और भुशुण्डिजीने देखा है, सो वे भी नहीं कह सके, उनके ग्रन्थोंमें भी *'चँदोवा'* का वर्णन नहीं है, तब मैं कहाँसे एवं क्योंकर वर्णन करूँ।

प० प० प्र०—१ *'मंदिर'* शब्द इसलिये प्रयुक्त हुआ कि कौसल्याजीके इस भवनमें श्रीरामजी हैं। जिस कमरेमें रुचिर शय्या रची गयी है उसमें शय्या रचते समय माता कौसल्या विविध प्रकारसे श्रीरामजीका चिन्तन करती हुई शय्याकी रचना करती हैं (यह सूचित करनेके लिये इसे *'मंदिर'* कहा गया)। २ *'जान जेहि जोवा'* इति। मिलान कीजिये, यथा—*'भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥ मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥ सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास। पलँग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥'* (२। ९०) *'बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई॥ तहँ सिय राम सयन निसि करहीं।'* (इसमें मन्दिर शब्द नहीं है क्योंकि इस समय श्रीरामजी वहाँ नहीं हैं)।

सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए॥ ५॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥ ६॥
देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥ ७॥

मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥ ८॥
दो०—घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥ ३५६॥

अर्थ—(इस प्रकार) शय्या सजाकर (माताओंने) श्रीरामजीको उठाया और प्रेमसहित (उनको) पलंगपर लिटाया॥ ५॥ (श्रीरामजीने) भाइयोंको बारंबार आज्ञा दी (तब) उन्होंने अपनी-अपनी शय्यापर शयन किया॥ ६॥ साँवले, कोमल और सुन्दर अङ्गोंको देखकर सब माताएँ प्रेमसहित वचन कह रही हैं॥ ७॥ हे तात! मार्गमें जाते हुए (तुमने) भारी भयावनी ताड़काको किस प्रकार मारा?॥ ८॥ दुष्ट मारीच और सुबाहु घोर निशाचरोंको, जो बड़े ही विकट योद्धा थे और जो संग्राममें किसीको कुछ नहीं गिनते थे, सहायकोंसहित कैसे मारा?॥ ३५६॥

टिप्पणी—१ (क) *'सेज रुचिर रचि'''* इति। प्रथम रुचिर सेजका; रचना कहा—*'जरित कनकमनि पलँग डसाए'* से *'उपबरहन बर बरनि न जाहीं'* तक। बीचमें मन्दिर, रत्नदीप, चँदोवा आदिका वर्णन करने लगे थे, अब फिर वहींसे कहते हैं। नाना प्रकारकी सुन्दर कोमल सुगन्धयुक्त तोसकें, चादरें, बिछायी गयीं, तकिये सिराहने एवं दोनों बगल दाहिने-बायें रखे गये, पुष्पोंकी मालाएँ लटकायी गयी हैं, इत्यादि; यह सेजका रचना है जो पूर्व कह आये। सेज एक तो स्वयं ही *'रुचिर'* (सुन्दर) है, उसपर भी रचकर सजायी गयी है। अतः *'रुचिर रचि'* कहा। *'राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए'*—अर्थात् श्रीरामजीको उठाकर पलँगके पास लिवा लायीं। *'प्रेम समेत'* अर्थात् हाथ फेरकर मुँह पोंछकर बहुत धीरेसे पलँगपर लिटाया।

टिप्पणी—२ *'अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही'''* इति। (क) *'पुनि पुनि'* आज्ञा देनेका भाव यह है कि तीनों भाइयोंका श्रीरामजीमें ऐसा प्रेम है कि वे इनका संग नहीं छोड़ सकते। पुनः भाव कि सब भाई इस आशामें खड़े हुए हैं कि आज्ञा हो तो हम चरणसेवा करें। (जनकपुरमें चरणसेवा दिखा आये हैं, यथा—*'रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥ चापत चरन लषन उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए॥ पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता।'* (१। २२६) वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिये।) श्रीरामजीके पाससे जाते नहीं, यह भाइयोंका प्रेम है और श्रीरामजी उनको बार-बार शयन करनेको आज्ञा देते हैं, यह श्रीरामजीका भाईयोंमें प्रेम दिखाया। (ख) *'निज-निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही'* इति। इससे सूचित हुआ कि जब श्रीरामजीकी शय्या सजायी गयी, उसी समय साथ-साथ सब भाइयोंकी शय्याएँ भी सजायी गयी थीं। यदि श्रीरामजीकी तरह तीनों भाइयोंको उठाकर माताएँ सेजपर लिटातीं तो स्वामी-सेवक भावकी सुन्दरता न रह जाती, इसीसे श्रीरामजीकी आज्ञासे सोना कहा। (यह प्राचीन हिन्दू-संस्कृति है।) *'निज निज सेज'* का भाव कि बड़े भाईकी सेजपर छोटा भाई नहीं बैठता और न छोटे भाईकी सेजपर बड़ा भाई बैठे, इसीसे सब भाइयोंकी शय्या पृथक्-पृथक् है।

टिप्पणी—३ *'देखि स्याम मृदु'''* इति। (क) *'स्याम'* से शरीरके वर्णनकी शोभा कही, यथा—*'स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥'* (३२७। १) *'मंजुल गात'* से अङ्गोंकी शोभा कही कि सब अङ्ग लक्षणयुक्त हैं। *'मृदु'* से सुकुमारता कही। *'देखि स्याम'''* कहनेका भाव कि सुन्दर शरीर सुन्दर अङ्ग देखने ही योग्य हैं, मृदु हैं अर्थात् राक्षसोंसे युद्ध करने योग्य नहीं हैं। (ये तो ऐसे हैं कि बस इन्हें देखा ही करें।) श्याम मृदु सुन्दर अङ्गोंको देखकर वचन कहनेका भाव कि ऐसे अङ्गोंसे घोर निशाचरोंको कैसे मारा। यथा—*'कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥ हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥ अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥'* (७। ७) (ख) *'कहहिं सप्रेम बचन सब माता'* इति। सब माताओंको श्रीरामजीमें एक-सा प्रेम है, इसीसे सब प्रेमसे पूछती हैं।

टिप्पणी—४ (क) *'मारग जात'* का भाव कि ऐसी घोर राक्षसीको रास्ता चलते-चलते मार डाला, कुछ परिश्रम न हुआ। (ख) *'भयावनि भारी'* अर्थात् जिसके देखनेहीसे भय होता था और जो पर्वताकार थी।

अथवा अत्यन्त भयावनी थी। (ग) *'केहि बिधि'* कहनेका भाव कि मारनेकी कोई भी विधि देख नहीं पड़ती। अर्थात् तुम मनुष्य हो वह राक्षसी। तुम छोटे हो वह भारी। तुम कोमल हो वह कठोर और तुम सुन्दर हो वह भयावनी इत्यादि कोई भी विधि उसके मारनेकी नहीं समझ पड़ती। (घ) इसकी भयावनता वाल्मीकीयमें इस प्रकार वर्णित है, यथा—**'तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्। प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत॥'** (१। २६। ९) **'पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः। भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च॥'''''''** (१०) अर्थात् उसका स्वरूप भयानक था, मुँह तो और भी अधिक भयावना था। प्रमाणसे भी उसका शरीर बहुत बड़ा था। उसको देखते ही भीरु पुरुषोंका हृदय काँप जाता था।

टिप्पणी—५ *'घोर निसाचर'''''* इति। (क) *'घोर निसाचर'* कहकर स्वरूपसे भयदायक और *'विकट भट'* से पुरुषार्थमें कराल जनाया। विकट हैं इसीसे *'समर गनहिं नहिं काहु।' 'खल'* हैं अर्थात् सुरमुनिद्रोही हैं, यथा—*'सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥'* (२१०। ३) (ख) मारीच और सुबाहु भट थे, संग्रामके अभिमानी थे, भयानक थे और खल थे अर्थात् छलसे युद्ध करते थे और सहाय (सेना) सहित थे और तुम दोनों भाई सुकुमार हो, कभी किसीसे युद्ध नहीं किया, सुन्दर और सरल स्वभावके हो, छल-प्रपञ्च जानते नहीं। तब तुमने उनको कैसे मारा?

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरैं टारी॥ १॥
मख रखवारी* करि दुहुँ भाई। गुरुप्रसाद सब बिद्या पाई॥ २॥
मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥ ३॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाजु महुँ शिवधनु तोरा॥ ४॥

शब्दार्थ—**करवरैं**=अरिष्ट बाधाएँ, बलाएँ, कठिनाइयाँ, जानजोखिम। **कूट**=पर्वत।

अर्थ—हे तात! मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, बलैया लेती हूँ। मुनिकी कृपासे श्रीमहादेवजीने अनेक बलाएँ टाली हैं॥ १॥ दोनों भाइयोंने यज्ञकी रक्षा करके गुरुदेवजीकी कृपासे सब विद्या पायी॥ २॥ (गौतम) मुनिकी स्त्री अहल्या चरणोंकी धूलि लगते ही तर गयी। ब्रह्माण्डमें कीर्ति पूर्ण भर रही है॥ ३॥ कच्छप-भगवान्‌की पीठ, वज्र और पर्वतसे भी कठोर शिवधनुषको तुमने राजसमाज (के बीच) में तोड़ा॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'मुनि प्रसाद बलि'''* इति। (क) *'मुनि प्रसाद'* का भाव कि मुनिकी कृपा होनेसे महादेवजी कृपा करते हैं, यथा—*'सीय स्वयंबर देखिअ जाई। ईस काहि धौं देइ बड़ाई॥ लषन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥'* (१। २४०) [इसी तरह श्रीजनकजीने धनुर्भंगका और श्रीदशरथजीने सर्व पराक्रमोंका श्रेय विश्वामित्रजीको दिया है। यहाँपर परमावधिका मर्यादापालन और माधुर्यभावकी चरमसीमा बतायी है। (प० प० प्र०)] (ख) *'बलि तात तुम्हारी'*—भाव कि तुम्हारे ऊपर मुनिकी कृपा है तथा श्रीशिवजीकी कृपा है, मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ। जैसे मुनिकी तथा शिवजीकी कृपाने तुम्हारी करवरें टालीं, वैसे ही मैं तुम्हारी बलाएँ हरती हूँ। *'तुम्हारी'* देहलीदीपक है। *'तुम्हारी बलिहारी', 'तुम्हारी अनेक करवरैं ईस टारी।'* (ग) *'ईस करवरैं टारी'*—भाव कि ईशकी कृपासे करवरें टलती हैं। महादेवजी मृत्युञ्जय हैं। राक्षसोंसे युद्ध करना 'करवर' है। (घ) *'अनेक करवरैं'*—भाव कि ताड़कासे बचे; मारीचसे बचे; सुबाहुसे बचे; उनकी सेनासे बचे—ये सब अनेक प्रकारकी करवरें हैं। मृत्युसे बचना करवरका टलना है। [जो उत्तर श्रीरामजी देते वही वे स्वयं ही दे रही हैं।]

टिप्पणी—२ *'मख रखवारी करि दुहुँ भाई।'''* इति। अर्थात् गुरुके यज्ञकी रक्षा करके अपनी सेवासे उनको प्रसन्नकर विद्या प्राप्त की। यहाँ *'सब विद्या'* की प्राप्तिका हेतु गुरुप्रसाद और गुरुप्रसादका हेतु यज्ञरक्षा बताते हैं। परंतु श्रीरामजी तो सब विद्या प्रथम ही प्राप्त कर चुके थे और यहाँ कहते हैं कि यज्ञरक्षाके पश्चात् सब विद्या पायी? कल्पभेदसे दोनों बातें हो सकती हैं। मुनियोंके रामायणोंमें दोनों

* रखवारि करी—छ०।

लिखी हैं; इसीसे गोस्वामीजी दोनों लिखते हैं। [यहाँ जो सब विद्या पाना लिखते हैं वह बला, अतिबला आदि विद्याएँ हैं जिनका उल्लेख २०९. ७-८ में किया गया है और जिसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकीयमें है। गोस्वामीजीने लिखा है—*'विद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही। जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥'* वही यहाँकी 'सब विद्या' है। क्रमभङ्गका समाधान यों भी कर सकते हैं कि मखरक्षाका श्रीगणेश ताड़कावधसे हुआ। इससे भी *'मख रखवारी करि'* कहा जा सकता है; क्योंकि ताड़कावधपर ही इन्द्रादि देवताओंने प्रसन्न होकर विश्वामित्रजीसे इनको पारितोषिक देनेको कहा है और मुनि भी ताड़कावधसे बहुत प्रसन्न हुए थे, यथा—'**तोषिताः कर्मणानेन स्नेहं दर्शय राघवे।** वाल्मी० १। २६। २९।'''**ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः॥** ३२॥''''' मानसमें भी मुनिकी प्रसन्नता ताड़कावधपर *'तब रिषि निज नाथहि जिय चीन्ही'* इन शब्दोंसे सूचित की गयी है। अथवा, माताएँ प्रेममें मग्न हैं, जैसे-जैसे श्रीरामजीके चरित याद आते हैं उन्हें कहती जाती हैं। पुनः, मखरक्षा श्रीरामजीका चरित है, इससे उसे गा रही हैं, यह मुख्य है, विद्या पाना और गुरुप्रसाद गौण है। यह भी क्रमभङ्गका कारण हो सकता है।]

टिप्पणी—३ *'मुनितिय तरी'''* इति। (क) *'लगत पग धूरी'*—भाव यह कि पदरज लगनेसे कुछ दिनके पश्चात् वह कृतार्थ होती, यह बात नहीं है, धूलिका स्पर्श होते ही वह कृतार्थ हो गयी। यहाँ चरणका स्पर्श कराना नहीं कहतीं, क्योंकि श्रीरामजीको चरण स्पर्श करानेका पछतावा हुआ है (जैसा विनयके *'सिला पाप संताप बिगत भइ परसत पावन पाउ। दई सुगति सो न हरषु हिय चरन छुए को पछिताउ॥'* (१००) इसीसे पदकी धूलिका लगना कहती हैं। अहल्याने चरणका सिरपर धरना कहा है, यथा—*'सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी।'* (२११ छन्द) (ख) *'कीरति रही भुवन भरि पूरी'*—'ब्रह्माण्डमें भरकर पूरि रही' (भरपूर छायी हुई है)। भाव यह कि अब नष्ट न होगी। इस कथनसे सूचित करते हैं कि तुम्हारी कीर्ति (यश) रूपी चन्द्रमाका जगत्‌में उदय हुआ है, अब यह अस्त नहीं होगा। यथा—*'नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥ उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना।'* (२। २०९) (यह श्रीभरतजीके सम्बन्धमें कहा है।)

टिप्पणी—४ *'कमठ पीठि पबि कूट कठोरा।'''* इति। (क) यहाँ तीन प्रकारकी कठोरता कही—कमठ, पीठ, पवि और कूट। कमठ-पीठसे पातालकी कठोरता, पवि (वज्र) से स्वर्गकी कठोरता और कूट (पर्वत) से मर्त्यलोककी कठोरता कही। इस प्रकार शिवजीके धनुषमें तीनों लोकोंकी कठोरता दिखायी। भाव यह कि तीनों लोकोंमें ये तीन कठोरताकी अवधि (सीमा) हैं, सो ये तीनों मिलकर भी धनुषकी कठोरताको नहीं पाते। [कोई-कोई *'पबिकूट'* को एक शब्द मानकर उसका अर्थ 'वज्र समूह' करते हैं। परंतु गीतावलीके '*पन पिनाक पबि मेरु ते गुरुता कठिनाई।'* (१। १०१) से *'कूट'* का अर्थ यहाँ 'पर्वत' ही सिद्ध होता है। पुनः यहाँ उत्तरोत्तर एकसे दूसरेकी विशेष कठोरता दिखाती हैं। पर्वतसे वज्र अधिक कठोर है और वज्रसे कमठपीठ अधिक कठोर है। कच्छपभगवान्‌की पीठ सबसे कठोर है सो न सही तो वज्र-समान ही सही, वह भी नहीं तो पर्वत-समान ही सही, तब भी तो कठोर है और तुम अत्यन्त सुकुमार हो। (प्र० सं०) यह भी भाव कह सकते हैं कि पातालके राजाओंने इसे कमठपीठसे अधिक, स्वर्गवाले राजाओंने पविसे और पृथ्वीवालोंने पर्वतसे अधिक कठोर पाया जिसका जिसको अनुभव था। (ग) बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि कमठपीठ, पवि और कूटके समान कठोर कहनेमें भाव यह है कि 'धनुष नवानेमें कमठकी पीठके समान कठिन था। सो उसके दोनों गोशे नवाकर धनुषको नभमण्डलसम कर दिया। तोड़नेमें वह इन्द्रके वज्रके समान कठोर था, उसे तुमने तृणवत् शीघ्र ही तोड़ डाला। और, उठानेमें मन्दराचल आदि पर्वतोंके समान भारी था, उसे तुमने तिलके समान उठा लिया।' प० प० प्र० स्वामीजीका मत है कि 'कमठपीठ' से दुर्भेद्य और विशाल, पविसे कठोर और तीक्ष्ण और कूटसे मेरु पर्वतके समान विशाल और भारी जनाया। यथा—*'कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा', 'मनहु पाइ भट बाहुबल अधिक अधिक गरुआइ।'*] (घ) *'नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा'* इति। भाव

कि सब राजाओंका गर्व दूर करके धनुषको तोड़ा, कोई राजा इसको तोड़ न सका तब तुमने तोड़ा। यथा—'*संभु सरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥*' (२९२। ५)

बिश्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥५॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे॥६॥
आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा॥७॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखे। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखे॥८॥

दो०—राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बयन।
सुमिरि संभु गुरु बिप्र पद किये नीद बस नयन॥३५७॥

अर्थ—विश्वकी विजय, यश (कीर्ति) और जानकी पायी। सब भाइयोंको ब्याहकर घर आये। तुम्हारे सभी कर्म अमानुष हैं (अर्थात् मनुष्योंके-से नहीं हैं, मनुष्योंसे होने योग्य नहीं हैं)। केवल विश्वामित्रजीकी कृपाने सुधारा है॥६॥ हे तात! आज तुम्हारा चन्द्रवदन देखकर संसारमें हमारा जन्म सफल हुआ॥७॥ जो दिन तुम्हारे दर्शनोंके बिना बीते ब्रह्मा उनको लेखेमें न लावें, उनकी गणना आयुमें न करें॥८॥ श्रीरामजीने बहुत ही नम्र श्रेष्ठ वचन कहकर सब माताओंका संतोष किया और शम्भु-गुरु-विप्रके चरणोंका स्मरण करके नेत्रोंको नींदके वश किया॥३५७॥

टिप्पणी—१ '*बिश्व बिजय जसु*' इति। (क) 'विश्वविजय, यश और जानकी पायी' कहनेका भाव यह है कि तीनोंकी प्राप्ति दुर्लभ है। यथा—'*कुआँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥*' (२५१) [गीतावलीमें भी यह तीनों बातें कही गयी हैं, यथा—'*भंजि सरासन संभुको जग जय कल कीरति, तिय तियमनि सिय पाई।*' (१। १०१। ४) श्रीजानकीजीके सम्बन्धमें श्रीहनुमान्‌जीके विचार ये हैं कि यदि त्रैलोक्यके राज्य और श्रीजनकनन्दिनीजीकी तुलना की जाय तो वह श्रीसीताजीकी एक कलाके बराबर भी तो नहीं हो सकता। यथा—'**राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा। त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीतया नाप्नुयात्कलाम्॥**' (वाल्मी० ५। १६। १४) रा० प्र०—कार '*बिश्व बिजय जसु*' का अर्थ—'विश्वविजयरूप यश अर्थात् जो परशुरामजी सबसे जीते थे सो भी हार गये' वा जो धनुष किसीसे न टूटा उसे तोड़ डाला यह यश वा 'विश्वभरके विजयका यश'—ऐसा करते हैं। (ख)—''*बिश्व बिजय*' कहकर यह भी जनाया कि तीनों लोकोंमें इसकी कठोरता प्रसिद्ध है। विश्वभर (अर्थात् तीनों लोकों) के देवता, दैत्य, मनुष्य यहाँ एकत्र हुए थे, सबका '*जस प्रताप बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहिं संग सिधाई*', वह सब इनको प्राप्त हुआ।] (ग)—यहाँतक श्रीरामजीकी वीरता, प्रताप, बल और बड़ाई सब कहे हैं। यथा—'*घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु। मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥*' (३५६)—यह वीरता है। '*मुनितिय तरी लगत पग धूरी*' यह प्रताप है। '*कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाजु महुँ शिवधनु तोरा।*'—यह बल है और '*बिश्व बिजय जसु जानकि पाई*'—यह बड़ाई है। (घ) श्रीरामजीके सब कर्म और उनका फल कहती हैं। '*मख रखवारी करि दुहुँ भाई*' यह कर्म कहकर उसका फल '*गुरु प्रसाद सब बिद्या पाई*' कहा। '*मुनि तिय तरी लगत पग धूरी*' इस कर्मका फल '*कीरति रही भुवन भरि पूरी*' कहा। और '*कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ शिवधनु तोरा।*' इस कर्मका फल '*बिश्व बिजय जसु जानकि पाई। आये भवन ब्याहि सब भाई॥*'

टिप्पणी—२ '*सकल अमानुष करम तुम्हारे।*' इति। (क) '*सकल*'—जहाँसे कहना प्रारम्भ किया वहाँ (अर्थात् '*मारग जात भयावनि*' से लेकर '*बिश्व बिजय जसु जानकि पाई*' तक) जितने कर्म कहे वे सब कर्म अमानुष हैं। यथा—'*जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड। खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥*' (३२५) (ख) '*केवल कृपा*' का भाव कि (जहाँ) कृपा होती है। (वहाँ) कुछ पुरुषार्थ

भी होता है, परंतु यहाँ केवल मुनिकी कृपासे सब हुआ, बच्चोंमें पुरुषार्थ कहाँ! (ग) [परशुरामजीका गर्व चूर्ण करना भी दूतोंने कहा ही था—*'करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा।'* (२९३। १-२) परंतु यहाँ] माताएँ परशुरामको जीतनेकी बात नहीं कहतीं, क्योंकि श्रीरामजी ब्रह्मण्यदेव हैं, ब्राह्मणको जीतनेकी बात कहतीं तो उनको अच्छा न लगता, यह माता जानती हैं; इसीसे उन्होंने और सब चरित कहे पर इसको न कहा, पशुरामजीको जीतनेकी बात श्रीरामजीसे किसीने नहीं कही। औरोंसे कही है। [गीतावलीमें माताओंने कहा है, यथा—*'कहौ धौं तात! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेह कुमारी। दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी। क्यौं सौंप्यो सारंग हारि हिय करी है बहुत मनुहारी।'* (१। १०७) मानसमें मर्यादाका पूर्ण विचार रखा गया है। क्योंकि इसमें साकेतविहारीका अवतार है। प० प० प्र० जी 'अमानुष' का अर्थ 'अतिमानुष्य' करते हैं और इसी तरह *'असंका'* का अर्थ 'अति शंका' करते हैं।]

टिप्पणी—३ *'आजु सुफल जग जनमु·········'* इति। *'आजु सुफल'* कहनेका भाव कि अनेक संकटोंसे तुम बचकर आज घर आये। आज तुम्हारा मुखचन्द्र देखनेको मिला, इसीसे आज हमारा जन्म सुफल हुआ। *'देखि तात बिधु बदन·········'*—मुखको चन्द्रमा कहनेका भाव कि जैसे चन्द्रमा दिनके तापको हरता है वैसे ही तुम्हारे मुखचन्द्रको देखकर हमारे ताप दूर हो गये, यथा—*'बदन मयंक तापत्रयमोचन।'* (२१८। ६)। *'देखि'* कहकर जनाया कि मुखचन्द्रके दर्शनसे नेत्र शीतल हो गये। श्रीरामजीके दर्शनसे जन्म और नेत्र दोनों सफल होते हैं, यथा—*'रामचरन बारिज जब देखौं तब निज जन्म सफल कर लेखौं॥'*(७। ११०), *'निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥'* (७। ७५), *'करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ।'* (२१८)

टिप्पणी—४ *'जे दिन गये तुम्हहि बिनु'* इति। (क) जितनी कथा रानियाँ कह आयीं, *'मारग जात भयावनि भारी'* से लेकर *'आये भवन ब्याहि सब भाई'* तक, उतने दिन बिना दर्शनके बीते। इतने दिनोंके लिये प्रार्थना है। [(ख) *'ते बिरंचि जनि पारहि लेखे'* इति। ब्रह्मा उन दिनोंको गिनतीमें न लावें, उनकी गिनती न करें। ये वचन ऐश्वर्यसूचक हैं, पर यह विनती ब्रह्मासे है कि जितने दिन वियोग रहा ब्रह्माजी उन्हें आयुकी गिनती करनेमें हिसाबमें न जोड़ें, इस प्रकार उतने दिन इनके दर्शनका सुख और मिल जायगा। स्मरण रहे कि आयु प्रारब्ध-शरीरके साथ निश्चितरूपसे दी जाती है; उतने दिनोंसे अधिक कोई नहीं जीता।

बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि यह प्रार्थना श्रीरघुनाथजीसे है वे कहते हैं कि माताओंकी बातको श्रीराघवजीने स्वीकार कर लिया। अपने जन्मके पहले जो दिन बीते रहे उनको भी लेखासे उठा दिया, नहीं तो माताने तो केवल उतने ही दिनोंके लिये प्रार्थना की थी जितने दिन वे विश्वामित्रजीके साथ आश्विन कृ० १२ से माघ कृ० २ तक बाहर रहे थे। इतना ही नहीं वनवासके १४ वर्ष भी आयुमें न गिने, अतएव माता रघुनाथजीके साथ पधारीं, नहीं तो त्रेतामें आयु केवल दस हजार वर्षकी होती थी। पर राजा दशरथजी तो ६० हजार वर्षके हो चुके थे जब उनके पुत्र हुए। यदि दस हजार वर्षकी ही आयु सबकी होती थी तो कौसल्या आदिका साकेतवास भी कभीका हो गया होता।)]

(ग) मुखचन्द्रके दर्शनसे जन्म सफल होता है और दर्शन बिना जन्म निष्फल है। बिना दर्शनवाले दिनोंमें जीना मरे हुए-के समान जीना है, यथा—*'जो पै रहनि रामसों नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं'* (वि० १३५)। इसीसे कहती हैं कि ब्रह्मा निष्फल दिन सफल जन्ममें न मिलावें।

टिप्पणी—५ *'राम प्रतोषीं मातु सब'* इति। (क) सब माताओंने प्रश्नके वचन कहे थे, यथा—*'कहहिं सप्रेम बचन सब माता'*; इसीसे सब माताओंका परितोष किया। *'बिनीत बर'* वचन कहे अर्थात् कहा कि श्रीकौशिक महाराजजीकी कृपासे और आप सबोंके पुण्य-प्रभावसे, आपकी शुभकामना और दयासे हमें सदा मङ्गल है। इन वचनोंसे सबको संतोष हो गया। [पंजाबीजी लिखते हैं कि इस प्रकार संतुष्ट किया कि गुरुओंकी कृपासे, पिताके धर्मबलसे और आपके पातिव्रत्यकी सहायतासे ये सब कार्य हुए। मानसमयंककार लिखते हैं कि माताके इन वचनोंको सुनकर कि विधि आयुष्यके लेखमें उन दिनोंको न लें जो बिना

तुम्हारे बीते हैं। रामचन्द्रजीने माताका प्रबोध किया कि जबतक मैं लीला-आविर्भाववश अवधमें रहूँगा तबतक नित्य दर्शन दूँगा।] (ख) *'सुमिरि संभु गुरु बिप्र पद'* इति। इन तीनोंका स्मरण करके सोना यह विधि है। इससे सूचित किया कि सोते-जागते इन तीनोंकी शरण रहे। यह शिक्षा देनेके लिये श्रीरामजीने सोते और जागते दोनों समय तीनोंका स्मरण किया। यहाँ सोते समय तीनोंका स्मरण किया और जब जागे तब भी *'बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥'* (३५८। ७) सोते-जागते दोनोंमें इनकी शरण रहना चाहिये यह बताया।

नोट—१ (क) शम्भु आदिके स्मरणमें जगत्की रीति दिखायी और इनको प्रतिष्ठा दी जिसमें शयनके समय इनका स्मरण लोग अवश्य करें। (रा० प्र०) (ख) मर्यादापुरुषोत्तमकी शंकर, गुरु और विप्रभक्तिके उदाहरण मानसमें बारम्बार पाठकोंने पढ़े ही हैं! स्कन्द पु० ब्रा० धर्मारण्यखण्डमें श्रीरामजीकी विप्रभक्तिके सम्बन्धमें स्वयं उनके ही वचन हैं कि मैं ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही कमलापति हूँ, धरणीधर हूँ, जगत्पति हूँ और उन्हींके प्रसादसे मेरा नाम 'राम' है। यथा—**'विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम्। विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसादान्मम राम नाम॥'** (३२। ३०) (ग) गौड़जी कहते हैं कि 'माधुर्यमें भगवान् रामचन्द्रजीकी उपासनामें भगवान् शंकरका नम्बर पहला है। वह *'सेवक स्वामि सखा सियपीके'* हैं। अपनी ओरसे शिवजी अपनेको सेवक, श्रीरामचन्द्रजीकी ओरसे शिवजी उनके स्वामी और अनेक भक्तोंकी ओरसे सखाका परस्पर भाव अथवा अभेद भाव है। रामेश्वर ही ठहरे। इसीलिये सोनेके पहले भगवान् शंकरका स्मरण करते हैं, फिर गुरुके चरणोंको स्मरण करते हैं। गुरु और ईश्वरमें भी अभेद ही है। विप्रचरणको नारायणरूपमें वक्षःस्थलपर धारण किया है। इसीसे तीनोंका स्मरण करके सोये। (घ)—*'किये नीद बस नयन'* अर्थात् नेत्र बंद कर लिये, किंचित् निद्राका भाव आ गया।

नींदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहु साँझ सरसीरुह सोना॥ १॥
घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परसपर मंगल गारी॥ २॥
पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी॥ ३॥

शब्दार्थ—**लोना**=लावण्यमय; सुन्दरता। **सोना** (शोण)=लाल। यथा—'**सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक ताप त्रय मोचन॥**' (२१९। ६) **जागरन** (जागरण)=रातभर जागनेका कर्म। **बिराजति**=विशेष राजती है। **राजना**=शोभित होना। **सजनी**=प्रिय सखी।

अर्थ—नींदमें भी उनका अत्यन्त सलोना सुन्दर मुख (ऐसा) शोभित हो रहा है मानो सायंकालका लाल कमल है॥ १॥ (नगरमें) घर-घरमें स्त्रियाँ जागरण कर रही हैं और परस्पर एक-दूसरेको मङ्गल गालियाँ दे रही हैं॥ २॥ रानियाँ कहती हैं—हे सखी! देखो (आज) रात्रि शोभित है और पुरी विशेष शोभित हो रही है॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'नींदउँ बदन सोह'* इति। (क) *'नींदउँ'* का भाव कि जागतेमें तो सुन्दर रहता ही है, नींदमें भी अत्यन्त सोहता है। पुनः भाव कि नींदमें लोगोंके मुखकी शोभा प्रायः नहीं रहती, परंतु श्रीरामजीके मुखकी शोभा नींदमें भी अत्यन्त है। (ख) *'साँझ सरसीरुह सोना'* इति। संध्यासमयके कमलकी उपमा देनेका भाव यह है कि सायंकालके कमलमें संकोच और विकास दोनों रहते हैं, वैसे ही श्रीरामजीका मुख सोते समय कुछ संकुचित हुआ है पर शोभा जैसी थी वैसी ही है। जैसे संध्यासमयका कमल कुछ संकुचित होता है पर उसकी शोभा कम नहीं होती। इसीसे नींदमें भी अत्यन्त लावण्यमय कहा। दोहेमें निद्रावस्था कही थी, अब निद्रावस्थाकी दशा कहते हैं कि *'नींदउँ बदन सोह।'*

नोट—१ *'मनहु साँझ सरसीरुह सोना'* इति। इसके अर्थ महानुभावोंने अनेक किये हैं—(१) 'निद्रायुक्त मुख अति लोना ऐसा शोभित हो रहा है मानो साँझ-समयका शोण अर्थात् लाल कमल है; भाव यह कि कुछ सन्ध्याकी ललाई और कुछ अपनी ललाई दोनों मिलकर कमल अधिक शोभा पाता है। वा

संध्या-समयमें कमल कुछ खुला कुछ मुँदा रहता है वैसा।'—(रा० प्र०) (२) 'मानो रात्रिमें कमल सोया हुआ है। (पं०) (३) 'औंघाईसहित सम्पुटित चेष्टामय मुख अत्यन्त लावण्यतासे भरा हुआ सोह रहा है मानो साँझ समयमें लाल कमल सोहता है। 'जाग्रत् अवस्था रवि अस्त, शय्या सर और मुख कमल है।' (वै०) (४) भाव कि मुखारविन्द नहीं है किंतु सन्ध्या-समय शोणकमलरूप सन्ध्यासमयका सूर्य है जिसे शफ़क कहते हैं—'शोणोऽरुणे' नानार्थमें कहा है—(मा० त० वि०)

☞यहाँ *'सोना'* शब्द सो जानेके अर्थमें नहीं आया है। गोस्वामीजीकी भाषामें इस अर्थमें *'सोउब'* होता। क्रियाके इस रूपका प्रयोग मानसभरमें कहीं नहीं है। इस अर्थमें इसे लेनेकी जरूरत भी नहीं है। साँझके समय कमल संकुचित होता ही है। *'साँझ'* काफी है। *'सोना'* का अर्थ है 'लाल'। नेत्रोंको राजीवसे उपमा देते ही हैं। बदनकी शोभा और लावण्यता कैसी है? लक्षणासे बदनके मुख्यांश आँखोंहीपर उत्प्रेक्षा की गयी। आँखें अधमुँदी-सी हैं। सुर्खीकी कुछ-कुछ वैसी ही झलक है जैसे हरे दलोंके भीतरसे लाल दलोंकी लालिमा संकुचित राजीवमें झलकती है।

श्रीनंगेपरमहंसजीने *'बदन'* का अर्थ 'आँखें' किया है। वे कहते हैं कि *'बदन'* का अर्थ मुँह करनेसे अनर्थ हो जायगा। क्योंकि उपमा मुँहके लिये नहीं है, लाल कमलका नेत्रके लिये है। अतः बदनका अर्थ नेत्र होगा। पुनः अर्थ प्रसंगाधीन रहता है, स्वतन्त्र नहीं। और प्रसङ्ग नींदका है। अतः प्रसंगानुकूल बदनका अर्थ नेत्र होगा। प्रज्ञानानन्दस्वामीजी लिखते हैं कि *'साँझ-समय'*=सन्ध्या-समय जब सूर्यका अस्त नहीं हुआ है। यथा—*'देखि भानु जनु मनु सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥'* इस समय लाल कमल अर्धोन्मीलित रहता है। वैसे ही भगवान्‌के राजीवाक्ष अर्धोन्मीलित हैं। पलकोंके ऊपरका भाग राजीवदलके बाहरके समान नील श्यामवर्ण है। मुखमें नेत्र ही सौन्दर्यका मुख्य निधान होता है।

टिप्पणी—२ (क) जहाँतक चरित्रके वर्णन करनेकी सीमा है वहाँतक उसका वर्णन किया। अब सोते समय उनका चरित्र कुछ नहीं हो रहा है, जब जागेंगे तब फिर चरित्र करेंगे, तब कवि पुनः वर्णन करेंगे। इधरसे सावकाश पाकर अब (आगे) पुरीका मङ्गल वर्णन करते हैं—*'घर घर*……*।'* (ख) *'घर घर करहिं जागरन नारी।* ……*'* इति। *'मंगल गान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥'* (३५५। १) यह जागरण राजाके घरका कहा गया था, अब घर-घरका जागरण कहते हैं। जिस दिन बारात लौटकर आती है उस दिन जागरण करनेकी रीति है, इसीसे आज जागरण कर रही हैं। (ग) *'देहिं परसपर मङ्गल गारी'* इति। मङ्गल गाती हैं। गीतहीमें गाली देती हैं। अपने भाईका नाम और जिस स्त्रीको गाली देती हैं उसका नाम मिलाकर गाली गाती हैं (जैसे भावज नन्दको गाली देती है)। (घ) अवधवासियोंके घर-घरमें सब मंगल मनाये जाते हैं (जो राजाके यहाँ मनाये जाते हैं), इसीसे जागरण भी घर-घर हो रहा है। यथा—*'निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥', 'बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।'* (३४४), *'घर घर बाजन लगे बधाए।'* (३५१। ६) तथा यहाँ *'घर घर करहिं जागरन।'* (ङ) इन दो चरणोंमें पुरीका हाल कहकर, आगे पुनः राजमहलका हाल कहते हैं।

टिप्पणी—३ *'पुरी बिराजति राजति रजनी।*……*'* इति। (क) राजमहलमें मङ्गल-गानसे रात्रिकी शोभा कही थी—*'मंगल गान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥'* अब पुरीके मङ्गल-गानसे रात्रिकी शोभा कहते हैं। घर-घर मङ्गल-गान होता है, इसीसे पुरी विशेष शोभित हो रही है। (ख) *'राजति रजनी'* कहनेसे सूचित होता है कि शुक्लपक्षकी रात्रि है। शुक्लपक्षकी रात्रि शोभित होती है। चाँदनी फैली है, इसीसे रात्रिकी शोभा है, यथा—*'भनिति मोरि सिव-कृपा बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥'* (१। १५) [बैजनाथजीका मत है, कि यह माघकृष्ण द्वितीयाकी रात्रि है। इसमें दो घड़ीके पश्चात् सारी रात्रिमें चाँदनी रहती है। भोजन करते समयतक पाँच घड़ी रात बीत गयी थी, अतः रात्रि प्रकाशमय है।] (ग) यहाँ रात्रिको *'राजति'* और पुरीको *'बिराजति'* कहा। अर्थात् रात्रिकी शोभासे पुरीकी शोभाको अधिक कहती हैं। तात्पर्य यह कि रात्रि केवल चाँदनीसे शोभित है और पुरीकी शोभा बनावटसे, सजावटसे, मङ्गल-रचनासे, चाँदनीसे तथा मङ्गल-

गानसे (चुहल-पहलसे और श्रीरामजीके सम्बन्धसे) शोभित हो रही है, इसीसे उसकी विशेष शोभा है। (पंजाबीजीका मत है कि पुरीभरमें दीपमालासे विशेष शोभा है)।

नोट—२ श्रीराम-लक्ष्मणजी आश्विनमें मुनिके साथ गये। तबसे अयोध्यापुरीमें दशहरा, दीपावली, वैकुण्ठचतुर्दशी, त्रिपुरपौर्णिमा इत्यादि अनेक अवसरोंपर दीपोत्सव, जागरण इत्यादि अनेक प्रकारके उत्साह और मङ्गल कार्य हो गये होंगे तथापि आजहीकी रात्रि माताओंको आनन्दपूर्ण प्रकाशित देख पड़ती है। [इससे जनाया कि श्रीरामजीके वियोगमें पुरी शून्यरूप, भयावनी और निरुत्साह ही लगती थी। विशेष ३५० (६—८) में देखिये। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—४ *'रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी'* इति। रानी अपने महलसे सखियोंको पुरीकी शोभा दिखा रही हैं। इससे सूचित होता है कि महल बहुत ऊँचा है, उससे पुरीकी शोभा देख पड़ती है। रानियोंके कहनेका भाव यह है कि गोस्वामीजीने सब स्त्रियोंका जागरण कहा है, यथा—*'मंगल गान करहिं बर भामिनि'* पुनश्च *'घर घर करहिं जागरन नारी'* किंतु रानियोंका जागरण नहीं कहा, वह *'रानी कहहिं'* से जनाते हैं। रानियाँ सखियोंसहित श्रीअवधपुरीकी शोभा और बहुओंकी शोभा देख-देखकर जागरण कर रही हैं। [पुरीमें मङ्गल-गान करती हुई सब स्त्रियाँ जागरण कर रही हैं। पर महलमें मङ्गल-गानद्वारा जागरण नहीं कर रही हैं, क्योंकि राजा, भाइयोंसहित श्रीरामजी और बहुएँ सभी समीप ही शयन कर रहे हैं, गानसे इनकी निद्राके भङ्ग हो जानेका भय है। माताएँ इनकी सेवाके लिये समीप ही हैं। अतएव रानियाँ शोभा देखती हैं और दिखाती हैं, इस तरह जागरण कर रही हैं।] (ङ) *'रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी'* यह देहलीदीपक है। रानियाँ कहती हैं कि 'सखि! पुरीकी शोभा देखो और *'सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई'* हैं उन्हें देखो।

सुंदर बधुन्ह* सासु लै सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई॥ ४॥
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥ ५॥
बंदि† मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥ ६॥
बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥ ७॥

अर्थ—सासें सुन्दर बहुओंको लेकर सोयीं, मानो सर्पोंने सिरके मणिको हृदयमें छिपा रखा है॥ ४॥ प्रातःकाल पवित्र समय (ब्राह्ममुहूर्त्तमें) प्रभु जागे। मुर्गे सुन्दर बोलने लगे॥ ५॥ भाट और मागध आदिने गुण-गण गाये। पुरवासी द्वारपर प्रणाम करने आये॥ ६॥ ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माताको प्रणामकर आशीर्वाद पा सब भाई प्रसन्न हुए॥ ७॥

टिप्पणी—१ *'सुंदर बधुन्ह सासु'* इति। (क) बहुएँ चार हैं, सास बहुओंको लेकर सोयीं, इस कथनसे सूचित होता है कि चार सासुएँ चारको लेकर सोयीं। श्रीकौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजी तीनको लेकर सोयीं, किसी और एकने एक बहूको अपने साथ सुलाया, शेप सब रानियाँ जागरण करती हैं। बहुओंको सुलानेके लिये चार सासुओंको सोना पड़ा। (ख) राजाकी आज्ञा थी कि *'लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ'* इस आज्ञाका प्रतिपालन किया। पहले श्रीरामजीको शयन कराया। जब वे सो गये, तब बहुओंको सुलाया। (ग) *'फनिकन्ह जनु सिर मनि'* इति। *'फनिकन्ह'* पुँल्लिङ्ग और बहुवचन है। बहुओंको लेकर चार सासु सोयी हैं, इससे बहुवचन शब्द दिया। पुँल्लिङ्ग इससे दिया कि मणि सर्पके सिरमें होती है, नागिन (सर्पिणी) के सिरमें मणि नहीं होती। बहुवचन *'फनिकन्ह'* फणिमणिसम कहकर सूचित करते हैं कि एक सर्पके सिरमें एक ही मणि होती है, दो नहीं, इसी तरह एक सास एक ही बधूको लेकर सोयी है। बहू सुन्दर है, इसीसे मणिकी उपमा दी है, यथा *'निज मन फनि मूरति मनि करहू।'* (३३५। ७)

* बधू—१७२१, १७६२, छ०, १७०४। बधून्ह (न्ह बनाया है)—१६६२, को० रा०।

† बन्दी मागध—को० रा०।

(घ) *'गोई'* का भाव कि सर्पको मणि बहुत प्रिय है, इसीसे वह उसे हृदयमें छिपाये है, इसी तरह रानियोंको बहुएँ बहुत प्रिय हैं, इसीसे वे उन्हें हृदयसे लगाकर सोयी हैं।

नोट—१ मणि-सर्प सोते समय चारों ओरसे पिंडी-सी बाँधकर मणिको हृदयमें छिपाये इस तरह बैठता है कि बीचमें फन रहे। वह अपने मणिकी रक्षा प्राणके समान करता है, क्योंकि मणिके निकल जानेसे वह छटपटाकर मर ही जाता है। राजाने जो आज्ञा दी थी कि *'राखेहु नयन पलककी नाईं'* उसका यहाँ प्रतिपालन दिखाया। पलक नेत्रोंको छिपा लेता है, इस तरह वह नेत्रकी सेवा एवं रक्षा करता है, वैसे ही इन्होंने बहुओंको हृदयमें छिपाया, हृदयसे लगाकर लेटी हैं। अ० दी० च० कारका मत है कि बारात श्रीरामनवमीको अयोध्यामें आयी। उस रात्रिमें रानियोंको गारीगान (झुमर-गान) करते साढ़े तीन पहर रात्रि बीत गयी। जब उन्होंने सखियोंसे सुना कि इतनी रात्रि बीत गयी तब रानियोंने बहुओंको उरमें* छिपाकर शयन किया। प्रज्ञानानन्द स्वामीजी कहते हैं कि सोनेकी रीतिसे अनुमान होता है कि जाड़ेके दिन थे। सूर्य मकरमें थे ऐसा मानना उचित है, क्योंकि तब रात्रिमें सोनेके कालमें शरीर **'धनुषि धनुराकारं मकरे कुण्डलाकृतिः'** होता है और फणि भी शरीरको कुण्डलाकार बनाकर ही सोता है।

टिप्पणी—२ *'प्रात पुनीत काल प्रभु जागे।'''* इति। (क) 'प्रातःका' पुनीत काल है अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त है। [दो घण्टा (पाँच घड़ी) रात रहे 'प्रातःकाल' प्रारम्भ होता है।] महान् पुरुषोंके जागनेका यही समय है। *'प्रभु'* अर्थात् श्रीरामजी। (ख) *'अरुनचूड़ बर बोलन लागे'* इति। पहले चरणमें श्रीरामजीका जागना कहकर तब दूसरे चरणमें मुर्गेका बोलना कहनेका भाव कि श्रीरामजी पहले ही जगे, मुर्गे पीछे बोले तात्पर्य यह कि श्रीरामजी स्वतः ज्ञानरूप हैं, उनको कुछ मुर्गेकी बोलीसे प्रातःकालका ज्ञान नहीं हुआ, श्रीरामजीमें अज्ञानका लेश भी नहीं है, यथा—*'राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥ सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिज्ञान बिहाना॥'* (११६। ६) मुर्गेका बोलना सुनकर प्रातःकालका ज्ञान होना जीवका धर्म है, यथा—*'हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥'* (११६। ७) (ग) *'बर बोलन लागे'* इति। *'बर'* से जनाया कि उसकी बोली सुहावनी है। अथवा, मुर्गे दशरथ शब्द बोलते हैं इससे बोलीको *'बर'* कहा। अथवा, बर=बड़ा। जो मुर्गा बड़ा है वही बोलता है, जब जूड़ा निकल आता है तभी बोलना होता है' (इसीसे अरुणचूड़ नाम दिया)। (घ) *'लागे'* बहुवचन देकर जनाया कि बहुत मुर्गे बोलने लगे। (अरुणचूड़—दोहा २२६ देखिये)

टिप्पणी—३ *'बंदि मागधन्हि गुनगन गाए'''* इति। (क) मुर्गोंके बोलनेके पीछे इन्हें लिखकर जनाया कि मुर्गोंके बोलनेसे इन लोगोंने जाना कि प्रातःकाल हो गया, अतः ये बोली सुनते ही आये। *'मागधन्हि'* बहुवचन देकर जनाया कि मागध आदि बहुत-से गुणगायक आये। यथा—*'मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥'* (१। १९४। ६) बंदीजन, मागध, सूत आदिका गुणगान करनेका समय है, अतः वे द्वारपर आकर गुणगान गाने लगे। (ख) *'पुरजन द्वार जोहारन आये'* इति। पुरजनोंको अभी प्रणाम करनेका मौका नहीं है, जब राजा महलसे निकलेंगे, तब प्रणाम करेंगे, इसीसे उनका आना मात्र कहा। ये सब आकर अभी द्वारपर खड़े हैं। बंदी-मागधादि याचकों और पुरवासियोंकी भीड़ द्वारमें लग रही है।

टिप्पणी—४ *'बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता।'''* इति। (क) प्रातःकाल जागनेपर जो कृत्य करते हैं वह बताया। शंभु-गुर-बिप्रपदका स्मरण करके शयन किया था, यथा—*'सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किये नींद बस नयन।'* अत्र उन्हींको जागकर वन्दन किया। यहाँ *'सुर'* शब्दसे 'शंभु' का ग्रहण है। *'बंदि बिप्र ''''''''* ' से पाया गया कि ये सब प्रातःकाल ही श्रीरामजीको दर्शन देनेके लिये महलमें आया करते हैं, यथा—*'प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥'* (२०५। ७) महादेवजीकी मूर्ति रहती है। (ख) *'पाइ असीस मुदित सब भ्राता'* इति। *'सब भ्राता'* कहनेसे पाया कि सब भाई श्रीरामजीसे पहले ही जागे। सबने आके श्रीरामजीको प्रणाम किया। उनके साथ गुरुविप्र आदिको प्रणाम किया है, इसीसे सब भाइयोंको आशीर्वाद मिला। *'मुदित'* कहकर जनाया कि सब भाइयोंको विप्र, गुरु, माता, पिताके वचनमें

विश्वास है, इसीसे प्रसन्न हुए। [इन पाँचोंका सम्बन्ध *'पाइ असीस'* से लगाना अयुक्त होगा। कारण कि भले ही कोई विप्र दर्शन देने आवें तथापि गुरु वसिष्ठ, विश्वामित्र और देवताओंका आना सम्भव नहीं है। इससे इसे प्रातःस्मरणाङ्गभूत मानसिक वन्दन मानना होगा। शयनागारसे बाहर जाकर माताओं और पिताको वन्दनकर आशीर्वाद पाकर प्रसन्न होते थे। इस प्रकार अर्थ करना ठीक होगा। (प० प० प्र०)] (ग) अभी श्रीरामजी द्वारपर नहीं आये, द्वारपर आना आगे लिखते हैं।

जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥ ८॥

दो०—कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥ ३५८॥

अर्थ—माताओंने आदरपूर्वक मुखका दर्शन किया। (तब) राजाके साथ द्वारपर गये॥ ८॥ स्वाभाविक ही पवित्र चारों भाइयोंने सब शौच-क्रिया की। (फिर) पवित्र नदी (श्रीसरयूजी) में स्नानकर प्रातःक्रिया करके चारों भाई पिताजीके पास आये॥ ३५८॥

टिप्पणी—१ (क) *'जननिन्ह'* बहुवचन है। सब माताओंने मुख देखा, वे इसीसे अपना जन्म सफल मानती हैं। यथा—*'आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा।'* (३५७। ७) इसीसे सबने सादर मुखारविन्दका दर्शन किया। (ख) *'सादर बदन निहारे'* कहकर सूचित किया कि सब माताओंके नेत्ररूपी भौंरे और चारों भाइयोंकी मुखरूपी कमलोंकी छबिरूपी मकरन्दका पान कर रही हैं, अर्थात् प्रेमसे मुखकी छबि देख रही हैं। यथा—*'देखि राम मुखपंकज मुनिबर लोचन भृंग। सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥'*(३। ७) श्रीरामजीका मुख कमल है। छबि कमलका मकरंद है, यथा—*'मुख सरोज मकरंद छबि करत मधुप इव पान।'* (२३१) (ख) *'भूपति संग द्वार पगु धारे'* इति। इन शब्दोंसे दोनोंकी प्रधानता रखी। भूपतिके साथ श्रीरामजी आये, इस कथनमें राजाकी प्रधानता हुई और *'द्वार पगु धारे'* इस कथनमें श्रीरामजीकी प्रधानता हुई कि श्रीरामजी द्वारपर आये। पिताकी प्रधानता रखनी उचित है, इसीसे पिताकी प्रधानता कही। द्वारपर आनेमें श्रीरामजीकी प्रधानता कही, क्योंकि द्वारपर सबको श्रीरामजीके दर्शनोंकी चाह है—जैसा आगे कहते हैं—*'देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥'*

टिप्पणी—२ (क) *'कीन्हि सौच सब'* यथा—*'सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥'* (२२७। १) *'सब सौच'* का भाव कि शौच बारह हैं, वे सब किये। (ख) *'सहज सुचि'* कहनेका भाव कि स्वाभाविक ही शुचि होते हुए भी सब शौच करते हैं—इससे जगत्‌को उपदेश देते हैं कि ये कर्म अवश्य करने चाहिये। बड़ेका आचरण जगत्‌में धर्मका सारांश होता है। यथा—*'समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥'*(२। ३२३) [श्रीमद्भागवतमें भी कहा है कि आपका अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये नहीं होता, किंतु मर्त्यलोकके प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये भी होता है। यथा—'**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।**' (भा० ५। १९। ५) (ग) *'सरित पुनीत नहाइ'* कहनेका भाव कि श्रीसरयूजीका माहात्म्य स्मरण करके कि ये अत्यन्त पुनीत हैं, इनकी अमित महिमा है, स्नान किया। यथा—*'दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥'नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥'*(१। ३५) अथवा *'सरित'* कहकर कूप, तड़ाग, बावली आदिका निराकरण किया और *'पुनीत'* कहकर अन्य नदियोंका निराकरण किया। सई, गोमती आदि नदियाँ भी अयोध्याजीकी सीमामें हैं (आजकलकी अयोध्या ही उस समयकी अयोध्या नहीं है। उस समय इसकी सीमा बहुत बड़ी थी)। श्रीसरयूजी पुनीत नदी कहलाती हैं, यथा—*'नदी पुनीत अमित महिमा अति।'* (१। ३५) *'नदी पुनीत सुमानसनंदिनि।'* (१। ३९) तथा यहाँ *'सरित पुनीत'* इत्यादि। (घ) *'प्रात क्रिया'* इति। सन्ध्या, पाठ, प्राणायाम, दान, दर्शन आदि श्रीसरयूजीके किनारे जो मन्दिर या घाटपर जो स्थान बने हुए हैं उनमें किये। (ङ) सब शौच करके नदी-स्नान किया—यह बाह्यशुद्धि है। प्रातक्रिया करना अन्तःशुद्धि है। इस तरह बाह्यान्तर-शुद्धिके

पश्चात् पिताके पास गये। (च) शंका—'पूर्व कहा है कि *'नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए।'* (२२७। १) पर यहाँ नित्यक्रिया करके पिताको प्रणाम नहीं कहा गया?' समाधान यह है कि स्नानके पूर्व पिताको प्रणाम कर चुके हैं *'बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता'* और जनकपुरमें स्नानके पूर्व मुनिके पास नहीं गये और न प्रणाम किया था; इसीसे वहाँ नित्यक्रियाके पश्चात् जाना और प्रणाम करना कहा है। (छ) *'राम प्रतोषी मातु सब कहि बिनीत मृदु बयन'* यह शील है। *'प्रात पुनीत काल प्रभु जागे'* यह सावधानता है। *'बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता'* यह धर्म है। *'भूपति संग द्वार पगु धारे'* बड़ेके पीछे चलना यह कायदा (शिष्टाचार) है। *'कीन्हि सौच…भाइ'* यह नित्यका नियम है।

भूप बिलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायेसु पाई॥१॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभु अवधि अनुमानी॥२॥
पुनि बसिष्ट मुनि कौशिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥३॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥४॥
कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥५॥

अर्थ—राजाने (उन्हें) देखकर हृदयसे लगा लिया। (वे) हर्षित होकर आज्ञा पाकर बैठ गये॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर (उनके दर्शनको) नेत्रोंके लाभकी सीमा अनुमानकर सारी सभा शीतल हो गयी॥२॥ फिर मुनि बसिष्ठ और कौशिकजी (आदि मुनि) आये। (राजाने) मुनियोंको सुन्दर दिव्य आसनोंपर बैठाया॥३॥ (और) पुत्रोंसहित उनका पूजन करके (उनके) चरणोंमें लगे अर्थात् चरणोंपर सिर रखा। श्रीरामजीको देखकर दोनों गुरु अनुरागसे भर गये॥४॥ श्रीवसिष्ठजी धार्मिक इतिहास कहते हैं और रनवाससहित राजा सुनते हैं॥५॥

टिप्पणी—१ (क) *'भूप बिलोकि लिये उर लाई'* इति। हृदयसे लगाया, आशीर्वाद न दिया, क्योंकि आशीर्वाद पहले दे चुके हैं, यथा—*'पाइ असीस मुदित सब भ्राता।'* हृदयमें लगानेका भाव कि चारों भाई स्नान करने गये, इतनी देरका भी वियोग राजा सह न सके, इसीसे जब वे स्नानादिसे निवृत्त होकर आये तब उन्हें हृदयसे लगा लिया, मानो बहुत दिनोंपर मिले हैं, यथा—*'सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥'* (३०८। ४) (ख) *'बैठे हरषि'* भाव कि पिताने हृदयसे लगाया, इससे हर्ष हुआ। इसी तरह जब पिताने आशीर्वाद दिया था तब हर्षित हुए थे, यथा—*'पाइ असीस मुदित सब भ्राता।'* (ग) *'रजायेसु'* भाव यह कि पिताकी आज्ञा सब धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म है, यथा—*'पितु आयसु सब धरमक टीका।'* (२। ५५) अत: आप सदा पिताकी आज्ञाकी चाह रखते हैं। इसीसे आज्ञा पाकर हर्षित हुए। पुन: इससे यह भी दिखाया कि श्रीरामजी पिताका कितना संकोच करते हैं कि बिना आज्ञा बैठते भी नहीं। (घ) यहाँ बैठनेके लिये आसनका देना नहीं कहा गया, क्योंकि इस समय कथा होती है। कथा ऊँचे आसनपर बैठकर न सुननी चाहिये, इसीसे वे साधारण आसनपर बैठ गये। अत: आसनका वर्णन नहीं किया गया।

टिप्पणी—२ (क) *'देखि रामु सब सभा जुड़ानी।…'* इति। भाव कि जबसे श्रीरामजी विश्वामित्रजीके साथ गये तबसे इनका दर्शन न होनेसे सब अवधवासी व्याकुल थे, संतप्त थे, आज उन्हें सभामें बैठे देखकर हृदय शीतल हुआ। यह प्रीतिकी रीति है, यथा—*'रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति की रीति न जाति बखानी॥'* (३०९। १) *'लाभु अवधि अनुमानी'*—भाव कि लोचन मिलनेका लाभ बस इतना ही है, यथा—*'लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥'* (२। १०७) (प० प० प्र० का मत है कि *'जुड़ानी'* का अर्थ 'जुट गयी', 'इकट्ठा हो गयी' लेना ठीक होगा, क्योंकि सभीका संतप्त होना मानना ठीक नहीं है। पर मानसमें 'जुड़ाना' 'शीतल होना'—अर्थमें बराबर आया है। यथा—*'अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।'* (३।८।३), *'राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने।'* (२७७। ५), *'नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।'* (५।५६।९) (ख) *'पुनि बसिष्ट मुनि कौशिकु आए'* इति। *'पुनि'* कहनेका भाव कि जब सब

सभासद और चारों पुत्रोंसहित राजा आकर सभामें बैठ गये तब दोनों मुनि आये। सबके पीछे आनेका भाव यह है कि श्रोता प्रेमी हैं, वक्ताके आनेके पहले ही आ गये जिसमें कथाका कोई अंश छूट न जाय। *'मुनि'* शब्द देहलीदीपक है। श्रीवसिष्ठजी और श्रीविश्वामित्रजी दोनोंका विशेषण है। (ग) *'सुभग आसनन्हि'* अर्थात् दिव्य आसनोंपर; यथा—*'बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस। दिए दिव्य आसनु सबहि"।'* (३२०) *'आसनन्हि'* बहुवचन है, इससे सूचित किया कि दोनों मुनियोंको पृथक्-पृथक् आसनपर बैठाया। (घ) *'मुनि बैठाए'*—*'मुनि'* एकवचन है, परंतु *'आसनन्हि'* और *'बैठाए'* बहुवचन हैं, इनके साहचर्यसे *'मुनि'* भी यहाँ बहुवचन वाचक हो गया। एक मुनि बहुत-से आसनपर एक ही समय नहीं बैठ सकता पर एक आसनपर बहुत-से मुनि बैठ सकते हैं; इसीसे पृथक्-पृथक् आसन बतानेके लिये *''आसनन्हि'* बहुवचन शब्द दिया। (यहाँ *'मुनि'* को 'दीपदेहलीन्यायसे और स्वतन्त्र भी ले सकते हैं। क्योंकि आगे वामदेवजीका भी नाम आया है। वे भी मुनि हैं।)

टिप्पणी—३ *'सुतन्ह समेत पूजि पद लागे ....'* इति। [(क) महलमें रानियाँ और बहुएँ भी थीं, इससे वहाँ पूजनमें वे भी सम्मिलित थीं, यथा—*'बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु। पुनि पुनि बंदत गुर चरन ....॥'* (३५२) यहाँ सभा है। इसलिये पुत्रोंसहित पूजा की।] (ख) *'निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे'* इति। माता और पिताके लिये सब लड़के बराबर हैं, इसीसे माताओंने चारोंका मुखारविन्द देखा और पिताने चारोंको हृदयसे लगाया, यथा—*'जननिन्ह सादर बदन निहारे', 'भूप बिलोकि लिये उर लाई।'* इनके सम्बन्धमें केवल श्रीरामजीको देखना या हृदयमें लगाना नहीं कहते। परंतु सभाके लोग श्रीरामजीको देखकर शीतल हुए और दोनों गुरु भी श्रीरामजीको ही देखकर अनुरागको प्राप्त हुए। कारण यह है कि श्रीरामजीका दर्शन सुखकी सीमा है—*'लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी॥'* (२।१०७) *'चारिउ सीलरूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥'* (१९८। ६) (ग) श्रीरामजीको देखनेका अभिलाष सभीको है, इसीसे देखना सबका कहते हैं, यथा—*'जननिन्ह सादर बदन निहारे।', 'भूप बिलोकि लिये उर लाई।', 'देखि राम सब सभा जुड़ानी', 'निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे', 'जाइ समीप रामछबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥'* (२६४। ४)। श्रीसीताजी जैसे समीपसे देखकर अनुरक्त हो गयी थीं, वैसे ही दोनों गुरु अनुरागमें मग्न हो गये, शरीरमें पुलकावली होने लगी, नेत्रोंमें जल भर आया।

टिप्पणी—४ *'कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा"'* इति। (क) श्रीवसिष्ठजी कुलगुरु हैं। ये बारहों मास कथा सुनाते हैं, यथा—*'बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥'* (७।२६) (ख) *'धरम इतिहासा'* इति। केवल 'धर्म' कहकर सब धर्म सूचित किये। वर्णधर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म, दानधर्म, मोक्षधर्म, स्वामिधर्म, स्त्रियोंके धर्म इत्यादि सब धर्मोंके इतिहास कहते हैं। *'इतिहास'* कहनेका भाव कि धर्मात्माओंके द्वारा धर्मका निरूपण करते हैं। अर्थात् धर्मात्माओंकी कथा कहते हैं। (ग) *'सुनहिं महीसु सहित रनिवासा'* इति। भाव कि वसिष्ठजी स्त्री-पुरुष दोनोंके धर्मोंका वर्णन करते हैं, धर्म सबको प्रिय है, इसीसे रनवाससहित सुनते हैं। [राजाको विशेषकर धर्मका ही प्रयोजन रहता है, इससे धर्मके ही इतिहास कहते हैं और नहीं। इतिहासद्वारा कहनेसे धर्मकी बातें हृदयमें विशेष दृढ़ हो जाती हैं, कथा भी रोचक हो जाती है; अतः इतिहास कहते हैं।]

मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥ ६॥
बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची॥ ७॥
सुनि आनंदु भयेउ सब काहू। राम लषन उर अधिक उछाहू॥ ८॥

दो०—मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस येहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥ ३५९॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीने आनन्दित होकर राजा गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीकी करनीको, जो मुनियोंके मनको भी अगम्य है, बहुत प्रकारसे वर्णन किया॥ ६॥ वामदेवजी बोले कि सब बातें सत्य हैं। (विश्वामित्रजीकी) कीर्ति तीनों लोकोंमें फैली हुई है॥ ७॥ (यह) सुनकर सब किसीको आनन्द हुआ (और) श्रीराम-लक्ष्मणजीके हृदयमें अधिक उत्साह (आनन्द) हुआ॥ ८॥ नित्य ही मङ्गल-मोद-उत्सव होते हैं, इस प्रकार दिन बीतते जा रहे हैं। अयोध्यापुरी आनन्दसे भरकर उमड़ पड़ी। (यह आनन्दकी उमङ्ग) अधिक-से-अधिक बढ़ती जाती है॥ ३५९॥

टिप्पणी—१ (क) धर्मात्माओंके इतिहास कहते-कहते विश्वामित्रजीका प्रसङ्ग आया, इसीसे विश्वामित्रजीकी करनीका वर्णन करने लगे। (ख) *'मुनि मन अगम'*—अर्थात् वहाँतक मुनियोंका मन भी नहीं पहुँच पाता, तनकी तो बात ही क्या। (चाण्डालको इसी देहसे स्वर्गतक पहुँचा दिया, फिर उसके लिये दूसरा स्वर्ग रच दिया। तप करके क्षत्रियसे ब्राह्मण हुए। इत्यादि) *'मुनि मन अगम'* से उनकी करनी बहुत भारी सूचित की, महिमा अतुलित दिखायी। (ग) *'गाधिसुत करनी'* इति। भाव कि प्रथम ये राजपुत्र थे, अपनी करनीसे ब्राह्मण हुए। (घ) *'मुदित'* इति। विश्वामित्रजी और वसिष्ठजीसे वैर था। विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीके सौ पुत्र अपने तपोबलसे मार डाले! यह करनी भी प्रसन्नतापूर्वक विस्तारसे कही। तात्पर्य कि वसिष्ठजीके हृदयमें न तो अपने पुत्रोंके मरनेका और न विश्वामित्रजीके मारनेका किञ्चित् भी दुःख है। इनके अन्तःकरणमें किञ्चित् भी वैरभाव नहीं है; इसीसे सारी कथा आनन्दित होकर वर्णन की। (ङ) *'बिपुल बिधि बरनी'* इति। बहुत विधि यह कि—जैसे वसिष्ठजीसे विश्वामित्रजीकी लड़ाई हुई; जैसे विश्वामित्रजीने हारकर तप किया; जैसे तपस्यामें विघ्न हुआ; जैसे भारी तप करके ब्राह्मण हुए; जैसे त्रिशंकुको स्वर्ग पहुँचाया; जैसे दूसरे ब्रह्माण्डकी रचना करने लगे; इत्यादि *'बिपुल बिधि'* की करनी कही। [मानसमें विश्वामित्रजीकी कथा वसिष्ठजीने कही है और वाल्मीकीयमें शतानन्दजीने कही वह भी जनकपुरमें केवल श्रीराम-लक्ष्मणजीसे।]

श्रीविश्वामित्रजीकी कथा

वाल्मीकीय रामायण (सर्ग ५१ श्लोक १७ से सर्ग ६५ श्लोक २९ तक) में श्रीशतानन्दजी महाराजने श्रीरामचन्द्रजीसे श्रीविश्वामित्रजीकी कथा कही है। एक बार राजा विश्वामित्र अक्षौहिणी दल लेकर पृथ्वीका परिभ्रमण करने निकले। नगरों, नदियों, पर्वतों, जंगलों और आश्रमोंको देखते हुए वे वसिष्ठजीके आश्रममें पहुँचे। कुशलप्रश्न करनेके पश्चात् मुनिने राजाको अतिथि-सत्कार ग्रहण करनेको निमन्त्रित किया और अपनी कपिला गऊको बुलाकर सबकी रुचिके अनुसार भोजनकी वस्तु एकत्र करके उनका सत्कार करनेकी आज्ञा दी। सत्कृत होनेपर प्रसन्नतापूर्वक राजाने कोटि गऊ अलंकृत तथा और भी अनेक रत्न आदिका लालच देकर कहा कि यह कपिला गऊ हमको दे दो। मुनिने कहा कि मैं इसे किसी प्रकार न दूँगा, यह मेरा धन है, सर्वस्व है, जीवन है।—'**एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम्। एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम्॥**' (१। ५३। २३) राजा उसे बलपूर्वक ले चले, वह छुड़ाकर मुनिके पास आ रोने लगी। मुनिने कहा कि यह राजा है, बलवान् है, क्षत्रिय है, मेरे बल नहीं। तब गऊ आशय समझकर बोली मुझे आज्ञा हो—आज्ञा पाते ही भयंकर सेना उत्पन्न करके उसने सब सेना नष्ट कर दी। तब विश्वामित्रके सौ पुत्रोंने क्रोधमें भरकर वसिष्ठजीपर आक्रमण किया। मुनिकी एक हुंकारसे राजाके सौ पुत्र और घोड़े-रथ-सेना सब भस्म हो गये। राजा पङ्ख कटे पक्षीके समान अकेला रह गया। उसको वैराग्य हुआ। राज्य एक पुत्रको देकर तप करके उसने शिवजीको प्रसन्न कर वर माँग लिया कि 'अङ्गोपाङ्ग मन्त्र तथा रहस्यके साथ धनुर्वेद आप मुझे दें। देव-दानव-महर्षि-गन्धर्वादि सभीके जो कुछ अस्त्र हों सब मुझे मालूम हो जायँ। इन्हें पाकर अभिमानसे राजाने मुनिके आश्रममें जा उसे क्षणभरमें ऊसरके समान शून्य कर दिया। ऋषियोंको भयभीत देख मुनिने अपना दण्ड उठाया कि इसे अभी भस्म किये देता हूँ। और राजाको ललकारा। राजाकी समस्त विद्या ब्रह्मदण्डके सामने कुछ काम न दे सकी। समस्त अस्त्रोंके व्यर्थ हो जानेपर राजाने ब्रह्मास्त्र चलाया, उसे भी ब्राह्मतेज ब्रह्मदण्डसे मुनिने शान्त कर दिया। वसिष्ठजीके प्रत्येक रोमकूपसे किरणोंके

समान अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं, ब्रह्मदण्ड उनके हाथमें कालाग्निके समान प्रज्वलित था। मुनियोंने उनकी स्तुतिकर विनय की कि आप अपना तेज अपने तेजसे शान्त करें और अपना अस्त्र हटाइये, प्राणिमात्र उससे पीड़ित हो रहे हैं। उनकी विनय सुनकर उन्होंने दण्डको शान्त किया। पराजित राजा लंबी साँस भरकर अपनेको धिक्कारने लगा '**धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।**' (१। ५६। २३) और ब्रह्मतेजकी प्राप्तिके लिये तपस्या करने चले। कठिन तपस्या की; ब्रह्माजीने आकर कहा कि आजसे तुम्हें हम सब राजर्षि समझने लगे। एक बारकी तपस्या त्रिशंकुने ले ली तब पुष्कर क्षेत्रमें जा तपस्या करने लगे। वहाँ ऋचीकके मँझले पुत्र शुन:शेपने अपने मामा विश्वामित्रको तप करते देख उनकी शरण ली कि अम्बरीषके यज्ञमें बलि दिये जानेसे बचाइये। एक तपस्या इसमें गयी। (सर्ग ६२) एक हजार वर्ष तपस्या करनेपर ब्रह्माजीने आकर तपस्याका फलस्वरूप इनको 'ऋषि' पद दिया। फिर कठिन तप करने लगे। बहुत समय बीतनेपर मेनका पुष्कर क्षेत्रमें स्नान करने आयी, उसको देख ये कामके वश हो गये। दस वर्ष उसके साथ रहे। फिर ग्लानि होनेपर उसका त्यागकर उत्तर पर्वतपर कौशिकीके तटपर जा कठोर तपस्या करने लगे। कठिन तप देख देवताओंकी प्रार्थनापर ब्रह्माजीने इनको 'महर्षि' पद दिया और कहा कि ब्रह्मर्षि पद पानेके लिये इन्द्रियोंको जीतो। तब महर्षि विश्वामित्रजी निरवलम्ब वायुका आधार ले कठिन तप करने लगे। इन्द्र डरा और रम्भाको बुला उसने विघ्न करने भेजा। (सर्ग ६३) महर्षि जान गये, पर क्रोध न रोक सके, रम्भाको शाप दिया कि पत्थर हो जा। क्रोधवश होनेसे तपस्या भङ्ग हो गयी। इससे महर्षिका मन अशान्त हुआ। अब उन्होंने निश्चय किया कि मैं सौ वर्षतक श्वास ही न लूँगा, इन्द्रियोंको वशमें करके अपनेको सुखा डालूँगा....। ऐसा दृढ़ निश्चयकर वे पूर्व दिशामें जा एक हजार वर्षतक मौनकी प्रतिज्ञा कर घोर तप करने लगे—समस्त विघ्नोंको जीता। व्रत पूर्ण होनेपर ज्यों ही अन्न भोजन करना चाहा, इन्द्रने विप्ररूप धर उनके पास आ उस अन्नको माँग लिया, उन्होंने दे दिया और पुन: श्वास खींचकर तपस्या करने लगे। मस्तकसे धुआँ और फिर अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं। सब देवता डरकर ब्रह्माजीके पास दौड़े कि शीघ्र उनके मनोरथको पूर्ण कीजिये, अब उनमें कोई विकार नहीं है, उनके तेजके आगे लोगोंका तेज मन्द पड़ गया' ब्रह्माजीने आकर उन्हें ब्रह्मर्षि पद दिया और फिर वसिष्ठजीसे भी उनकी मित्रता करा दी और उनसे भी उनको ब्रह्मर्षि कहला दिया। (सर्ग ६४-६५) (☞ आजकलके अभिमानी संहारक विज्ञानियोंको विश्वामित्रके अस्त्र-शस्त्रोंको पढ़ना चाहिये, जिससे ज्ञात होगा कि हमारा देश अस्त्र-शस्त्र-विद्यामें कितना बढ़ा-चढ़ा था।)

टिप्पणी—२ (क) *'बोले बामदेव सब साँची'* इति। श्रीवसिष्ठजीने श्रीविश्वामित्रजीकी भारी करनीका वर्णन किया। (बहुत भारी महत्त्व-कथनसे झूठकी सम्भावना है) सुनकर लोगोंको विश्वास न होगा, सबको झूठ ही लगेगी, अत: (संदेहके निवारणार्थ) वामदेवजीने (श्रीवसिष्ठजीका समर्थन करते हुए) कहा कि यह सब बातें सत्य हैं, तीनों लोकोंमें इनकी सुन्दर कीर्ति फैली हुई है। (ख) *'कीरति कलित'*—*'कलित'* कहकर जनाया कि उनकी कीर्ति चन्द्रमाके समान उदय हो रही है। *'लोक तिहुँ माची'* कहनेका भाव कि चन्द्रमा तो एक ही लोकमें उदय होकर उसीको प्रकाशित करता है और इनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें उदय होकर प्रकाशमान है। आशय यह कि श्रीविश्वामित्रजीकी कीर्ति और उनकी करनीको तीनों लोक जानता है। (बैजनाथजी लिखते हैं कि 'वह सुन्दर कीर्ति वाल्मीकिरचित रामायणद्वारा तीनों लोकोंमें फैली है। सुर-नर-नाग उनकी कीर्तिका गान कर रहे हैं')। (ग) *'सुनि आनंदु भयेउ सब काहू'* वामदेवजीने जब साक्षी दी, वसिष्ठजीका समर्थन किया, तब सबको विश्वास हुआ कि यह प्रशंसा नहीं की किंतु सब सत्य-ही-सत्य कहा है। (यह अर्थवाद नहीं है—रा० प्र०) सत्य समझकर सबको आनन्द हुआ। पुन: सबको यह समझकर आनन्द हुआ कि हमें घर बैठे महान् पुरुषके दर्शन हुए, हम बड़े सुकृती हैं, हमारे बड़े भाग्य हैं। (घ) *'राम लषन उर अधिक उछाहू'* इति। श्रीविश्वामित्रजी श्रीराम-लक्ष्मणजीके गुरु हैं, इसीसे गुरुका भारी महत्त्व सुनकर उनको अत्यन्त उत्साह हुआ। *'अधिक'* का भाव कि औरोंको 'आनन्द' हुआ

और इनको सबसे अधिक आनन्द हुआ। [सबको आनन्द हुआ और इनको 'अति आनंद' हुआ। एक तो गुरुकी बड़ाई सुनी इससे, दूसरे सुना था कि श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजीमें परस्पर विरोध था इससे शंकित थे दोनों गुरु हैं, दोनोंकी सेवकाई कैसे बनेगी, एककी सेवासे दूसरेको दुःख होगा। सो वसिष्ठजीके मुखसे सुननेसे वह शंका दूर हो गयी। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—३ *'मंगल मोद उछाह नित…'* इति। (क) मङ्गलका वर्णन, यथा—*'बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।'* (३४४), *'मंगल कलस सजहिं सब रानी।'* (३४६। ७), *'मुदित करहिं कल मंगल गाना।'* (३४६। ८), *'मंगल रचना रची बनाई।'* (२९६। ६) मङ्गल कलश, मङ्गल द्रव्य, मङ्गल गान और मङ्गल रचना यह सब मङ्गल है। (ख) मोद (अर्थात् हर्ष, आनन्द। *'मुद हर्षे'*) का वर्णन, यथा—*'आरति करहिं मुदित पुरनारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥'* (३४८। ७), *'भरी प्रमोद मातु सब सोहीं।'* (३५०। ५), *'मुदित महीपति सहित समाजा।'* (३४७। ८), *'बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुख न समाहीं॥'* (३४८। ४) (ग) *'उछाह'* का वर्णन, यथा—*'जनु उछाहु सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए'॥* (३४५। ३) (घ) *'नित'* कहनेका भाव कि हमने एक दिनके मङ्गल, मोद और उत्साहका वर्णन किया है, इसी प्रकारसे नित्य होता है, प्रत्येक दिन इसी प्रकार बीतता है। (ङ) *'उमगी अवध'*—भाव कि नित्यप्रति अयोध्यापुरी मङ्गल-मोद-उछाहसे भरती है। इसीसे उमगी (मङ्गलादिकी बाढ़ आ गयी) यह उमङ्ग नित्यप्रति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

सुदिन सोधि* कल† कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥ १॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं॥ २॥
बिश्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम ‡ बिनय बस रहहीं॥ ३॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥ ४॥

अर्थ—शुभ दिन शोधकर सुन्दर कङ्कण छोड़े गये। मङ्गल, मोद और विनोद कुछ थोड़े नहीं हुए॥ १॥ देवता नित्य नया सुख देखकर ललचाते हैं और ब्रह्माजीसे अवधपुरीमें जन्म माँगते हैं॥ २॥ विश्वामित्रजी नित्य ही चलना (बिदा होना) चाहते हैं (पर) श्रीरामचन्द्रजीके सप्रेम विनतीके वश रह जाते हैं॥ ३॥ दिनोंदिन राजाका सौगुना प्रेम देखकर महामुनिराज सराहते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'सुदिन सोधि कल कंकन छोरे ………'* इति। [(क) 'कंकण' एक धागा है, जिसमें सरसों आदिकी पुटली पीले कपड़ेमें बाँधकर एक लोहेके छल्लेके साथ विवाहके समयसे पहले दूलह वा दुलहिनके हाथमें रक्षार्थ बाँधते हैं। विवाहमें देशाचार-अनुसार चोकर, सरसों, अजवायन आदिकी पीले कपड़ेमें नौ पोटलियाँ लाल-पीले तागेसे बाँधते हैं। एक तो लोहेके छल्लेके साथ दूलहके हाथमें बाँधते हैं। शेष आठ मूसल, चक्की, ओखली, पीढ़ा-हरिस, लोढ़ा, कलश आदिमें बाँधी जाती है। कंकण छोड़ना भारी उत्सव है। विवाहके पश्चात् बारात लौटनेपर शुभ मुहूर्त विचारकर कंकण छोड़नेकी रीति की जाती है] कंकण छोड़े गये अर्थात् माईं सिराई गयीं। माईं (छोटे-छोटे पुए जिनसे मातृका-पूजा होती है) शुभ मुहूर्तमें सिरायी जाती हैं; इसीसे *'सुदिन'* का विचारना कहा। (ख) प्रथम लिखा कि *'मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस येहि भाँति'* और अब कहते हैं कि *'सुदिन सोधि कल कंकन छोरे'*; इससे पाया गया कि बहुत दिन बीत जानेपर कंकण छोड़नेका मुहूर्त बना। *'सोधि'* कहनेका भाव कि इसमें विचार करना पड़ता है कि भद्रा न हो, चित्रा, विशाखा, शततारका, अश्विनी इत्यादि नक्षत्र न हों। (बैजनाथजी लिखते हैं कि माघ कृष्ण सप्तमी गुरुवार हस्त नक्षत्रमें कंकण खोले गये) (ग) कंकण बहुत हैं—कलशका, मगरोहनिका, पीढ़ेका, हाथका, माईके पात्रका। इसीसे यहाँ *'कंकन'* कहा। हाथका कंकण नहीं कहा। (घ) *'कल'*

* साधि—छ०। † कर—को० रा०। ‡ सनेह—ना० प्र०, १७०४।

देहलीदीपक है। सुदिन सुन्दर है और कंकण भी सुन्दर हैं। कंकण जनकपुरमें बाँधे गये हैं (क्योंकि दूलह श्रीराम और श्रीलक्ष्मणजी वहीं थे। श्रीभरत-शत्रुघ्नजीके विवाहका भी वहीं निश्चय हुआ, इससे उनके भी कंकण वहीं बाँधे गये)। जनकपुरकी सब रचना विचित्र है, इसीसे कंकण भी विचित्र हैं। (ङ) *'मंगल मोद बिनोद न थोरे'* इति। अर्थात् बड़े मङ्गल-गान इत्यादि, बड़े हर्ष और बड़े विनोदके साथ कंकण छोड़नेकी रीति हुई। इसमें स्त्रियाँ सब मङ्गलद्रव्य लिये हुए गाती हैं, पुरुषोंके ऊपर जल छोड़ती हैं। (प्र० सं० में हमने लिखा था कि स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरेपर जल छिड़कती हैं यह विनोद है।) बड़ी हँसी होती है, इसीसे विनोद है। बड़ा हर्ष (आनन्द) होता है। कविने ये सब बातें *'मंगल मोद बिनोद'* से सूचित कर दीं। कंकण छोड़नेपर विवाहोत्सवकी परिसमाप्ति होती है। जबतक कंकण नहीं छोड़े जाते तबतक वधू-वरोंमें लक्ष्मी-नारायणका निवास होता है। (प० प० प्र०)

टिप्पणी—२ *'नित नव सुख सुर देखि'* इति। (क) *'नित नव सुख'* प्रथम कह चुके हैं, यथा—*मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस येहि भाँति॥'* (३४१) (ख) *'सुर देखि सिहाहीं'* इति। भाव कि देवता सुखके भोक्ता हैं। देवताओंका सुख सबसे अधिक है, परंतु श्रीअयोध्यापुरीका सुख उससे कहीं अधिक है, इसीसे देवता सिहाते हैं (ललचाते हैं कि यह सुख हमको भी मिलता)। अवधवासियोंको बड़ा सुख है, यह सुख हमको नहीं है यह सोचना (और उसकी चाह करते हुए प्रशंसा करना) 'सिहाना' कहलाता है (ग) *'अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं'* इति। अवधमें जन्म चाहते हैं, क्योंकि बिना अवधमें जन्म हुए अवधके सुखके भोक्ता नहीं हो सकते। 'विधि' से जन्म माँगनेका भाव कि कर्मसे (कर्मानुसार) शरीर मिलता है, यथा—*'जेहि जेहि जोनि कर्मबस भ्रमहीं।'*, *'जेहि जोनि जनमौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥'* (४। १०) और, कर्मकी गति ब्रह्मा जानते हैं, इसीसे वे जन्म देते हैं, यथा—*'कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥'* (२। २८२) अतः विधिसे माँगते हैं। (घ) शंका—देवता अपने अंशसे देह धारण करके श्रीअयोध्याजीमें अवतार क्यों नहीं ले लेते जैसे वानर होकर प्रकट हुए थे, यथा—*'बनचर देह धरी छिति माहीं॥'* (१८८। ३) विधातासे माँगनेका कौन प्रयोजन? समाधान यह है कि उस समय ब्रह्माकी आज्ञासे अवतार लिया था, यथा—*'जो कछु आयेसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥'* (१८२। २)

टिप्पणी—३ *'विश्वामित्र चलन नित चहहीं।'* इति। (क) शंका—जिस सुखके लिये देवता श्रीअयोध्यापुरीमें जन्मकी याचना करते हैं, उस अयोध्यापुरीसे विश्वामित्रजी क्यों नित्य चलना चाहते हैं? (श्रीरामदर्शन और श्रीअवधका सुख छोड़कर वे क्यों वनको जाना चाहते हैं?—प्र० सं०) समाधान—देवता इन्द्रियोंका सुख चाहते हैं, उनका प्रेम विषयसुखभोगहीमें रहता है, यथा—*'विषय भोगपर प्रीति सदाई॥'* (७। ११८। १५) सुख भोगनेके लिये ही वे अवधमें जन्म माँगते हैं। विश्वामित्रजी महामुनिराज हैं। मुनिलोग विषयसुख नहीं चाहते, इसीसे विश्वामित्र नित्य ही चलना चाहते हैं। पुनः विश्वामित्रजीके चलनेका दूसरा भाव यह है कि व्यवहारकी मर्यादा भी रखनी ही है। व्यवहारमें ऐसा ही किया जाता है और ऐसा ही करना चाहिये। विवाहके पश्चात् सभी पाहुन (मेहमान, न्योतहारी, विवाहमें आये हुए लोग) बिदा होते हैं, वैसे ही ये भी बिदा हो रहे हैं। [अथवा, जिस भजनसे श्रीरामजी ऐसे शिष्य मिले, उसीके निमित्त चलना चाहते हैं। (प्र० सं०)। पुनः भाव कि क्षत्रियोंके आश्रित होकर रहना निस्पृही विप्रोंके लिये दूषण है। दूसरे, मुनिके आश्रित शिष्य भी बहुत हैं, उनके कल्याणका नैतिक उत्तरदायित्व भी सिरपर है। फिर अयोध्याके समान राजधानीमें निवास करनेसे व्यावहारिक उपाधि भी बढ़ती है, मनचाहा भजन नहीं होता। अति परिचयसे प्रेम भी न्यून हो जाता है, विरहसे प्रेम बढ़ता है। (प० प० प्र०)] (ख) *'राम सप्रेम बिनय बस रहहीं'* इति। *'सप्रेम'* का भाव कि प्रेम बन्धन है, यथा—**'बन्धनानि बहून्यपि सन्ति प्रेमरज्जुमिह बन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोऽपि षडंङ्घ्रिः निष्क्रियो भवति पंकजबद्धः।'** (यथा—*'जनु सनेहरजु बँधे बराती॥'* (३३२। ५) देखिये) देवता भी प्रेम-विनयके वश हो जाते हैं, यथा—*'बिनय प्रेम बस भई भवानी॥'* (२३६। ५) विश्वामित्रजी श्रीरामजीके सप्रेम विनयके वश हो गये इसीसे *'बस रहहीं'* कहा।

टिप्पणी—४ (क)—*'दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ'* इति। विश्वामित्रजीमें जो श्रीरामजीका प्रेम है उसे कहकर अब राजाका प्रेम कहते हैं। *'दिन दिन'* कहनेका भाव कि यदि ऐसा न कहते तो राजाका भाव श्रीरामजीके भावसे सौगुना समझा जाता, क्योंकि श्रीरामजीका भाव प्रथम कहके (तुरत उसके पीछे) राजाका सौगुण भाव कहा; इसीसे *'दिन दिन सय गुन भाऊ'* कहा। तात्पर्य यह कि अपना भाव अपने ही भावसे सौगुना बढ़ता है। यहाँ राजाकी अपेक्षा श्रीरामजीका भाव अधिक दिखाते हैं। राजाके भावकी मिति (दिन-दिन, सौ गुन) लिखते हैं और रामजीके भावकी मिति नहीं लिखते। मिति न लिखकर इनके प्रेमको अमित जनाया। (ख) *'देखि सराह'*—भाव कि नित्यप्रति सौगुना बढ़ता है, इससे सराहने योग्य है; अतः सराहते हैं।

माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥ ५॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥ ६॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥ ७॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥ ८॥

अर्थ—(अन्तिम) बिदा माँगते समय राजा प्रेममें मग्न होकर पुत्रोंसहित (मुनिके) आगे खड़े हो गये (और बोले—)॥ ५॥ हे नाथ! (यह) सब सम्पदा आपकी है। स्त्री और पुत्रोंसहित मैं (आपका) सेवक हूँ॥ ६॥ सदा लड़कोंपर दया-अनुग्रह करते रहियेगा और, हे मुनि! मुझे भी दर्शन देते रहियेगा॥ ७॥ ऐसा कहकर राजा पुत्रों और रानियोंसहित (मुनिके) चरणोंपर पड़ गये, उनके मुखसे वचन नहीं निकलते॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'माँगत बिदा राउ अनुरागे ....'* इति। (क) श्रीरामजीके प्रेमवश रहना और राजासे बिदा माँगना कहा। क्योंकि रामजीके बिदा कर देनेसे मुनि बिदा नहीं हो सकते (जबतक राजा न बिदा करें, क्योंकि घरके मुखिया राजा हैं), हाँ, उनके रखनेसे रह सकते हैं। इसीसे श्रीरामजीका रखना लिखा और राजासे बिदा माँगना कहा। (ख) *'माँगत बिदा'*—यह अन्तिम बिदाकी माँग है। बिदा होनेकी माँग तो नित्य ही होती थी, पर अब आगे नहीं ठहरेंगे, इस निश्चयसे जब बिदा माँगी तब। (ग) *'अनुरागे'* से जनाया कि नेत्रोंमें जल भर आया, कण्ठ गद्गद हो गया इत्यादि। बिदा माँगनेपर *'अनुरागे'* कहनेका भाव कि वियोगके समय यह समझकर कि अब साथ छूटने ही चाहता है अनुराग बढ़ गया। (घ)—*'सुतन्ह समेत'* यहाँ स्त्रियोंको नहीं कहा, परंतु पुत्रों और स्त्रियोंसमेत अर्थमें लगा लेना चाहिये, क्योंकि आगे उनका भी साथ होना लिखते हैं (यह ग्रन्थकारकी शैली है। आगे लिखते हैं। इससे यहाँ नहीं लिखा)। यथा—*'मैं सेवकु समेत सुत नारी'*, *'अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन.....'*। (ङ) *'ठाढ़ भे आगे'*—आगे खड़े होनेका भाव यह कि हम सब तुम्हारे सेवक हैं, जैसा आगे कहते हैं।

टिप्पणी—२ *'नाथ सकल संपदा तुम्हारी.....'* इति। (क) *'सकल संपदा तुम्हारी'* अर्थात् इसे अपनी जानिये-मानिये, जो काम पड़े उसमें इसे खर्च कीजिये। मैं सेवकसमेत सुतनारी अर्थात् हमें परिवारसहित अपना सेवक जानिये, सेवकका जो काम पड़े उसके सेवाकी हमें आज्ञा दी जाय। (ख) सब सम्पत्ति समर्पण करके स्वयं परिवारसहित सेवक बने, यह आत्मसमर्पण भक्ति है। यथा—*'देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥'* (२। ८८) जो बात राजा मुझसे कह रहे हैं, उसे उन्होंने तनसे किया भी है, यथा—*'भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृप रनिवासू॥'* (३५२। ७)

टिप्पणी—३ *'करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।.....'* इति। (क) महात्माओंके छोहसे मंगल कल्याण होता है। सदा छोह रखनेसे सदा कल्याण होता है; इसीसे सब कोई *'सदा छोह'* माँगता है, यथा—*'कुटिल कर्म लै जाहि मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआईं। तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ अंड की नाईं॥'* (विनय० १०३) (ख) *'दरसनु देत रहब'*—*'रहब'* रहियेगा, इस शब्दसे 'सदा देते रहियेगा' यह भावार्थ पाया गया। 'दर्शन

देते रहियेगा' से स्पष्ट किया कि जैसे लड़कोंपर सदा छोह रखियेगा वैसे ही सदा मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। (ग) राजा मुनिके तन और मनकी याचना करते हैं। मनसे लड़कोंपर छोह कीजिये और तनसे मुझे दर्शन देते रहिये। लड़कोंपर छोह करना मुख्य है, इसीसे उसे पहले माँगते हैं। 'मुनिमोहू'-'मोहू' कहकर अपनेको दर्शन देनेकी बात गौण रखी, क्योंकि लड़कोंपर छोह करनेसे सब कल्याण हो चुका, केवल दर्शन रहा सो उनके लिये याचना करते हैं।

टिप्पणी—४ *'अस कहि राउ······'* इति। (क) चरणोंपर पड़नेमें राजा मुख्य हैं, इसीसे *'परेउ'* एकवचन कहते हैं। जो रानियाँ और पुत्र भी मुख्य होते तो *'परे चरन'* ऐसा कहते। *'मुख आव न बानी'* कहकर सूचित किया कि वे कुछ और कहते, परन्तु मुखसे वाणी नहीं निकलती, राजा प्रेमकी दशाको प्राप्त हैं। (ख) राजाके मन, वचन, तनकी भक्ति दिखाते हैं। *'माँगत बिदा राउ अनुरागे'* यह मनकी भक्ति है, क्योंकि अनुराग मनमें होता है। *'नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥'* यह वचनकी भक्ति है; क्योंकि वचनसे कहा है और, *'राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन······'* यह तनकी भक्ति है, तन चरणपर पड़ा है।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥ ९॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयेसु पाइ फिरे पहुँचाई॥१०॥
दो०—रामरूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहि मन मुदित गाधिकुलचंदु॥३६०॥

अर्थ—ब्राह्मण (श्रीविश्वामित्रजी) ने बहुत प्रकारके आशीर्वाद दिये और चल पड़े। प्रीतिकी रीति कही नहीं जाती॥ ९॥ श्रीरामजी सब भाइयोंको संगमें लेकर प्रेमसहित उनको पहुँचाकर आज्ञा पाकर लौटे॥ १०॥ राजा गाधिके कुलके चन्द्रमा (श्रीविश्वामित्रजी) बड़े ही हर्षके साथ मन-ही-मन श्रीरामजीके रूप, दशरथ महाराजकी भक्ति, ब्याहके उत्सवके आनन्द (वा ब्याह, उत्साह और आनन्द) को सराहते जा रहे हैं॥ ३६०॥

टिप्पणी—१ *'दीन्हि असीस बिप्र·····'* इति। [(क) आशीर्वाद देना विप्रका काम है, अतः यहाँ *'बिप्र'* शब्द दिया।] *'बहु भाँती'* इति। बहुत प्रकारके आशीर्वाद देनेका भाव कि चरणोंपर पड़नेवाले बहुत लोग हैं—राजा, चारों पुत्र और रानियाँ। इसीसे बहुत भाँतिके आशीर्वाद देना पड़ा। राजाको ऐश्वर्यमान होनेका आशीर्वाद दिया, क्योंकि राजाने सम्पदा अर्पण की थी। पुत्रोंको चिरंजीव और रानियोंको सावित्री होनेका आशीर्वाद दिया। (ख)—*'चले'* इति। 'आसिष देकर चल पड़े', कहनेका भाव कि यद्यपि राजाने मुनिको सब सम्पदा अर्पण की—*'नाथ सकल संपदा तुम्हारी'*, तथापि मुनिने कुछ भी न लिया, क्योंकि विरक्त हैं। इसी प्रकार वसिष्ठजीको सब सम्पदा अर्पण की गयी, यथा—*'बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें। सुत संपदा राखि सब आगें॥'* (३५३। १) किंतु उन्होंने कुछ न लिया, केवल अपना नेग माँगकर लिया, क्योंकि पुरोहित हैं, उनका नेग लेना उचित है। (ग) *'न प्रीति रीति कहि जाती'* इति। अर्थात् राजा और विश्वामित्रजीने जितना परस्पर प्रीतिका व्यवहार किया उतना कहते नहीं बनता। अन्तःकरणकी प्रीति कैसे कहते बने—*'कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥'* (२। २४१) राजाका प्रेम (जो मुनिप्रति है वह) कह आये, महामुनिने उनको पहुँचाने चलने न दिया यह मुनिका प्रेम राजाके प्रति है। यही सब प्रीतिकी रीति है।

टिप्पणी—२ *'रामु सप्रेम संग सब भाई।·····'* इति। (क) *'सप्रेम'* कहनेका भाव कि श्रीरामजी प्रेमके मारे फिरते नहीं, बड़ी दूरतक पहुँचाने चले गये। (जैसे जनकजी प्रेमके मारे फिरते न थे) यथा—*'बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं॥ पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥'* (३४०। ४-५) (ख) *'संग सब भाई'*—भाइयोंसहित पहुँचाने गये, इस प्रकार मुनिका अत्यन्त आदर किया। श्रीरामजी भाइयोंसहित पहुँचाने गये, इस कथनसे सूचित होता है कि मुनिने महाराजको अत्यन्त वृद्ध समझकर पहुँचानेके लिये चलने नहीं दिया (यह मुनिकी प्रीति दिखायी)। (ग) *'आयेसु पाइ*

फिरे पहुँचाई' इति। यहाँ आयसु पाना प्रथम कहते हैं और पहुँचाना पीछे। ऐसा लिखकर जनाते हैं कि विश्वामित्रजीने थोड़ी ही दूरपर श्रीरामजीको लौटनेकी आज्ञा दी, परंतु वे न फिरे, बहुत दूरतक पहुँचाकर तब फिरे। यह सेवकका धर्म है कि वह गुरुजीकी सब आज्ञा माने, पर सेवा करनेमें आज्ञा न माने। यथा—*'बार बार मुनि अज्ञा दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥'''''* *'पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जल जाता॥'* (१। २२६)

टिप्पणी—३ *'रामरूपु भूपति भगति''''''''''* इति। (क) श्रीरामजी दूरतक पहुँचाकर तुरत अभी फिरे हैं इससे श्रीरामरूप हृदयमें समा रहा है; इसीसे रामरूपको प्रथम कहते हैं। *'भूपति भगति'*, यथा—*'दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥'* वहाँ बचनसे सराहते थे और यहाँ मन-ही-मन सराहते हैं। *'मनहि मन'* सराहनेका भाव कि श्रीरामरूप, भूपति-भक्ति और ब्याहके उछाहका आनन्द तीनों अकथ्य हैं। अथवा, मुनिके साथ इस समय कोई दूसरा नहीं है जिससे कहें, इससे मन-ही-मन सराहते हैं। *'मनहि मन'* —यह गहोरादेशकी बोली है। (यह मुहावरा है। इसका अर्थ है—हृदयमें चुपचाप, बिना कुछ कहे।) (ख) *'रामरूपु भूपति भगति''''''''* से यह भी जनाया कि यहाँके कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी सराहना करते हैं। रामका रूप ज्ञान है, भूपतिकी भक्ति उपासना है और ब्याह-उछाह कर्म है। सराहते हैं कि ऐसे कर्म, ज्ञान और उपासना त्रैलोक्यमें नहीं हैं। श्रीरामजीका-सा रूप नहीं है, यथा—*'सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥'* (२२०। ६) *'नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥ हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥'* (३। १९) दशरथजीकी-सी भक्ति नहीं है, यथा—*'तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देबी॥ सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयेउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥'* (१। २९४) श्रीरामजीका-सा विवाह नहीं, यथा—*'प्रभु बिबाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥'* (३६१। ६) (ग) *'मुदित'* इति। जब श्रीरामजी मुनिको पहुँचाकर लौट गये तब उनके रूपको मुनि मनमें सराहने लगे अर्थात् मनमें उनके रूपको ले आये; इसीसे मुदित हुए। ☞ऐसे ही जो श्रीरामजीको हृदयमें लाये वे मुदित हुए हैं, यथा—*'आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥'* (३५१। ५) *'उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥'* (३५३। ३) तथा यहाँ *'जात सराहत मनहि मन मुदित''''''''* पुनः भाव कि श्रीरामरूपसे मुदित हैं, भूपतिकी भक्ति और ब्याह-उछाह-आनन्दसे मुदित हैं—ये तीनों ही मुदके दाता हैं। (घ)—*'गाधिकुलचंदु'* इति। भाव कि चन्द्रमा तापको हरता है और विश्वामित्रजीने श्रीरामजीके रूप और लीलाका स्मरणकर कुलके तापको हर लिया और उसे प्रकाशित कर दिया। अथवा, विश्वामित्रजी चन्द्रमा हैं और चन्द्रमा श्रीरामजीका मन है, तो रामजीके रूपको मन-ही-मन सराहते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे श्रीरामजीका शुद्ध मन श्रीरामजीको भजता है वैसे ही शुद्ध मनसे विश्वामित्रजी श्रीरामजीको भजते हैं।

पंजाबीजी—*'गाधिकुलचंदु'* विशेषणका आशय यह है कि मुनीश्वर विचारते हैं कि 'हमारा पिता भी बड़ा भारी राजा था और हम उसके ज्येष्ठ पुत्र थे। हमने वहाँ भी सन्तसेवा और विवाहादिककी रचनाएँ देखी थीं, परंतु दशरथजीकी भक्ति और रामविवाहको देखकर हमें आश्चर्य हो रहा है।'

टिप्पणी—४ जनकपुरमें राजा दशरथजीकी विदाईका और यहाँ श्रीविश्वामित्रजीकी बिदाईका एकरूप है। दोनोंका मिलान,* यथा—

राजा दशरथजीकी बिदाई		श्रीविश्वामित्रजीकी बिदाई
दिन उठि बिदा अवधपति मागा	१	*विश्वामित्र चलन नित चहहीं*
राखहिं जनकु सहित अनुरागा	२	*राम सप्रेम बिनय बस रहहीं*

* यह मिलान मेरी समझमें पूरा उतरता हुआ नहीं जँचता।

दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई	३ *दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ*
नृपु सब भाँति सराह बिभूती	४ *देखि सराह महामुनिराऊ*
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े	५ *सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे*
प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े	६ *माँगत बिदा राउ अनुरागे*
येहि राज साज समेत सेवक जानिये बिनु गथ लये	७ *नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥*
कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति	८ *दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती*
प्रीति न हृदय समाति	९ *चले न प्रीति रीति कहि जाती*
फिरे महीसु आसिषा पाई	१० *आयेसु पाइ फिरे पहुँचाई*
जनकराज गुन सीलु बड़ाई।''''बिधि भूप भाट जिमि बरनी	११ *रामरूप भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु। जात सराहत*

बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥ १॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥ २॥
बहुरे लोग रजाएसु भएऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ॥ ३॥
जहँ तहँ रामु ब्याहु सबु गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा॥ ४॥

अर्थ—श्रीवामदेवजी और रघुकुलके ज्ञानी गुरु (श्रीवसिष्ठजी) ने पुनः महाराजा गाधिके पुत्र श्रीविश्वामित्रजीकी कथा बखानकर कही॥ १॥ मुनिका सुयश सुनकर राजा मन-ही-मन अपने पुण्योंके प्रभावका वर्णन कर रहे हैं॥ २॥ आज्ञा हुई, सब लोग लौटे (अपने-अपने घर गये) राजा पुत्रोंसहित घर गये॥ ३॥ सभी लोग जहाँ-तहाँ श्रीरामविवाह गा रहे हैं। तीनों लोकोंमें पवित्र सुयश छा गया॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी।''''* इति। (क) वामदेवजीकी बड़ाई (उनका महत्त्व) दिखानेके लिये उन्हें वसिष्ठजीके पहले लिखा और वसिष्ठजीकी बड़ाईके लिये *'रघुकुल गुर ज्ञानी'* विशेषण दिया। तात्पर्य कि वामदेव-वसिष्ठजी ऐसे महामुनि भी विश्वामित्रजीकी बड़ाई करते हैं, इससे विश्वामित्रजीके सुयशकी अत्यन्त बड़ाई हुई। (वामदेवजीको प्रथम रखनेसे यह भी सूचित होता है कि अबकी बार वामदेवजीने ही स्वयं विश्वामित्रजीकी कथा प्रथम कही, पूर्व समर्थनमात्र किया था।) वामदेवजी और वसिष्ठजी दोनोंका बखान करनेका भाव यह है कि प्रथम वसिष्ठजीने विश्वामित्रजीकी कथा कही तब वामदेवजीने वसिष्ठजीका समर्थन किया था, इसीसे अब वसिष्ठजीकी वाणीको पुनः पुष्ट करते हैं, क्योंकि यदि पुनः पुष्ट न करते तो प्रथमवाला कथन शिथिल पड़ जाता। (ख) *'बहुरि''''बखानी'*—विश्वामित्रजीकी कथाको पुनः कहनेका भाव यह है कि किसीकी बड़ाई उसके मुखपर करनेसे उस बड़ाईकी कुछ विशेषता नहीं ही होती, पीठपीछे बड़ाई करनेसे ही उसकी विशेषता समझी जाती है। [मुखपर प्रशंसा करनेसे समझा जाता कि उनकी प्रसन्नताके लिए बड़ाई की गयी, वास्तवमें वे इतनी प्रशंसाके योग्य नहीं हैं, उनकी इतनी महिमा नहीं है। (मा० सं०) अथवा, आनन्दमें दो बार कहा। वा, पहले संक्षिप्त कथा कही थी अब विस्तारसे कही। (रा० प्र०)]

टिप्पणी—२—*'सुनि मुनि सुजसु''''* इति। (क) *'मनहि मन'*—मन-ही-मन वर्णन करते हैं क्योंकि अपना पुण्य अपने मुखसे कहनेसे पुण्य क्षीण हो जाता है, अपने मुखसे अपने सुकृत न कहने चाहिये; यथा—*'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥'* (६। ७२। ३) (ख) *'बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ'* अर्थात् सोचते हैं कि ये महामुनिराज हमारे पुण्यके प्रभावसे मिले हैं। (हमारे बड़े भारी सुकृत उदय हुए हैं जिससे ये मिले।) संत पुण्योंसे मिलते हैं, यथा—*मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ।'* (२। १२५) *'पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न संता।'* (७। ४५)

टिप्पणी—३ '*बहुरे लोग रजाएसु भएऊ*'''' इति। (क) '*बहुरे*' से सूचित हुआ कि जब राजा घरको चले तब लोग उन्हें पहुँचाने चले, जब राजाकी आज्ञा हुई तब वे फिरे। (ख) '*सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ*' इति। पुत्रोंके साथ राजा बाहर आये थे, यथा—'*भूपति संग द्वार पगु धारे।*' (३५८। ८) और अब पुत्रोंसमेत घरमें जाना कहा। भाव यह है कि राजाने मनु-शरीरमें वर माँगा था कि '*मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥*' (१५१। ६) अतएव जैसे सर्प अपना मणि लिये रहता है, क्षणभर भी नहीं छोड़ता, वैसे ही ये चारों पुत्र राजाके प्राण हैं, राजा इनको सदा आँखोंके सामने रखते हैं। इसीसे सर्वत्र पुत्रोंको राजाके समीप लिखते हैं। यथा—'*नृप समीप सोहहिं सुत चारी।*' (३०९। २) '*सुतन्ह समेत दसरथहि देखी।*' (३०९। ३) '*सोहत साथ सुभग सुत चारी।*' (३१५। ६) '*सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति।*' (३५४) '*भूपति संग द्वार पगु धारे।*' (३५८। ८) '*सुतन्ह समेत पूजि पद लागे।*' (३५९। ४) '*सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे।*' (३६०। ५) '*सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ।*' (ग) बाहर आनेमें श्रीरामजी प्रधान हैं—'*भूपति संग द्वार पगु धारे*' और भीतर जानेमें राजा प्रधान हैं—'*नृपति गृह गएऊ।*' (इस तरह दोनोंकी प्रधानता रखी)।

टिप्पणी—४ '*जहँ तहँ रामु ब्याहु सबु गावा।*'''' इति। (क) '*जहँ तहँ*' का अर्थ अगले चरणमें स्पष्ट करते हैं—'*लोक तिहुँ छावा।*' अर्थात तीनों लोकोंमें गाया जा रहा है। '*सबु गावा*' का अर्थ भी आगे स्पष्ट करते हैं—'*सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥ कबिकुल जीवन पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥*' गिरा स्वर्गकी, शेषजी पातालके और कवि मर्त्यलोकके। इन सबोंने रामायण बनाये और गाये। (ख) '*सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा*' इति। प्रथम धनुष तोड़नेका यश तीनों लोकमें व्याप्त हो गया, यथा—'*महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥*' (२६५। ५) अब ब्याहका यश त्रैलोक्यमें छा गया। तात्पर्य कि दोनों प्रकारके विवाह (शुल्क-स्वयंवर-विवाह और लौकिक व्यवहारका विवाह) का यश तीनों लोकोंमें छा गया। '*पुनीत*' कहनेका भाव कि तीनों लोकोंके वक्ता और श्रोता इससे पवित्र हो गये। पुनः भाव कि श्रीराम-विवाहको मानसमुखबंदमें नदीकी बाढ़ कहा है, यथा—'*सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥*' (४१। ५) नदीकी बाढ़ रजस्वला है, अपावनी है; इसीसे '*पुनीत*' विशेषण दिया। यह अपावन नहीं है, किंतु पावनी है।

प० प० प्र०—श्रीसिय-रघुवीर-विवाहका मुख्य वर्णन दो० ३१७से ३२५ तक नौ दोहोंमें हुआ, वैसे ही तीनों भाइयोंका ३२६ से ३३४ तक नौ दोहोंमें हुआ। बारातकी बिदाईसे लेकर अवधसमीप बारात पहुँचनेमें भी ९ दोहे लगे, दो० ३३५ से ३४३ तक। और, फिर उस दिनका सम्पूर्ण उत्साह भी नौ ही दोहोंमें पूरा हो जाता है। अन्तमें काण्डकी समाप्तितक शेष नौ दोहे ही हैं। यह अंक (९) अविकारी होनेसे गोसाईंजीको बहुत प्रिय है। क्यों न हो? श्रीरामजी तथा श्रीजनककिशोरीजीके अवतार-तिथिका अंक भी तो ९ ही है।

आये ब्याहि रामु घर जब तें। बसै अनंद अवध सब तब तें॥५॥
प्रभु बिबाह जस भयेउ उछाहू। सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू॥६॥
कबिकुल जीवनु पावनु जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥७॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥८॥

अर्थ—जबसे श्रीरामचन्द्रजी ब्याह करके घर आये तबसे अवध (अवधवासी) आनन्दसे बस रहा है एवं तबसे सब (प्रकारके) आनन्द अवध (अयोध्यापुरी) में आकर बस गये हैं॥ ५॥ प्रभुके विवाहमें जैसा आनन्दोत्साह हुआ उसे सरस्वती और सर्पराज शेषजी (भी) नहीं कह सकते॥ ६॥ श्रीसीतारामजीके यशको कवि-समाजका जीवन, पवित्र करनेवाला और मङ्गलोंकी खान जानकर॥ ७॥ इससे अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये मैंने कुछ बखानकर कहा॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'बसै अनंद अवध सब तब तें'* इति। 'तबसे सब अवधवासी आनन्दसे बस रहे हैं', इस अर्थका भाव यह है कि श्रीरामजीके बिना सब दुखी थे। मुनि श्रीरामजीको राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये ले गये, यह समझकर सबको संदेह था (कि न जाने अब पुनः उनके दर्शन होंगे कि नहीं)। जब वे घर आ गये तब अवधवासियोंके दुःख दूर हुए, सबको आनन्द हुआ। *'बसै'* कहनेका भाव कि श्रीरामजीके रहनेसे अवधवासी बसते हैं और उनके न रहनेसे उजड़ते हैं। यथा—*'जहँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥'* (२।८४)—(बाबा हरिहरप्रसादजी ये भाव लिखते हैं कि—'श्रीजानकीजीके मिथिलामें और श्रीरघुनाथजीके अवधमें रहनेसे बहुतेरे आनन्द मिथिलाजीमें और बहुतेरे श्रीअयोध्याजीमें रहे, अब श्रीजानकीजीके श्रीअयोध्यामें आगमनसे *'सब'* आनन्दोंने जुटकर यहीं डेरा डाल दिया। वा, तबसे सब अवधवासी आनन्दपूर्वक बसे अर्थात् परशुराम आदिके भयसे रहित हुए। वा, श्रीरघुनाथजीके वियोगजनित दुःख दूर होनेसे सब लोग आनन्दमें बसे। ये सब आनन्द क्या हैं, इसकी व्याख्या अयोध्याकाण्डमें है, यथा—*'जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥'''सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद्र मुख चंदु निहारी॥'* (१-८)

टिप्पणी—२ *'प्रभु बिबाह जस भयेउ उछाहू।'''''* इति। (क) *'प्रभु बिबाह'* का भाव कि सामर्थ्यसे जैसा विवाह हुआ है, भाव यह कि धनुषके तोड़नेसे विवाह हुआ है—धनुष तोड़ना भी विवाह है यथा—*'टूटत ही धनु भयेउ बिबाहू'* (२८६। ८) *'प्रभु बिबाह'* कहकर सूचित किया कि धनुष टूटने (धनुर्भङ्ग) से लेकर बालकाण्डकी समाप्तितक सब विवाहका उत्सव है। इसीसे *'प्रभु'* शब्द दिया। (ख) ऊपर *'जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा।'''* हम प्रभुके विवाहकी बड़ाई कह चुके और यहाँ श्रीरामजीके विवाहके उत्साहकी बड़ाई करते हैं। (ग) श्रीजनकपुरमें एक बार विवाहोत्सवकी इति लगा चुके हैं, यथा—*'येहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकै न बरनि सहस मुख जाहू॥'* (३३१। ८) और यहाँ फिर इति लगाते हैं इसका कारण यह है कि विवाहोत्सवके दो भाग हुए। एक तो जनकपुरमें उत्साह हुआ, दूसरे अवधमें हुआ। जनकपुरके विवाहोत्सवकी इति *'येहि बिधि राम बिआह उछाहू'* पर लगा चुके। अब यहाँ श्रीअयोध्यापुरीके विवाहोत्सवकी इति लगाते हैं। (घ) विशेष ३३१।८ में देखिये।

टिप्पणी—३ *'कबिकुल जीवनु पावनु जानी।'''* इति। (क) *'कबिकुल जानी'* का भाव कि श्रीरामजीका सुयश सभी कवियोंका जीवन है। हमको भी शिवजीने कृपा करके कवि बनाया, यथा—*'संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥'* (३६। १) इससे यह हमारा भी जीवन है। (ख) *'पावन'* है अर्थात् कलिके पापोंका नाशक है, *'मंगल खानी'* है अर्थात् मङ्गल करती है, यथा—*'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथकी।'* (१। १०) (ग) *'कबिकुल जीवन' 'पावन'* और *'मंगल खानी'* के क्रमशः कथनका भाव कि प्रथम कविलोग गाते हैं, तब जनसमुदाय गाकर-सुनकर पावन होते हैं, पावन होनेपर मङ्गल होते हैं।

टिप्पणी—४ *'तेहि ते मैं कछु कहा'''* इति। (क) प्रथम शेष-शारदाको कहा—*'सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू'।* तत्पश्चात् कविसमुदायको कहा—*'कबिकुल जीवनु पावनु जानी'* । सबके पीछे अपनेको कहते हैं—*'मैं कछु कहा'।* तात्पर्य कि गोस्वामीजीकी दैन्य शरणागति है, इसीसे अपनेको सबसे पीछे कहा। (ख) *'कछु'* का भाव कि श्रीरामयश समुद्र है जैसा आगे कहते हैं—*'रघुबीरचरित अपार बारिधि'''।* मैंने उसमेंसे कुछ कहा। (ग) *'कछु कहा बखानी'* का भाव कि यद्यपि हमने विस्तारसे कहा तब भी वह श्रीरामसुयश-समुद्रके एक सीकरके बराबर भी नहीं हुआ। (घ) *'करन पुनीत हेतु निज बानी'*— भाव कि हमने जो कुछ कहा वह सम्पूर्ण रामयश कहनेके लिये नहीं कहा, किंतु अपनी वाणी पवित्र करनेके लिये कहा।

छं०—निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥

उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं॥
सो०—सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन रामजसु॥ ३६१॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु।*

अर्थ—मुझ तुलसीदासने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये रामयश कहा (नहीं तो) श्रीरघुवीरचरित अपार समुद्र है, किस कविने पार पाया है? जो लोग यज्ञोपवीत, विवाह, उत्साह और मङ्गलको सुनकर सादर गावेंगे, वे लोग श्रीविदेहनन्दिनी और श्रीरामजीकी प्रसन्नतासे सदा सुख पावेंगे, श्रीसीय-रघुवीर-विवाहको जो प्रेमसहित गाते-सुनते हैं उनको सदा ही उछाह होगा—रामयश मङ्गलका धाम ही है॥ ३६१॥ सम्पूर्ण कलिके पापोंका नाशक श्रीरामचरितमानसका प्रथम सोपान समाप्त हुआ। शुभमस्तु।

टिप्पणी—१ (क) *'निज गिरा पावनि करन कारन'''* इति। ऊपर जो कहा था—*'करन पुनीत हेतु निज बानी'* उसीको यहाँ स्पष्ट करते हैं कि *'हेतु'* का अर्थ *'कारण'* है। यह रामयश—गानका फल बताया। (ख) *'तुलसी कह्यो'*—पहले कहा था कि *'तेहि ते मैं कछु कहा बखानी'* उसमें *'मैं'* का अर्थ न स्पष्ट हुआ कि यह किस वक्ताकी उक्ति है। सब वक्ता अपनेको 'मैं' कहते हैं, यथा—*'प्रथमहि मैं कहि सिवचरित बूझा मरम तुम्हार।'* (१०४) इति याज्ञवल्क्यः, *'रामकथा गिरिजा मैं बरनी।'* (७। १२९) इति शिवः, *'निज मति सरिस नाथ मैं गाई'* (७। ९१) इति भुशुण्डिः। *'भाषाबद्ध करबि मैं सोई'* (१। ३१) इति तुलसीदासः। यह भ्रम दूर करनेके लिये कहते हैं—*'रामजस तुलसी कह्यो' 'रघुबीर चरित अपार बारिधि''''''* इसपर शंका होती है कि जब तुम ऐसा जानते हो तब तुमने क्यों वर्णन किया, इसीसे समाधानके लिये प्रथम ही कहते हैं कि *'निज गिरा''''''* मैंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये इसका वर्णन किया, पार पानेके लिये नहीं। (ग) *'रघुबीर चरित'* कहनेका भाव कि श्रीरामचन्द्रजीके सब चरित्र वीरताके हैं—युद्धवीर, दानवीर और दयावीर। सातों काण्डोंमें युद्ध, दान और दया यही सब हैं। *'अपार बारिधि'* इति। रघुवीरचरित सात काण्डोंमें (विभक्त) हैं। प्रधान समुद्र सात माने गये हैं (क्षीरोदधि, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद, स्वादूदकोद। अर्थात् दूध, इक्षुरस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठा और मीठे जलके समुद्र जो क्रमशः उत्तरोत्तर एकसे दूसरा दुगुना है) वैसे ही रामचरितके सातों काण्ड सातों समुद्र हैं। श्रीरघुवीरचरित्रको *'अपार बारिधि'* कहनेका भाव कि सातों समुद्रोंका तो पार भी है (उनके लम्बान-चौड़ानका उल्लेख है), पर श्रीरामजीका पार नहीं। सौ करोड़ रामायण बने तो भी उसे अपार ही कहा गया, यथा—*'नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा॥'* (१। ३३) *'रामचरित सतकोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥'* (७। ५२) [शतकोटि श्लोकोंकी रामायणका प्रमाण मिलता है। वही अर्थ हमने किया है। (१। ३३। ६) और *'रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि।'* (१। २५) में देखिये]। पुनः *'अपार'* कहकर जनाया कि समुद्र विस्तृत और गम्भीर है, वैसे ही श्रीरामचरित भी विस्तृत और गम्भीर है, परंतु श्रीरामचरितके विस्तारका पार नहीं (यह बात *'पार कबि कौंने लह्यो'* से बताया), और न उसके गम्भीरताकी थाह ही है, यथा—*'तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥ तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥'* (७। ९१)

टिप्पणी—२ (क) *'उपबीत ब्याह उछाह मंगल''''* इति। उपवीत अर्थात् व्रतबन्ध और विवाहके *'उछाह मंगल'* को आदरपूर्वक सुनना और गाना यहाँ लिखते हैं, परंतु 'इस ग्रन्थमें तो ग्रन्थकारने 'उपवीतका उछाह मङ्गल' कुछ लिखा नहीं, केवल आधी चौपाईमें व्रतबन्धका होना कहा है, यथा—*'भए कुमार जबहिं*

* शुभमस्तुके बाद १६६१ की प्रतिमें ये शब्द हैं—'संवत् १६६१ वैशाख सुदि ६ बुधे।'

सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥' (२०४। २) तब व्रतबन्धका उछाह मङ्गल लोग क्योंकर गावें?' इस शंकाका समाधान यह है कि विवाह और व्रतबन्धका उत्सव-मङ्गल एक ही प्रकारका होता है, विवाहके सब अङ्ग व्रतबन्धमें होते हैं। कण्डिकापूजन, मण्डपरचना, तेल, मायण, बारात यह सब उपनयन-संस्कारमें भी होता है। इसीसे ग्रन्थकारने व्रतबन्धके मङ्गल-उत्सवको पृथक् नहीं लिखा। (विवाहमें भाँवरी होती हैं, इसमें जनेऊ)। (ख) 'मङ्गल—बन्दनवार, पताका, केतु, वितान, दधि, दूर्वा, रोचन, फल, नवीन तुलसीदल आदि मङ्गल हैं। ['मङ्गल' की व्याख्या पूर्व बहुत हो चुकी है। पुनः, '**प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविसर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥**' बृहस्पतिः (पं० रा० व० श०)] सबको भोजन कराना, दान देना, गान करना, बाजा बजाना, निछावरें देना, विनोद इत्यादि सब '*उछाह*' है। (ग) प्रथम व्रतबन्ध होता है, पीछे विवाह होता है, इसीसे प्रथम उपवीत कहकर तब ब्याह कहा। '*उपबीत ब्याह उछाह मंगल*' कहकर सूचित किया कि यह माहात्म्य बालकाण्डका है, क्योंकि ये दोनों संस्कार बालकाण्डमें हुए हैं। 'सादर सुनना अथवा गाना' क्या है, यह पूर्व (२। १२-१३, १४। २, ३३। ८, ३५। १३) में बताया जा चुका है। मन-बुद्धि-चित्त लगाकर श्रद्धा-प्रेमसे सुनना सादर सुनना है।

टिप्पणी—३ '*बैदेहि राम प्रसाद ते जन*……' इति। (क) प्रथम वैदेहीजीका प्रसाद कहा, क्योंकि उत्सव-मङ्गल प्रथम वैदेहीजीके यहाँ (जनकपुरमें) हुए। वहीं धनुष टूटा। कण्डिकापूजन, मण्डपरचना, तेल, मायण, कंकणबन्धन आदि सब प्रथम वहीं हुए। इसीसे प्रथम वैदेहीजी प्रसन्न हुईं। तत्पश्चात् अवधमें मङ्गलोत्सव हुए। इसीसे पीछे श्रीरामजी प्रसन्न हुए। [पुनः वैदेहीजी जीवोंके कल्याणमें मुख्य हैं, ये जीवोंको प्रभुके सम्मुख करती हैं (यह विस्तृतरूपसे पूर्व लिखा जा चुका है), यथा—'*कबहुँक अंब अवसर पाइ। मेरियो सुधि द्यायबी कछु करुन कथा चलाइ*' (विनय० ४१)। अतः पहले इनकी प्रसन्नता कही। वैदेहीजीको भी कहकर जनाया कि वैदेहीजी अद्वैतवादियोंकी माया नहीं हैं।]

(ख) '*जन*' कहकर किसी वर्णाश्रमका नियम नहीं करते। तात्पर्य कि इस ग्रन्थको सुनने और कहनेका अधिकार सबको है। (ग) '*सर्बदा सुख पावहीं*' इति! सुकृतसे सुख होता है, यथा—'*सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥*' (२। १) '*मंगल उछाह*' के गान (श्रवण और कीर्तन) का सुकृत अनन्त है, इसीसे सुख भी अनन्त है और बैदेहिरामका प्रसाद अमोघ है (उनकी प्रसन्नता कभी निष्फल नहीं जाती), इसीसे जन सुख पावेंगे। अर्थात् इस लोकमें भी सुख पायँगे और परलोकमें भी। यथा—'*सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं॥*' (७। १५)

टिप्पणी—४ '*सिय रघुबीर बिबाहु*……' इति। ऊपर '*उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि*……' में विवाहके उत्साह और मंगलका माहात्म्य कहकर अब विवाहका माहात्म्य कहते हैं। पहलेमें '*सुनि जे सादर गावहीं*' कहा था, यहाँ अब '*सप्रेम गावहिं सुनहिं*' कहकर '*सादर*' का अर्थ स्पष्ट किया कि प्रेमसहित गाना सुनना ही '*सादर*' गाना-सुनना है। '*सुनि जे सादर गावहीं*' में सुनना प्रथम कहकर तब गाना और यहा '*गावहिं*' कहकर तब '*सुनहिं*' कहते हैं, इस प्रकार सूचित किया कि गाने अथवा सुनने दोनोंका माहात्म्य एक ही है। विवाह गाने-सुननेसे सदा मङ्गलोत्सव होते हैं और '*उपबीत ब्याह उछाह मंगल*' के सुनने अथवा गानेसे श्रीरामजानकीजी सुख देते हैं—[विवाहसे उछाहकी वृद्धि और उछाहसे सुख। (प्र० सं०)]

प० प० प्र०—१ '*जे यह कथहिं सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥ होइहहिं रामचरन अनुरागी। कलिमलरहित सुमंगल भागी॥*' (१५। १०-११) में जिस फलश्रुतिका उपक्रम किया था, उसीकी यह पुनरावृत्ति अभ्यास है, उपसंहार उत्तरकाण्डमें होगा।

२—'*मंगलायतन रामजसु*' इति। बालकाण्डके मं० श्लो० में '*मङ्गलानां*' शब्दसे उपक्रम किया, '*मंगल करनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथकी*' से अभ्यास और '*मङ्गलायतन*' से उपसंहार किया। '*मङ्गलानां*' से इस काण्डका विषय लक्षित किया गया है। देखिये इस काण्डमें मङ्गल-ही-मङ्गल कैसा भर दिया है—(१) नाम '*मंगल भवन अमंगल हारी*', (२) रघुनाथ-कथा '*मंगल करनि कलिमलहरनि*', (३) '*जगमंगल गुनग्राम रामके*', (४) पुरी '*सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी*' (५) '*सरयू नाम सुमंगलमूला*' (६) बालरूप

'मंगल भवन अमंगल हारी' (७) *'मंजुल मंगलमूल बाम अंग'* सीताजीके (८) *'मंगलमूल लगन दिनु आवा'* (९) *'धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगलमूल'* (१०) *'कहि असीस धुनि मंगलमूला'* (११) *'मंगलमूल सगुन भए नाना'* (१२) *'पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि'* (१३) *'रामसीय जसु मंगलखानी'* (१४) *'मंगलायतन रामयश'* (१५) *'राम जनम जग मंगल हेतू'* (१६) *'सत्संगति मुद मंगलमूला'* (१७) *'संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगलमूल'* (१८) गुरुपदरज *'मंजुल मंगल मोद प्रसूती'* (१९) रामकथा *'सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी'* (२०) *'मुद मंगलमय संत समाजू'* (२१) *'बरनब राम बिबाह समाजू। सोइ मुद मंगलमय रितुराजू॥'* (२२) *'मंगलमय मंदिर सब केरे'* (२३) *'रामपुरी मंगलमय पावनि'* (२४) *'मंगलमय मुक्तामनि गाथे'* (२५) *'मंगलमय निज़ निज भवन…'* (२६) शकुन *'मंगलमय कल्यानमय अभिमत…'* (२७) हरिहर-कथा *'सुनत सकल मुद मंगल देनी।'* —ये सत्ताईस अवतरण केवल बालकाण्डमें ही हैं। अन्य काण्डोंमें इतने मङ्गलोंका उल्लेख नहीं है।

टिप्पणी—५ *'इति श्रीरामचरितमानसे…'* इति। (क) रामचरितमानसकी इति नहीं है, यह ग्रन्थकार स्वयं ही कह चुके हैं—*'रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौने लह्यो।'* यह बालकाण्डकी इति है, अर्थात् यहाँतक मुनिलोग बालकाण्ड (प्रथम सोपान) कहते हैं। (ख) **'सकलकलिकलुषविध्वंसने'**—सत्कर्मसे कलिमलका नाश होता है, यथा—*'बिधि निषेध मय कलिमलहरनी। करमकथा रबिनंदनि बरनी॥'* (१।२।९) बालकाण्ड-(प्रथम सोपान-) में श्रीरामजीके (जातकर्म), नामकरण, चूड़ाकरन, कर्णवेध, उपवीत और विवाह इन सब संस्कारोंका वर्णन है, इस काण्डमें कर्मकी प्रधानता है, इसीसे इसके कथन-श्रवण करनेवालोंके कलिकलुषका विध्वंस होता है। (ग) श्रीरामचरितमानसमें सात सीढ़ियाँ हैं—*'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना।'* उनमेंसे यह बालकाण्ड प्रथम सीढ़ी है सो समाप्त हुई।

प्र० सं०—(क) *'इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलि……'* —अब अपने ग्रन्थके इस भागकी इति लगाते हैं। रामचरितमानस अपार है। उसकी इति नहीं लगा सकते। अतः अपने कृतिकी इति लगाते हैं। ब्याह-उपवीतादि कर्म हैं कर्म पापका नाशक है।—(ख)—भाषामें सोरठा-छन्दसे प्रारम्भ करके सोरठा-छन्दपर ही ग्रन्थके प्रथम सोपानको समाप्त किया। श्रीपार्वतीजीके चौथे प्रश्नका उत्तर यहाँ पूर्ण हुआ।

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।